खादी-मीमांसा

[नवीन संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण]

लेखक

श्रीबालूभाई मेहता

प्रस्तावना लेखक

आचार्य काका कालेलकर

१९४९

सस्ता साहित्य मण्डल

नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री,
सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली ।

दूसरी बार : १९४६
मूल्य
तीन रुपए

मुद्रक
अमरचंद्र
राजहंस प्रेस, दिल्ली ।

लेखक की ओर से—

मुझे यह देखकर खुशी होती है कि हिन्दी 'खादी-मीमासा' के दूसरे सस्करण का सुयोग प्राप्त हो गया है। पूज्य श्री काका साहब कालेलकर ने इसकी प्रस्तावना लिखी है, इसे मै इस सस्करण का सौभाग्य मानता हू। इस समय हमारा राष्ट्र स्वतन्त्रता के दरवाजे पर खडा है। प्रत्येक राष्ट्र को अन्न और वस्त्र के मामले मे स्वावलम्बी बनना चाहिए। बहुत से प्रान्तो मे वस्त्र-स्वावलम्बन की योजनाए जल्दी ही बनेगी। ऐसे समय मे मै आशा करता हू कि खादी की समूल व युक्ति-सगत जानकारी और खादी के नव-सस्करण सम्बन्धी महात्मा गाधी के विचार जनता तक पहुचाने मे 'खादी-मीमासा' की यह नई आवृत्ति उपयोगी साबित होगी।

इस सस्करण को आकडो, उद्धरणो व विचारधारा की दृष्टि से तातारीख (up to date) बनाने के लिए अ० भा० चर्खा सघ के श्री द्वारकानाथजी लेले व श्री कृष्णदासजी गाधी ने जो परिश्रम किया है, उसके लिए मै उनका बहुत आभारी हू।

—बालूभाई मेहता

खादी का भविष्य

(आचार्य काका कालेलकर)

लोग पूछते है "खादी का भविष्य क्या है ?" पर वे नही जानते कि अुनके अिस प्रश्न के पीछे दूसरा अेक सार्वभौम प्रश्न छिपा हुआ है कि "आज की दुनिया का भविष्य क्या है ?" पहला प्रश्न पूछने वाले खादी के बारे मे जितने चिन्तित है अुतने हो चिंतित अगर दुनिया के बारे मे हो जायँ तो दोनो सवालो का जवाब अुन्हे अेक साथ मिल जायगा ।

अेक महायुद्ध हुआ, दूसरा भी हुआ, अब तीसरे की पूर्व तैयारिया जोरो से चल रही है । दूसरे महायुद्ध में हिन्दुस्तान काफी निचोड़ा गया । हिन्दुस्तान का जन-धन बहुत बडे पैमाने पर काम आया । तो भी अिम्फाल कोहीमा का छोटा-सा अपवाद छोडकर हिन्दुस्तान की भूमि पर युद्ध नही हुआ ।

सवाल यह है कि अब तीसरे महायुद्ध मे हिन्दुस्तान घसीटा जायेगा या नही ? यदि जायेगा तो हिन्दुस्तान की कितनी और कैसी तैयारी होगी ? और अगर घसीटा गया तो अुसका क्या हाल होगा ? जिस समाज का हृदय अेक नही है वह अेक राष्ट्र नही बन सकता । अैसे समाज को जब लाचारी से युद्ध मे घसीटा जाना पडेगा तब उसका क्या भयकर हाल होगा, अिसका चित्र भी हम आसानी से नही खीच सकते ।

अेक जमाना था जब अग्रेज न केवल हमारे राज्य-कर्ता थे, किन्तु हमारे सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और विद्या-विषयक गुरु भी बन बैठे थे । पिछले युद्ध तक अुनकी यही भूमिका रही । अुसके बाद अुन्होने अपना गुरुपद तो छोड दिया, अुन्हे छोडना पडा । सिर्फ अपने सामर्थ्य का घमड ही अब रखने लगे है । पिछले महायुद्ध तक वे अपनेको 'यावच्चद्र दिवाकारौ अजेय भी मानते थे । अब की बार जो युद्ध हुआ अुसमे

अुन पर अैसा वार हुआ कि यदि रूस की शक्ति और अमेरिका की सपत्ति की मदद न मिलती तो ब्रिटिश साम्राज्य का नामोनिशान भी नही रहता। अब, जब तीसरा युद्ध होगा तब अिग्लैड को पता नही कि अुसकी क्या हालत होगी। अिस युद्ध मे तो हिन्दुस्तान को बिना पूछे निचोड सके। आअिन्दा अैसा न कर सकेगे। अगले युद्ध मे हिन्दुस्तान को वे घसीटना तो चाहेगे ही। लेकिन अिग्लैड का काम तभी सफल होगा जब हिन्दुस्तान राजी-खुशी अुस युद्ध मे शरीक होगा।

अेक जमाना था जब मिशनरी लोग हिन्दुस्तान को अीसाअी बनाने की कोशिश कर रहे थे। परन्तु बहुत कम लोग अीसाअी हुअे। अधिकाश लोग हिन्दू के हिन्दू और मुसलमान के मुसलमान ही रहे। अब की बार ब्रिटेन की मशा हिन्दुस्तान को अीसाअी बनाने की चाहे न हो, किन्तु अपने साम्राज्यवाद की दीक्षा देने की जरूर होगी। लेकिन वह मुह से साम्राज्यवाद नही कहेगा, वह उसे प्रजासत्ता (Democracy) कहेगा।

ब्रिटेन ने देख लिया है कि हिन्दुस्तान मे अगर हिन्दू और मुसलमान अेक हो गये तो वे अपनी स्वतत्र जागतिक नीति चलायेगे, अगले युद्ध में यो ब्रिटेन को हिन्दुस्तान की मदद नही मिलेगी। पर हिन्दू और मुसलमान अगर अेक दूसरे के दुश्मन बने रहे तो स्वराज पाकर भी अुन्हे अिग्लैड की नीति के अनुसार ही चलना पडेगा। अिसलिए अिग्लैड हमे अेक ओर स्वराज्य के अधिकार दे रहा है, और दूसरी ओर हिन्दू-मुसलमानो के बीच दुश्मनी कायम कर रहा है। जब तक हम अगले युद्ध के लिए अुपयोगी साबित होते रहेगे तब तक अिग्लैड की यही नीति रहेगी।

अैसी हालत मे हमारा कर्तव्य क्या होगा? बेशक यह कि हम अपने राष्ट्र को बचा ले। अितनी बडी अपनी लोक-सख्या को हम बचा ले, और साथ-साथ अैसी किसी शक्ति का सगठन हम बिल्कुल न होने दे जो अगले महायुद्ध मे—अतियुद्ध मे—अिस्तेमाल की जा सके। शहद की मक्खियो

के छत्ते मे मधु होता है ग्रिसलिग्रे वह छत्ता लूटा जाता है। बर्र के छत्ते मे शहद का ग्रेक बूद भी नही पाया जाता। तो ग्रुसे कौन कैसा लूटेगा? ग्रगर बर्र अहिसक होता तो उसके छत्ते को कोग्री तोडता भी नही।

ग्रिस मिसाल से हमे ग्रितना समझ लेना चाहिग्रे कि हमारे राष्ट्र मे ग्रगर समाज अहिसक बन जाय, स्वावलबी ग्रौर स्वय-पूर्ण बन जाय और बडे पैमाने पर युद्ध मे काम आ सके, ग्रेसी साधन-सपत्ति ग्रुसके पास ग्रिकटठा न हो, तो व तभी जाकर हिन्दुस्तान बच सकता है।

ग्रगर हम किसी भी रूप मे युद्धोपयोगी साबित हुग्रे तो ग्रिग्लैड, ग्रमेरिका ग्रौर रूस हमे ग्रगले युद्ध मे घसीटे बिना हरगिज़ न रहेगे। युद्ध मे काम ग्रा सकने जैसी ताकत सगठित होने की सभावना हिन्दुस्तान मे ग्रगर रही तो हिन्दू-मुसलमानो के झगडे भी कायम रहने वाले है—यानी हिन्दुस्तान बडो तेजो से विनाश को ग्रोर दौडने वाला है।

ग्रिन सब ग्रापत्तियो से अगर हमे बचना है तो हमे ग्रगले सौ बरस तक कुछ बाते छोड देनी होगी। हम ज़रा देख ले कि वे कौन-कौन-सी है।

१ ग्रपनी लोक-सख्या हमे बडे-बडे शहरो मे, बडी तादाद मे, केन्द्रित न होने देनी चाहिग्रे। हमारी जन-बस्ती छोटी-छोटी तादाद मे देश भर मे जितनी बिखर जाय ग्रुतने हम सलामत है।

२ जनता का धन, जहा तक हो सके, न किसी पूँजीपति के हाथ मे ग्रिकट्ठा होना चाहिग्रे, न पूँजीपतियो से भी बदतर ग्रिस जमाने की सरकारो के हाथ मे। जनता को ग्रपने रोजमर्रा के लिग्रे जितना चाहिग्रे ग्रुतना ही ग्रुसके हाथ मे रहे, ग्रधिक नही। ग्रौर जो कुछ भी कमाना है ग्रुसकी कला जनता के हाथ मे रहे, यही सबसे श्रेष्ठ और सलामत व्यवस्था है। सम्राट अशोक ने भी ग्रिसी नीति को पसद किया था। वह कहता है, "ग्रल्प व्यय साधु, ग्रल्प भाडता साधु"—खर्च कम करो यही ग्रच्छा है, धन सग्रह भी कम करो, यह भी ग्रच्छा है।

ग्रिस स्थिति को पहुँचने के लिग्रे जो कुछ भी कीमत चकानी पडे, कम है।

३ जनता के श्रम, आराम और विनोद तीनो अलग-अलग न हो कर अेक ही हो जायँ। जीवन-दृष्टि से यही सर्वोच्च स्थिति है। सुधरे-हुअे आज के जमाने मे मज़दूरो को राक्षस के जैसा काम करना पडता है। अिसका नतीजा यह होता है कि आराम के लिअे अुन्हे शराब पी कर हैवान के जैसा बनना पडता है और फिर कभी-कभी विनोद के लिअे पिशाच की-सी लीला करने का अुन्हे मन होता है। बेचारे को मनुष्य बनने का मौका ही नही मिलता। यह मौका अगर अुसे मिल जाय तो वह न तो किराये का सैनिक बनेगा, न किसी का गुलाम। और ज़ालिम बनने की तो अुसे कल्पना तक न होगी। खेती, कताअी, बुनाअी, बाग-काम और तमाम गृह-उद्योग मनुष्यता के पोषक है। कल-कार-खानो मे मनुष्य का दिमाग ही यान्त्रिक बन जाता है, और मनुष्यता खोकर वह यान्त्रिक युद्धो के लिअे योग्य बनता है, अेव युद्ध न मिलने पर वह या तो पिंडारी बनता है, या नोवाखाली का गुडा।

४ जिस तरह पूंजीपति के बलवान-वर्ग की हस्ती ही समाज के लिअे खतरनाक है, अुसी तरह किसी भी ढग की हो, समर्थ सरकार की हस्ती भी खतरनाक है।

तमाम सरकारे जीती है किसी न किसी को दबाने के लिअे। वे या तो अपनी ही प्रजा को दबाती है, या प्रजा को नोकर बना कर अपने पडोस के देशो को दबाता है,—यानी दोनों को दबाती है। आज कल की दुनिया पूंजीपतियो से जितनी घबराअी हुअी है अुतनी अिन सरकारो से नही घबराती, अिसका कारण यही है कि दुनिया भर मे अेक यह भ्रम फैला हुआ है कि जनता के हाथ मे वोट आने पर सरकार का तमाम सामर्थ्य जनता के ही हाथ मे आ जाता है। जब प्रजा देखेगी कि राज्य-मात्र ही ज़ालिमो की सस्था है तब वह कहेगी कि राज्य-व्यवस्था चाहे पूजीपति के हाथ में हो या समाज के प्रतिनिधियो के हाथ मे, हमे नही चाहिए। मुझ पर कौन जुल्म करे और किस तरह से करे अिसका निश्चय मेरे हाथ में रहने से मै थोडे ही सुखी बनने वाला हूँ? आज कल

की सुधरी हुअी सरकारें आम जनता के हाथ से हिंसक बनने की शक्ति छीन लेती है और खुद तमाम हिंसा करने की ठेकेदार बन कर स्वय भयानक हिंसामूर्ति बन रहती है।

अत हमे अगर अहिंसक समाज की स्थापना करनी है तो हमारी राज्य-पद्धति भी अहिसक ही होनी चाहिअे।

अिसलिए जैसे भी हो सके क्रमश सत्ता का विकेन्द्रीकरण करना जरूरी है। जहाँ जनता जाग्रत है और सत्ता विकेन्द्रित है, वहा जुल्म की गुजाअिश ही नही रहती है। अगर सत्ता जुल्म करने लग जाय भी तो अुसका अिलाज तुरत और वही का वही हो सकता है।

५ हमारे सामाजिक विधान मे भी अति विस्तृत सगठन न हो। जटिल व्यवस्था न हो। केन्द्रित नियत्रण न हो। अति परस्परावलम्बन खतरनाक है। केवल धार्मिकता और सदाचार का वायु-मडल ही सर्वव्यापी होना चाहिअे।

ये सब आदश हम खादी और विकेन्द्रित ग्रामोद्योग के द्वारा ही दुनिया के सामने रख सकते है। मिल का कपडा सस्ता जरूर होगा लेकिन वह सिर्फ पैसो के हिसाब से ही सस्ता होगा, जीवन के हिसाब मे नही। और हमें तो पैसो के लिअे नही बल्कि जीवन के लिअे जीना है—अपने और अेक-दूसरे के कल्याणकारी जीवन के लिअे जीना है।

अिस वास्ते हमारे जीवन का मूल्याकन हमे पैसे की तराजू में नही किन्तु जीवन की तराजू मे करना चाहिअे। कहते है कि खादी आज मिल के कपडे से ढाअी गुना मँहगी है। अैसी हालत में हमें खादी को छोडने की अपेक्षा यह सोचना चाहिअे कि मिल का कपडा क्यो कर सस्ता है। वह कम परिश्रम से बनता है या जीवन-द्रोह करके बनता है ?

जो भी चीज—फिर वह पैसा हो, आहार हो या समाज-व्यवस्था चलाने के लिअे बनाअी सरकार हो—अगर जीवन-द्रोही है तो, अिसी अेक दोष के लिअे, हमे अुसका त्याग करना चाहिअे।

अगर अूपर बताअी यह अहिसक, सर्वोदयकारी जीवन-दृष्टि हमे मान्य हो जाय तो अिस किताब मे की गअी सविस्तर खादी-मीमासा हम आसानी से समझ सकेगे और खुशी-खुशी अुसे मजूर भी कर सकेगे। अगर पैसो का हिसाब छोडकर जीवन का हिसाब करने के लिअे हम तैयार हो गये तो खादी का भविष्य अत्यन्त अुज्ज्वल है। नही तो खादी कुछ दिन चलेगी और बाद मे, पापी जीवन-व्यवस्था मे न बैठ सकने के अेक मात्र कारण, वह छोड दी जायेगी। पिछले दो महायुद्धो ने हमे जो सबक सिखाये है वे अगर हम नही सीखे होते तो खादी के लिअे शायद कुछ भी भविष्य नही रहता। दो महायुद्धो की ठोकरे खाकर अहिंसक समाज और अहिसक सरकार की स्थापना का महत्त्व हमे कुछ-कुछ प्रतीत होने लगा है। वह जितना ही स्पष्ट होगा अुतना ही खादी का भविष्य अुज्ज्वल समझिअे।

(२)

खादी के द्वारा अगर स्वावलबन सीख लिया गया और सिद्ध हो गया तो वह सिर्फ खादी तक ही सीमित न रहेगा। हर चीज मे वही वृत्ति प्रकट होगी। जब हम राष्ट्र के नाते और गाव के नाते अन्न-वस्त्र के बारे मे स्वावलबी बन जायेगे तब बाकी की जीवनोपयोगी छोटी-मोटी बहुतसी बातो मे स्वावलबन का और, अपने-अपने दायरे मे, परस्परावलबन का पालन करना हमारे लिए बहुत ही आसान हो जायगा। अिसमे हमारी समाज-व्यवस्था भी अितनी आसान हो जायगी कि आजकल के जैसे सरकारो के बडे-बडे आयोजन हमे न करने पडेगे। जब सबके सब लोग अुद्योगी और सतोषी होगे तब किसी के पास अितना विशेष धन नही रहेगा कि जिसे किसीको लूटने का मन हो। और कोअी भी अितना दरिद्र नही होगा कि जो दूसरे के थोडे से धन मे से भी चोरी करने की अिच्छा रक्खेगा। अैसे समाज का मनुष्य न किसी से डरेगा, न किसी को डर दिखायेगा। अैसे समाज की सरकार के लिअे अहिंसा की नीति अिख्तियार करना आसान होगा। लोगो मे अितनी स्वाभाविक तेजस्विता

होगी कि वे अपनी-अपनी रक्षा, बडी सेना के बिना, सत्याग्रह से ही कर सकेगे। 'स्ववीर्य गुप्ता ही मनो प्रसूति' (आदम के बच्चो को अपनी रक्षा अपनी ही ताकत से करनी चाहिअे। न कि किसी राजा की फौज की मदद से।) अहिसक सरकार का मुख्य काम होगा लोगो की हिफाजत करना, खिदमत करना और लोगो के सगठन को व्यवस्थित रखना।

खादी के सिद्धात मे जिस तरह स्वावलम्बन और अपरिग्रह का सदेश है, अुसी तरह अहिसक आत्मरक्षा का—यानी सत्याग्रही प्रतिकार का भी सदेश असमे समाया हुआ है।

तिजारती ढग से आज तक जो खादी बनाअी गअी, अुससे खादी का प्रचार बढा, खादी की कला—धुनकने, कातने बुनने की कला—जो मृतप्राय हो गअी थी, जाग्रत हुअी। स्वराज-प्रेम के साथ और गरीबो की सेवा करने की शुभ वृत्ति के साथ भी हमने खादी को जोड दिया।

देश मे जगह-जगह आज अैसा ही माना जाता है कि खादीधारी छूआछूत नही मानेगा, जातपात की झझट से दूर रहेगा। अुच्च-नीच भाव का हामी नही बनेगा। कही किसी पर अन्याय होता हो तो खादी-धारी मजलूम की मदद को दौड पडेगा। शराब नही पीयेगा।

ये सब लाभ कुछ कम नही है!

अब खादी मे हमे कुछ नये मानी भी भरने है। जो खादीधारी है वह कभी अन्याय को बरदाश्त नही करेगा, सत्याग्रह का शस्त्र अुसके पास हमेशा तैयार रहेगा। जो अहिसक और विचारवान है वह बिना कारण या बे-मौके झगडा खडा नही करेगा। लेकिन अुसके पास सत्याग्रह-का शस्त्र हमेशा तेज, चमकीला व तैयार तो रहना ही चाहिअे।

जब खादी मे अैसी अहिसक प्रतिकार की—सत्याग्रही जीवन की—तेजस्विता आ जायगी तब खादी का कार्य पूरा हो गया अैसा समझना चाहिअे।

हम कभी अन्याय को बरदाश्त नही करेंगे अैसी और अितनी तेजस्विता तो हममे होनी ही चाहिअे । साथ-साथ हमारा जीवन भी अितना सादा, सरल, सयमित, स्वाश्रयी, सन्तोषी और अपरिग्रही हो कि हमसे लडने का या हम पर अन्याय करने का किसी का दिल भी न हो ।

स्वावलबन और सत्याग्रह, सादगी और सतोष, अहिसा और तेजस्विता, अिन सब सामाजिक वृत्तियो की प्रतिनिधि है खादी । अगर समाज को अैसा आदर्श पसन्द आया तो खादी का भविष्य अुज्ज्वल है ही ।

विषय-सूची

परिशिष्ट

खादी-मीमांसा

: १ :

खादी और भारतीय संस्कृति

जब द्रव्य की तृष्णा की अपेक्षा चैतन्यमय मानवसृष्टि का कल्याण साधन करना, इस प्रकार की ही समाज-रचना होना जिसमें कि सम्पत्ति का समान बटवारा हो, आमोद-प्रमोद की प्रवृत्ति कम करके बन्धु-भावना का विकास करने की ओर अधिक ध्यान देना, औद्योगिक प्रतियोगिता पर प्रतिबन्ध लगाकर पारस्परिक व्यवहार सहयोग द्वारा करने की प्रवृत्ति रखना, द्रव्य साध्य नही साधन है, इस भावना से आचरण करना, और स्वार्थ के लिए अविराम दौड़-धूप करने में सुख न मानना, यही भारत का स्वभाव है।[१]

— राधाकमल मुकर्जी

मनुष्य और राष्ट्र इनमे अनेक बार एक प्रकार का साम्य होता है। जिस तरह प्रत्येक मनुष्य के स्वभाव मे एकाध विशिष्ट गुण की झलक प्रमुखता के साथ दिखाई पडती है, उसी तरह प्रत्येक राष्ट्र की अपनी कुछ-न-कुछ विशिष्टता होती है। ससार के मौजूदा प्रमुख राष्ट्रो की ओर इस दृष्टि से देखने पर हमे इग्लैण्ड की नाविकता अथवा जहाजरानी, जर्मनी की सैनिकता, फ्रास की ललितकलाभिरुचि, अमेरिका की उद्यमशीलता और हिन्दुस्तान की आध्यात्मिकता इत्यादि सद्गुण प्रमुखता से विकसित हुए दिखाई देते है।

हिन्दुस्तान अध्यात्म-प्रधान राष्ट्र है। इसका अर्थ यह है कि वह रहस्य-ग्राही और दूरदर्शी राष्ट्र है। वह क्षणभगुर और शाश्वत, देह और आत्मा, छिलका अथवा चोकर और सत्त्व का भेद पहचाननेवाला राष्ट्र है। ग्रीक, रोमन, बेबिलोनियन, मेसिडोनियन इत्यादि राष्ट्र उदय हुए और अस्त हो

१ "The Foundations of Indian Economics" पृष्ठ ४५९-६१ और ४६५-६७

गये, लेकिन उनके उदयाचल पर चमकने के पहले से मौजूद हिन्दुस्तान ही आजतक जीवित है, इसका कारण यही है कि उसका अस्तित्व आध्यात्मिकता के स्थायी पाये पर कायम हुआ है। हिन्दुस्तान की आज जो हीन स्थिति होगई है, उसका कारण, जैसा कि कई लोग समझते है, आध्यात्मिकता का अतिरेक नही, बल्कि इसके विपरीत उसका विस्मरण है ।[१]

सस्कृति का अर्थ है आत्मा का विकसित दर्शन । मनुष्य अथवा राष्ट्र की सस्कृति उसके बाह्य सौदर्य अथवा चमक-दमक पर नही, प्रत्युत उसके हार्दिक विकास पर और तज्जन्य प्रत्यक्ष कृति अथवा आचरण पर अवलम्बित होती है। दूसरे शब्दो मे कहा जाय तो कहना चाहिए कि मनुष्य का चारित्र्य

१. एक सज्जन ने महात्मा गाधी से यह प्रश्न किया था—'क्या यह सच नहीं है कि आध्यात्मिकता के विषय में जनता का परमोच्च विकास होने के कारण ही हिन्दू राज्य नाश को प्राप्त हुए ?' महात्माजी ने इसका नीचे लिखा उत्तर दिया था—

"मुझे एसा नहीं लगता। वस्तुत. आध्यात्मिकता के अभाव के कारण अथवा दूसरे शब्दो में नैतिक दुर्बलता के कारण ही हिन्दुओ को हर बार हार खानी पडी है। राजपूत आपस में लड़े और हिन्दुस्तान गवा बैठे। उनमें व्यक्तिगत शौर्य तो बहुत था; किन्तु उस समय उनमें वास्तविक आध्यात्मिकता का अभाव था। राम-रावण-युद्ध में रावण की पराजय और बानरों की सहायता लेकर लड़नेवाले राम की विजय होने का कारण राम की आध्यात्मिकता के सिवा और क्या है ? क्या आध्यात्मिकता के बल पर ही पाण्डवो की विजय नहीं हुई ? आध्यात्मिक ज्ञान और आध्यात्मिक विकास इन दोनो के बीच का अन्तर न जानने के कारण ही हमेशा गडबड होती है। धर्मग्रन्थों का ज्ञान होने और तात्त्विक चर्चा करना जानने का ही यह अर्थ नहीं है कि आध्यात्मिकता हमारे जीवन में आगई। आध्यात्मिकता का अर्थ है अमर्यादित शक्ति देनेवाला हार्दिक विकास। निर्भयता आध्यात्मिकता की पहली सीढी है। डरपोक लोग कभी भी नीतिवान् हो नहीं सकते।" Young India, part I, **पृष्ठ १०८८**

या शील उसकी सस्कृति का द्योतक होता है। राष्ट्र के धर्म, तत्त्वज्ञान और तदनुसार निर्मित राष्ट्रीय सुधार से ही राष्ट्र की सस्कृति व्यक्त होती है।

कलकत्ता हाईकोर्ट के एक भूतपूर्व न्यायाधीश सर जॉन वुडरफ ने 'Is India Civilised ?' (क्या भारत सभ्य है ?) नामक एक अत्यन्त गम्भीर और प्रभावशाली ग्रन्थ लिखा है। उसमे उन्होने वास्तविक सुधार क्या है, इस सम्बन्ध मे मार्मिक और विश्लेषणात्मक ढग से सविस्तर विवेचन किया है।

वुडरफ साहब के मत मे वही वास्तविक सुधार है जो व्यक्तिगत और सार्वजनिक हित-साधन करनेवाले धर्म को प्रोत्साहन दे और मानव-समुदाय का तात्कालिक एव आत्यन्तिक कल्याण करते हुए अखिल प्राणिमात्र को न्याय दिला कर उनके आध्यात्मिक विकास को पोषण दे।[१]

यही विचार उन्होने दूसरे शब्दो मे अधिक स्पष्टता के साथ निम्न प्रकार से प्रकट किये है। वह कहते है—

"जिस समाज का अधिष्ठान और पर्यवसान ईश्वर पर अवलम्बित है, और जिसके भौतिक और बौद्धिक व्यवहार आत्मा के विकास की दृष्टि से होते है, वह समाज सच्चा सुसस्कृत होता है। इस समाज का ऐसा व्यवहार मानो आदर्श नीति-तत्त्व और धर्म-सिद्धान्तो का पदार्थ पाठ ही है। इस व्यवहार के द्वारा मनुष्य पहले अपने विशिष्ट दैवी स्वरूप को पहचानता है और फिर सारे जगत मे व्याप्त दैवी शक्ति से एकरूप होकर उसके भी आगे चला जाता है, अर्थात् सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है।"[२]

सच्चे सुधार की यह कसौटी नियत करके जज महोदय कहते है—

"भारतीय उन्नति धर्म के आधार पर अधिष्ठित होने के कारण उसका ध्येय आध्यात्मिक है।[३] समाज का सगठन इसी ढग से किया गया है जिससे

१. पृष्ठ २३१। २ पृष्ठ ११

३ **श्री प्रमथनाथ बोस कृत** "Hindu civilisation during British period" Vol I Introduction **पृष्ठ ८ देखिए।**

कि उक्त ध्येय साध्य हो जाय।[१] सासारिक जीवन व्यतीत करते हुए परमार्थ की ओर प्रेरित करनेवाले हिन्दू धर्म के समान और कोई दूसरा धर्म नही है।"[२]

इस अध्याय के शीर्षक पर दिये गये अवतरण से स्पष्ट है कि प्रो० राधाकमल मुकर्जी की विचार-सरणी भी इसी प्रकार की है।

भारत की यह सस्कृति अत्यन्त प्राचीन, उज्ज्वल, भव्य, दिव्य और विशाल है। प्रो० मेक्समुलर, मोनियर विलियम्स,सर हेनरी मेन, सर थामस मनरो, मेकिण्डल, विन्सेण्ट, स्मिथ, विल्सन, हण्टर, टेलर, एल्फिस्टन, एन्स्टे, बॉर्डथार्टन, जार्नस्टजनी और डॉ० एनी बेसेण्ट आदि पश्चिमी तत्त्व-वेत्ता, इतिहासकार, तथा प्राच्यविद्याविशारदो ने अपने ग्रन्थो मे भारत की प्राचीन उच्च सस्कृति का अत्यन्त गौरवपूर्वक उल्लेख किया है। सस्कृति की प्राचीनता के सम्बन्ध मे अग्रेज लेखक मि० मोनियर विलियम्स लिखते है—

"जिस समय हमारे पूर्वज जगली स्थिति मे थे और जिस समय अग्रेजो का नाम कही सुनाई भी न पडता था, उससे कई शताब्दी पहले हिन्दुस्तानी लोगो की अत्यन्त उच्चकोटि की सस्कृति मौजूद थी। इसके सिवा उनकी सुसस्कृत भाषा, परिष्कृत साहित्य तथा गम्भीर तत्त्वज्ञान की प्राचीनता की भी ख्याति थी।"[३] भारतीय सस्कृति जितनी प्राचीन थी उसी प्रकार उस समय उसका प्रसार भी अत्यन्त दूर-दूर के राष्ट्रो तक था। 'मिस्र, फिनिक्स, स्याम, चीन, जापान, सुमात्रा, ईरान, खाल्डिया ग्रीस, रोम इत्यादि अनेक प्राचीन और दूर-दूर के देश भारतीय सस्कृति से परिचित थे।"[४]

१ पृष्ठ २७०। २ पृष्ठ २४६

३ Monier Williams "Indian Wisdom", Introduction पृष्ठ १६ Ed 1875 quoted from N. B. Pavgees's Self-Government in India, Vedic & past Vedic पृष्ठ ३१

४ Count Biornsteyruc Theogony of the Hindus पृष्ठ १६८ quoted from N B Pavgee's Self-Government in India, Vedic & Past Vedic पृष्ठ ३६

अस्नु, थोडे मे कहा जाय तो यो कहना चाहिए कि जो सस्कृति धर्म और नीति का अनुसरण कर शरीर, मन और आत्मा के विकास मे सहायक होती है, वही असल सस्कृति है। हिन्दुस्तान मे जब-जब इस सस्कृति की विजय हुई, तब-तब वहा सुख, समृद्धि और आनन्द छाया रहता था। भगवान् रामचन्द्र, अशोक, हर्ष, विजयनगर के कृष्णदेवराय तथा बालाजी बाजीराव पेशवा के कार्यकलाप इस सस्कृति के सुन्दर स्मारक है।

इस सस्कृति की विशेषता कहनी हो तो यो कहना चाहिए कि समाज के सब व्यवहार सामान्यत नीति और न्याय-सङ्गत होने के कारण समाज मे असन्तोष फैलने के लिए कोई गुजायश ही नही रहती थी। गीता की 'स्वे स्वे कर्मण्यभिरत ससिद्धि लभते नर' की उक्ति के अनुसार चारो ही वर्ण देश, काल और परिस्थिति के अनुसार अपने अपने प्राप्त कर्तव्य का उत्तमता के साथ पालन कर अपनी इहलौकिक और पारलौकिक उन्नति करते रहते थे। विभिन्न प्रकार के पेशेवालो मे 'स्पर्धा' अथवा 'चढा-ऊपरी' होने का कोई कारण नही रहता था, क्योकि हरेक का अपना अपना कार्य और कार्यक्षेत्र निश्चित रहता था। कार्य की अथवा कार्यक्षेत्र की कभी भी घाल-मेल नही होती थी।[1]

अन्न और वस्त्र शरीर के लिए अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। पहले खेती की तरह वस्त्रोत्पादन—कपडा बनाने का काम भी बहुत बडे परिमाण मे होता था। वस्त्रोत्पादन—खादी के धधे मे किसान, सुनार, लुहार, लुढवैये, धुनिये कत्तिन, जुलाहे, धोबी, रगरेज, छीपे आदि लोगो को काम मिलकर सम्पत्ति का उचित बटवारा होता रहता था। इससे समाज मे सन्तोष, सुख और शान्ति छाई हुई थी। सब जगह समान वर्षा होने से जिस तरह सबको एक समान आनन्द होता है, उसी तरह खादी के कारण पैसे का समान बटवारा होता रहता था जिससे सब मे समान सन्तोष

१. **श्री प्रथमनाथ बोस कृत** Hindu civilisation during British Period, Vol I Introduction **पृष्ठ ७९ तथा म० रा० बोडस कृत 'ग्रामसंस्था' पृष्ठ ४२–४३।**

फैला हुआ था। ऐसी स्थिति मे कोई 'जीवन-कलह' नामक शब्द जानता ही न था। वर्णव्यवस्था के आधार-भूत अनेक तत्त्वो मे के एक तत्त्व मे मर्यादित धनतृष्णा, अथवा भोग-लालसा से खादी का विशेष सम्बन्ध है। खादी के कारण सबको मर्यादित किन्तु सबको समान रूप से धन मिलता रहने के कारण सारा समाज एक समान सन्तुष्ट रहता है। समाज की आत्मा के इस प्रकार सन्तुष्ट रहने के कारण उसे ऐहिक और पारमार्थिक उन्नति के लिए अवसर मिल जाता है। खादी समाज की बिखरी हुई कडियो को पुन जोड देगी और इसलिए 'साम्यवाद' अथवा समाजवाद जैसी प्रवृत्ति के पैदा होने की कोई सम्भावना नही रहेगी।

हमारी प्राचीन सस्कृति परमेश्वर से साक्षात्कार करने की है, जबकि आधुनिक पश्चिमी सस्कृति उससे दूर ले जाने वाली है। पश्चिमी सस्कृति ने आज तक अनेक प्रकार के आश्चर्यजनक आविष्कार किये है, जिनके कारण ससार के ज्ञान और सुख-सुविधा मे बहुत वृद्धि हुई है, यह बात उक्त सस्कृति के कट्टर शत्रु भी अस्वीकार न कर सकेगे। श्री वुडरफ ने जो यह कहा है कि "पाश्चात्य सस्कृति कुछ दृष्टियो से प्रशसनीय होने पर भी उसका आधार धर्म-मूलक न होने के कारण वह भारतीय जनता को विष के समान प्रतीत होती है,"[१] यह कुछ अशो मे सही है। "पाश्चात्य सस्कृति का अर्थ है कि पश्चिमी लोगो के अगीकृत वर्तमान आदर्श और उनके आधार पर खडी की गई उनकी प्रवृत्तिया।" महात्माजी ने उस सस्कृति को त्याज्य माना है जो "पाशविक शक्ति को प्रधानता और पैसे को[२] परमेश्वर का स्थान देती है, जो ऐहिक सुखो की प्राप्ति के कार्यो मे ही मुख्यत समय बिताती और अनेक प्रकार के ऐहिक सुखो की प्राप्ति के लिए जी-तोड भारी साहसिक कार्य करती है तथा जो यान्त्रिक शक्ति की वृद्धि के लिए मानसिक शक्ति का अपार व्यय करती, विनाशकारी साधनो के आविष्कार के लिए

१. पृष्ठ ३४९

२. श्री प्रथमनाथ बोस कृत Hindu civilisation during British period, Vol I Introduction पृष्ठ १ देखिए।

करोडो रुपये खर्च करता है और यूरोप से बाहर की जनता को गौण मानने को धर्म समझती है।"[१]

पाश्चात्य सस्कृति का एक बडा दोष यह समझा जाता है कि उसके कारण आत्मा का समाधान नही होता। उसमे मिलो को बहुत अधिक महत्त्व का स्थान दिया जाता है। मिलो के कारण कुछ अगुलियो पर गिने जाने जितने लोग अन्यायपूर्वक लखपती बन जाते है, लेकिन उनमे काम करनेवाले लाखो मजदूरो के सदा असन्तुष्ट बने रहने के कारण राष्ट्र पर बराबर हडताल, दगे और गोलाबारी आदि के प्रसग आते रहते है। मानो राष्ट्र पर यह एक स्थायी सकट ही आ बैठा है। मिल-मालिक तो इस उधेड-बुन मे रहते है कि हम कब और किस तरह लखपती से करोडपती बन सकते है, और मजदूरो को यह चिन्ता रहती है कि मजदूरी बढवाकर अपने बाल-बच्चो की किस तरह व्यवस्था की जाय। इस प्रकार मिलो के मालिक और मजदूर दोनो ही श्रेणी के लोग सदैव असन्तुष्ट ही रहते है। इन्हे आत्म और अनात्म का विचार कहा से सूझेगा ?

अमेरिकन लेखक प्राइस कोलियर ने भारतीय स्थिति का निरीक्षण कर लिखा है—"अब हिन्दुस्तान पश्चिम के आर्थिक भँवर मे फसा है। मनुष्य की जायदाद कितनी है और उसने कितना द्रव्य पैदा किया है, इसपर उसका सामाजिक पद निश्चित किया जाता है, इस स्थिति के कारण वर्तमान असन्तोष मे और वृद्धि हो गई है। धनवान और अभिमानी होने की अपेक्षा सुशील होना अधिक आसान है, फिर भी बहुत लोग धनवान और अभिमानी होना ही पसन्द करते है। उनके सकट मे साम्पत्तिक असन्तोष की—पाश्चात्य विष की—और वृद्धि हो गई है।"[२] किसकी हिम्मत है जो यह कहने का साहस करे कि श्री प्राइस का उक्त कथन वस्तुस्थिति के अनुकूल नही है ?

१ **'नवजीवन' के १७ जनवरी १९२१ के अक का परिशिष्ट।**

२ **प्राइस कोलिर** (Price Collier) "The East in the West" **पृष्ठ २२२-२२३**

हमारी प्राचीन सस्कृति जिस प्रकार ईश्वर-परायण और आत्मा को सन्तोष देनेवाली है, उसी प्रकार वह स्वावलम्बी भी थी। अन्न-वस्त्र के लिए हमे कभी भी किसी विदेशी राष्ट्र का मुह देखने की जरूरत ही नही पडी।

पहले शरीर के लिए आवश्यक अन्न-वस्त्र की सुविधा घर-के-घर मे ही होने के कारण हमारी स्त्रियो पर पतिव्रत-धर्म क भग होने अथवा शील-भ्रष्ट होने की आपत्ति आने का भी मौका ही नही आता था। हमारे पूर्वजो ने "चक्की, चूल्हा, व चक्र" इस 'च' त्रयी का कभी भी त्याग नही किया था। इस कारण वे अत्यन्त स्वावलम्बी और सुखी थे। प्रत्येक कुटुम्ब म चक्की चूल्हा और चरखा या चक्री (तकली) अवश्य ही होनी चाहिए थीं। सूत चरखे अथवा चक्री—तकली—पर कातने की प्रथा थी। आजकल बडे-बडे शहरो मे जगह-जगह इस 'च' त्रयी का त्याग हुआ दिखाई पडता है। आटे की मिल में आसानी से आटा पिसवा लाना, होटल मे भोजन करना और बाजार से तैयार कपडे लेना, ये आजकल की सुख-सुविधा के साधन माने जाते है। पर दूरदृष्टि से देखने पर इनसे राष्ट्रोन्नति को कितना पोषण मिलता है, पाठक स्वय ही इसका विचार कर देखे! हमारे मत से आटे की मिलो ने बहुत-सी स्त्रियो को आलसी निरुद्योगी और परावलम्बी बना दिया है। यह अनुभव-सिद्ध बात है कि मिल के आटे मे बहुत-सा सत्त्व कम हो जाने के कारण वह हाथ-पिसे आटे जितना लोचदार एव स्वत्त्व-युक्त नही होता। आजकल के होटलो को नकली घी खपानेवाले अड्डे ही कहना चाहिए। वे अस्वस्थता के, गन्दगी के एव ससर्गजन्य रोगो के घर ही बन गये है। कपडो की दूकाने हमारे रक्तशोषण के मानो केन्द्र बन गई है। हम अन्न-वस्त्र के मामले मे दिन-प्रतिदिन कैसे और कितने परावलम्बी होते जाते है, यही ऊपर के विवेचन का सार है।

पाश्चात्य अर्थशास्त्र हमे सिखाता है कि अपनी आवश्यकता को बढाना उच्च सस्कृति का सूचक है।[१] परन्तु हमारे अध्यात्मशास्त्र—हमारी गीता—

१ **इस सम्बन्ध का विस्तृत विवेचन इस पुस्तक के "खादी और समाजवाद" नामक प्रकरण मे देखिये।**

हम सयमी बनने—जितेन्द्रिय होकर अपनी आवश्यकता कम करने के लिए कहते है।[1] गीता की शिक्षा जिस तरह निष्कामकर्मपरक है, उसी तरह सयमपरक भी है। जिस प्रकार लोकमान्य तिलक ने गीता-रहस्य लिखकर गीता के निष्कामकर्मपरक स्वरूप को विशद् करके बताया है, उसी तरह महात्मा गाधी ने अपने आश्रम के द्वारा उसका सयमपरक स्वरूप ससार की दृष्टि के सामने स्पष्ट रूप से ला रक्खा है। ऐसी स्थिति मे आधुनिक विद्वानो के सामने यह जबरदस्त प्रश्न खडा होता है कि हम पाश्चात्य अर्थ-शास्त्र को माने अथवा गीता के उपदेश के अनुसार आचरण करे। भोग भोगने से भोगेच्छा बढती जाती है।[2] उससे मन को और आत्मा को शान्ति न मिलकर उल्टे असन्तोष बढता जाता है। कोई भी विद्वान एव चतुर मनुष्य स्वीकार करेगा कि इसकी अपेक्षा **'यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपम्'** वाला सयम हा अच्छा है। डा० कुमार स्वामी कहते हैं—"आवश्यकता बढाना सस्कृति का लक्षण नही, बल्कि अपनी आवश्यकताओ को सुसस्कृत करना ही सच्ची सस्कृति का लक्षण है।[3] खादी सादी रहन-सहन अपनाकर हमे अपनी आवश्यकता कम करना सिखाती है, किन्तु पाश्चात्य सस्कृति हमारी आवश्यकताये बढाकर हमे विलासी बनाती है।

पश्चिमी और पूर्वी (भारतीय) सस्कृति का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करके वुडरफ साहब ने नीचे लिखा निष्कर्ष निकाला है—

"हमारी पाश्चात्य सस्कृति महान 'भक्षक' है। हम सब स्वाहा कर

१. राधाकमल मुकर्जी कृत 'Foundations of Indian Economics" पृ० ४५९ और ४६६; साथ ही श्री प्रथमनाथ बोस कृत "Hindu Civilisation during British period Vol I, Introduction पृष्ठ ८ भी देखिए।

२ महात्मा गाधी कृत 'हिन्द स्वराज' (हिन्दी); साथ ही श्री वुडरफ कृत 'Is India Civilised ?' पृ० २८ भी देखिए।

३ Art and Swadeshi पृ० ८.

जाते है। जिसे 'उच्च-जीवन' कहा जाता है अभी तक उसका अर्थ यही समझा जाता है कि हम अधिकाधिक हडप करते जाय। औद्योगिक युग ने हमे सन्तुष्ट करने के बजाय हमारी (पश्चिमी लोगो की) आवश्यकताये बढाई है। हमे अधिकाधिक सुख-साधनो की आवश्यकता रहने लगी है और अपने पास के साधनो के अपर्याप्त होने पर हम दूसरो के साधनो का आश्रय लेने लगते है। लारेन्स हाउसमन का यह कहना बिलकुल ठीक है कि 'आन्तरिक दृष्टि से देखने पर, द्रव्य-सञ्चय के पीछे पडने से प्रत्येक राष्ट्र थोडे-बहुत परिमाण मे परावलम्बी बन गया है।' अपने स्वार्थ की दृष्टि से जिस राष्ट्र पर हम अपना प्रभाव डाल सकते है, उसी पर हमे अवलम्बित रहना पडा है।[१] जो राष्ट्र अपने वैभव अथवा आवश्यकतापूर्त्ति के लिए अपने पैरो पर खड़े न रहकर, ज्यो-ज्यो दूसरे राष्ट्र पर अवलम्बित होते है, त्यो-त्यो उन्हे अपने जीवन के लिए उस राष्ट्र को अन्तर्राष्ट्रीय झगडो मे लपेट लेना पडता है। इन अन्तर्राष्ट्रीय झगडो का अन्त भीषण रक्तपात और मानव इतिहास के परिचित महा भयङ्कर युद्धो मे हुआ है। इन महायुद्धो का अन्तिम अध्याय अभी लिखा जाना बाकी है। भारत को यदि अपनी आत्मा को बचाये रखकर अपनी विशेषता कायम रखनी हो तो उसे अपने खुद को दूसरो मे विलीन न होने देने की विशेष सावधानी रखनी चाहिए। उसे अपनी रक्षा के लिए स्फूर्ति और शक्ति अपनी सस्कृति के सिवा और कहा से मिलेगी ? ससार के सब राष्ट्रो की जनता के, भारत की आध्यात्मिक सस्कृति के उच्च एव उदात्त तत्त्वो के, समर्थन और ग्रहण करने पर ससार मे शान्ति स्थापित होगी।"[२]

उपरोक्त सारे विवेचन पर से पूर्वी (भारतीय) और पाश्चात्य सस्कृति के बीच का अन्तर सक्षेप मे नीचे लिखे अनुसार किया जा सकता है—

	पूर्व (भारतीय) सस्कृति	पाश्चात्य संस्कृति
(१)	ईश्वर-परायण	द्रव्य-परायण

१. इग्लैण्ड अन्न के लिए हिन्दुस्तान पर अवलम्बित है।

२. श्री वुडरफ कृत 'Is India Civilised ?' पृ० ३४५

(२)	आत्मा को शान्ति देनेवाली	देह सम्बन्धी चोचले पूरे करने वाली
(३)	स्वावलम्बी	परावलम्बी
(४)	सयमी	विलासी

वस्त्रो के सम्बन्ध मे खादी भारतीय सस्कृति की प्रतिनिधि है और मिल के कपडे पाश्चात्य सस्कृति के समर्थक है। चरखे ने हमारी स्त्रियो के शील की रक्षा की है, मिलो ने उसके भ्रष्ट करने मे सहायता की है। खादी और मिल के कपडे के विरोध का अर्थ है उपरोक्त दोनो सस्कृतियो के बीच का झगडा। हिन्दू समाज और भारतीय सस्कृति को जीवित रखना हो -- ससार के कल्याण की दृष्टि से उसका जीवित रखना आवश्यक है—तो हिन्दुस्तान को खादी का समर्थन करना चाहिए। खादी का सागोपाग विवेचन करने के लिए उसकी प्राचीनता, विविधता और कला पर पहले विचार करना आवश्यक है। उसपर अगले अध्याय मे विचार करना सुगम होगा।

: २ :

खादी की प्राचीनता, विविधता और कला

खादी और उसकी प्राचीनता, विविधता और कला! कैसा विरोधाभास है यह! पहली नजर मे ऐसा विरोधाभास होना स्वाभाविक है। आमतौर पर खादी का अर्थ हाथ के कते सूत का मोटा-झोटा कपडा समझ लेना ही इस विरोधाभास का कारण है। हम समझते है कि मशीनयुग मे मिलो के सफाई-दार माल से तुलना करने की दृष्टि से मोटे-झोटे खुरदरे कपडे को 'खादी' के नाम से पहचानने का रिवाज पडा होगा। मशीन-युग का आरम्भ होने पर ही 'खादी' शब्द बना होना चाहिए। खैर, कुछ भी हो, सन् १६२० के असहयोग आन्दोलन के समय से, जब खादी-शास्त्र का निर्माण हुआ तब, उसकी जो शास्त्रीय व्याख्या निश्चित की गई, वह इस प्रकार है—'हाथ से कते और हाथ से बुने कपडे का नाम, फिर चाहे वे रुई के हो, रेशम के हो, ऊन के हो, सनके हो, रामबाण के हो, अबाडी के हो अथवा वृक्षो की छाल के हो, 'खादी' है।'[1] इस व्याख्या की दृष्टि से मशीन-युग का जन्म होने से पहले जो-जो वस्त्र तैयार होते थे—इनमे के बहुत से बारीक होते थे—वे सब खादी की शास्त्रीय व्याख्या के अन्तर्गत आसकते है। इस पुस्तक मे जहा-जहा 'खादी' शब्द का प्रयोग हुआ है, वहा वह शास्त्रीय व्याख्या का अनुसरण करके ही व्यवहृत हुआ है। खादी की उपरोक्त व्याख्या से उसकी विविधता की भी कल्पना हुई ही होगी।

१ अखिल भारतीय-चरखा-सघ के जीवन-वेतन का सिद्धान्त स्वीकार करने के बाद व्यापारिक पद्धति से तैयार की गई खादी की व्याख्या इसकी अपेक्षा और भी व्यापक हो गई है। वह इस प्रकार है:—

"हाथ-लुढी रुई से जीवन-वेतन के सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी देकर हाथ से कते और हाथ से बुने कपड का नाम 'खादी' है।"

खादी की प्राचीनता[1] और विविधता

हिन्दुस्तान मे हाथ से कातने और बुनने की कला अत्यन्त प्राचीनकाल —वेदकाल—से प्रचलित है। औध के 'स्वाध्याय मण्डल' के सचालक श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने 'वेद मे चरखा' नामक एक पुस्तक लिखी है, जिसमे उन्होने हाथ से कते और हाथ से बुने कपडे किस तरह और कौन तैयार करता था, इसका विस्तार के साथ विवेचन किया है। इसी तरह श्री गणेशदत्त शर्मा ने अपनी 'खादी का इतिहास' नामक पुस्तक मे भी वेदकालीन वस्त्रविद्या विषयक चर्चा की है।

वैदिक काल मे (१) माता अपने पुत्र के लिए और (२) पत्नी अपने पति के लिए वस्त्र तैयार करती थी, इस आशय के वाक्य है। वे वाक्य इस प्रकार है—

(१) वितन्वते धियो अस्मा अपासि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयति ॥

—ऋग्वेद ५।४७।६

अन्वयार्थ—मातर असो पुत्राय धिय अपासि वितन्वते वस्त्रा वयति—अनेक माताये इस लडके के लिए सद्विचार का ताना तनती है और उसमे सत्कार्य का बाना डालकर वस्त्र बुनती है।

१ खादी की प्राचीनता की यथार्थ कल्पना आने के लिए निम्नलिखित पौराणिक और ऐतिहासिक काल की जानकारी होना आवश्यक है—

भगवान् रामचन्द्र—रामायण-काल	**ईसवी**	**सन् के पूर्व**	**५००० वर्ष**
युधिष्ठिर—महाभारत-काल	”		**३००० ”**
गौतम बुद्ध	”		**६०० ”**
चन्द्रगुप्त	”		**३०० ”**
अशोक	”		**२५९ ”**
विक्रमादित्य	”		**५६**
समुद्रगुप्त	”	**बाद**	**३०० ’**
हर्ष वर्धन	’	’	**६०० ’**

(२) ये अन्ता यावती सिचो य ओतवो ये च ततव
वासो यत्पत्नीभिरुत तन्न स्योनमुपस्पृशात्
--अथर्व १४।२।५१

अन्वयार्थ—ये अन्ता —कपडे का जो अन्तिम भाग है
यावती सिच.—जो किनारे है
ये ओतव.—जो बाना है
ये च ततव —जो ताना है, इन सबको मिलाकर
यत् पत्नीभि उतवास —पत्नी ने जो कपडा बुना है
तत्—वह
न स्योन उपस्पृशात्—हमे सुख-स्पर्शदायी हो, अर्थात्
उसका स्पर्श हमे सुखदायी हो ।

इस प्रकार के अनेक वचन देकर श्री सातवलेकर ने निम्न-लिखित निष्कर्ष निकाला है—

"इन सब वचनो से ऐसा मालूम पडता है कि वेद-काल मे वेद मे प्रदर्शित इच्छानुसार कपडे बुनने का काम हरेक घर मे होता होगा, अर्थात् प्रत्येक घर मे फुरसत के समय करने योग्य यही धन्धा है ।" (पृष्ठ ६६)

इस समय आसाम मे यह प्रथा अब भी प्रचलित है ।[1] वहा यह बात रूढ ही हो गई है कि जिस लडकी को बुनना नही आता उसका विवाह ही न किया जाय । इसी तरह उडीसा प्रान्त के सम्भलपुर जिले मे भी ऐसी ही एक प्रथा है ।[2] अभीतक प्रचलित इस रूढि से वैदिक काल मे घर-घर कपडे बुनने की प्रथा होने मे आश्चर्य मालूम होने की कोई बात नही है । और यह बिलकुल साफ है कि जिस हालत मे बुनाई का काम इतनी तेजी से होता था उसमे उसके लिए आवश्यक सूत भी घर-घर काता जाना होना चाहिए ।

१ श्री रामेशचन्द्र दत्त भाग २, पृष्ठ १८२
२ 'हाथ की कताई-बुनाई' " " १८

रामायणकाल मे सिर्फ रेशमी वस्त्र पहनने का ही रिवाज था।[१] सीता ने जिस समय नवोढा के रूप मे दशरथ के राजमहल मे प्रवेश किया था उस समय वह रेशमी वस्त्र पहने हुए थी और दशरथ की रानियो ने रेशमी वस्त्र पहन कर ही उसका स्वागत किया था। इसी तरह भरत जिस समय रामचन्द्रजी से भेट करने के लिए गये उस समय उनकी पोशाक भी रेशमी ही थी। रावण सोने के समय भी रेशमी वस्त्र पहनता था। सीता जिस समय दण्डकारण्य मे विरह-विह्वल बैठी थी, उस समय भी उसके शरीर पर रेशमी ही साडी थी। लेकिन यह तो हुई राजघरानो के स्त्री-पुरुषो की बात। यहा यह शका होना स्वाभाविक ही है कि साधारण लोगो की पोशाक रेशमी न होगी, लेकिन रामायण के अयोध्याकाण्ड के वर्णन से यह स्पष्ट दिखाई देता है कि उस समय साधारण दासी की साडी तक रेशमी ही थी।

महाभारत-काल मे रुई के बारीक वस्त्रो के लिए तामिल देश प्रसिद्ध हुआ था। महाभारत मे यह उल्लेख है कि राजसूय यज्ञ के समय चोल व पाण्ड्य राजाओ ने रुई के बारीक वस्त्र भेट किये थे।[२]

मौर्य-काल मे ऊनी वस्त्र सोलह प्रकार के होते थे।[३] उनमे पलगपोश (तालिच्छाका), अगरखे (बाराबाण), पतलून (सपुटिका), पडदे (लम्बार), दुपट्टे (प्रच्छापट्ट) तथा गलीचे (सत्तालिका) आदि का समावेश होता था। इसके सिवा दक्षिण, मदुरा, कोकण, कलिग, काशी, वग, कौशाबी तथा माहिष्मती के रुई के वस्त्र सर्वोत्कृष्ट होते थे।[४]

१ Samadar Economic Condition of ancient India पृष्ठ ७७.

२ चिन्तामणि विनायक वैद्य कृत 'मध्ययुगीन भारत' भाग ३, पृष्ठ ४०९

३ इस बात का ऐतिहासिक प्रमाण है कि मिस्र में तीन हजार वर्ष पहले गाडी हुई ममियो के शरीर पर के वस्त्र हिन्दुस्तान मे तैयार हुए थे।

४ सतीशकुमार दास कृत "The Economic History of ancient India पृष्ठ १४५

जो यह समझते है कि कोकण, वग (बगाल) मे कपास अथवा रुई नही होती, इनको यह जानकारी बोधप्रद और उनकी विचारशक्ति और शोधक बुद्धि को गति देने वाली होगी कि वहा अच्छी खादी बनती थी। कौटिलीय अर्थशास्त्र मे इस बात का उल्लेख आया है कि नैपाल मे ऊन और रुई के वस्त्रो के सिवाय 'भिगीसी' और 'अपसारक' नामक वाटरप्रूफ वस्त्र भी तैयार होते थे।

मौर्यकाल मे सूत कातने की प्रथा जोरो से प्रचलित थी। कौटिल्य-अर्थशास्त्र मे उसके सम्बन्ध मे सूक्ष्म जानकारी दी गई है। राज्य-कार्य के सुव्यवस्थित सघटित तथा सुचारु रूप से चलाने के लिए जो विविध प्रकार के विभाग खोले गये थे, उनमे सूत कातने और वस्त्र बुनने के कार्य पर देख-रेख रखने वाला भी एक विभाग खोला गया था।

"बुनाई के काम पर नियुक्त अधिकारी को 'सूत्राध्यक्ष' कहा जाता था। उसे अपने-अपने विषयो के जानकर कारीगरो की सहायता से विभिन्न रेशे वाले वनस्पतियो के ततुओ से सूत कातने और उस सूत के वस्त्र तथा जिरह-बख्तर अथवा कवच तैयार करवाने और इसी तरह कुछ वनस्पतियो के ततुओ से रस्सिया बटवाने—बास से भी रस्सी बनाई जाती होगी—आदि काम करवा लेना होता था।"

"ऊन कातने, तथा वृक्षो की छाल, घास, रामबाण आदि के ततु निकालने और रुई का सूत कातने का काम अक्सर विधवाओ, जुर्माना देने मे असमर्थ अपराधिनी स्त्रियो, जोगिनियो, देवदासियो, वृद्धावस्था को प्राप्त राजदासियो तथा वेश्याओ से करवा लिया जाता था। उन्हे उनके काम की सुघडता और परिमाण के अनुसार उसका वेतन दिया जाता था। निश्चत छुट्टियो के दिनो मे अगर उनसे काम करवाना होता था तो उन्हे उस काम के बदले में विशेष मुआवजा दिया जाता था और काम के दिनो मे कम काम होने पर उनके वेतन मे से पैसे काट लिये जाते थे। वस्त्रादि बुनने का काम जिन विशेषज्ञ करीगरो के सुपुर्द किया जाता था उन्हे उनके कौशल और उनके काम की कुशलता व सुघडता के अनुमार वेतन दिया जाता था। इस

सब मजदूर-वर्ग पर सूत्राध्यक्ष की कडी नजर रहती थी।"[1]

उस समय के राजा-महाराजा प्रजा-हित मे कितने दक्ष थे और छोटी-छोटी बातो पर भी उनका कितना ध्यान था, यह बात उन्होने गरीब स्त्रियो की उपजीविका के लिए जो व्यवस्था की थी उससे स्पष्ट दिखाई देजाती है। कौटिलीय अर्थशास्त्र मे स्पष्ट उल्लेख है कि—

"जो स्त्रियाँ घर से बाहर नही निकलती थी, जिनके पति परदेश गये होते थे, अथवा जो पगु अथवा कुवारी होती थी उन्हे जब कभी परिस्थितिवश आजीविका के लिए काम की आवश्यकता होती थी, तब सरकारी बुनाई विभाग की ओर से नौकरानी भेजकर उन्हे उनकी हैसियत के अनुसार सूत कातने का काम देने की व्यवस्था थी।"[2]

हमारी अग्रेजी-सरकार हमारे करोडों बेकार और बुभुक्षित लोगो के लिए क्या व्यवस्था करती है ?

हर्ष-काल मे रेशमी, ऊनी, रामबाण तथा जगली पशुओ की ऊन के वस्त्र, क्रमश कौशेय, कम्बल, क्षौम और होलल अथवा होरल के नाम से जाने जाते थे।

महाभारत-काल की तरह ही हर्ष-काल मे भी भडौच की रुई और उसके वस्त्र प्रसिद्ध थे।[3] इस के सम्बन्ध मे श्री वैद्य अपने 'मध्ययुगीन भारत' के पहले भाग मे लिखते है—

"उस समय हिन्दुस्तान मे रेशम, ऊन, और रुई के अत्यन्त बारीक वस्त्र बुनने की कला पूर्णता को पहुची हुई थी, और आज जिस प्रकार कुछ जगह—ढाका आदि मे—विलायती बारीक वस्त्र से भी अधिक बारीक वस्त्र बुने जाते है, उस तरह उस समय भी होते थे। राज्यश्री[4] के विवाह

१. टिपणीसकृत "कौटिलीय अर्थशास्त्र-प्रदीप"

२. सतीशकुमार दास कृत "The Economic History of Ancient India" पृष्ठ १४४–४५

३. सतीशकुमार दास कृत " " पृष्ठ २७५–७६

४. हर्ष की बहन

अवसर पर लाये गये वस्त्रो का 'बाण' ने जो वर्णन किया है उसे देखने से इस बात की कल्पना हो सकती है कि हर्ष के समय मे वस्त्र बुनने की कला कितनी पूर्णता को पहुच चुकी थी। बाणभट्ट कहता है— "राजमहल मे जहा-तहा क्षौमें (सन् के), दुकूले (रेशम), लालातंतु (कोसा के) अंशुके, नैत्रे (ये वस्त्र क्या होगे, यह समझ मे नही आता) आदि विविध प्रकार के वस्त्र फैले हुए थे जोकि साप की केंचुली के समान दमकनेवाले, फूक से ही उडनेवाले, हाथ के स्पर्श-मात्र से ही बोध कराने वाले तथा इन्द्रधनुष के समान चित्र-विचित्र रग के थे।" पृ० १३१

यहातक स्थूल रूप से खादी की प्राचीनता और विविधता का वर्णन हुआ। आइये, अब उसकी कला पर दृष्टि डाले।

खादी की कला

नवी सदी के आरम्भ मे 'सुलेमान' नाम का एक मुसलमान व्यापारी हिन्दुस्तान मे आया था। उसने यहा के वस्त्रो के सम्बन्ध मे लिखा है कि "इस देश मे रुई के वस्त्र इतने बारीक और कौशल के साथ तैयार किये जाते है कि उस वस्त्र का बुना हुआ एक चोगा मुहर की अगूठी मे होकर निकल सकता है।"[१]

"एक कारीगर जुलाहे ने एक अत्यन्त बारीक वस्त्र बास की छोटी-सी नली मे डालकर अकबर बादशाह को भेट किया था। वह वस्त्र इतना लम्बा चौड़ा था कि उससे एक हाथी अम्बारी सहित अच्छी तरह ढक सकता था।"[२]

सुप्रसिद्ध विदेशी यात्री टेवर्नियर अत्यन्त उत्साह के साथ लिखता है, "एक ईरानी एलची ने मोतियो से गुथा एक नारियल अपने राजा को भेंट दिया जो शुतुरमुर्ग के अडे के बराबर था। उसे फोड़ने पर उसमे से

१. सूर्यनारायणराव कृत "History of the never to be forgotten Empire" पृष्ठ ३००

२. गणेशदत्त शर्मा कृत 'खादी का इतिहास' पृष्ठ ३९

साठ हाथ लम्बी एक बारीक पगडी निकली।"[१]

"टेलर साहब ने सन् १८४६ मे खादी का एक वस्त्र देखा था। वह बीस गज लम्बा और पैतालीस इच चौडा था, लेकिन उसका वजन था सिर्फ सात छटाक अथवा पैतीस तोले।" उसी तरह "उन्होने ढाका में इतना बारीक सूत देखा था कि उसकी लम्बाई तो १३४९ गज थी, लेकिन उसका वजन था सिर्फ २२ ग्रेन! आजकल की पद्धति से हिसाब करने पर उसका नम्बर ५२४ निकलता है।"[२]

औरगजेब की लडकी शाहजादी जेबुन्निसा एक समय इतना बारीक वस्त्र पहने हुई थी कि उसमे उसका शरीर नगा-सा दिखाई देता था। लडकी को ऐसी स्थिति मे देखकर औरगजेब उसपर सख्त नाराज हुआ। इसपर उसने जवाब दिया, "जहापनाह, मै अपने जिस्म पर सात कपडे पहने हुए हू।"[३]

ठीक इसी तरह का एक दूसरा उदाहरण है। इतिहास-लेखक मि० हण्टर लिखते है—"कलिग देश के राजा ने अयोध्या के राजा को एक रेशमी वस्त्र भेजा था। राजकन्या के उसे पहिनने पर उसपर यह आक्षेप किया गया था कि वह कही नग्न तो नही है।"[४]

कपडे की बारीकी के सम्बन्ध मे ढाका अत्यन्त प्राचीनकाल से प्रसिद्ध है। रे० वार्ड ने अपना मत व्यक्त किया है कि ढाका की मलमल तैयार करने मे हिन्दू कारीगरो का कौशल आश्चर्यजनक है। कुछ कुटुम्बों मे वह इतनी अनुपम बनाई जाती है कि एक थान बुनने में चार महीने लग जाते है। वह थान चारसौ अथवा पाचसौ रुपयो मे बेचा जाता है। वह मलमल इतनी बारीक होती थी कि उसे घास पर फैलाने पर यदि ओस पड जाय

१ Essay on Handspinning and weaving पृष्ठ २९

२. "खादी का इतिहास" पृष्ठ ७०

३ Essay on Handspinning and Weaving

४. सतीशकुमारदास कृत "The Economic History of Ancient India" पृष्ठ २७५

तो वह दिखाई तक नही देती थी।"[१]

"प्राचीन और मध्ययुगीन" के लेखक मि० मोनिग अपनी पुस्तक मे लिखते है—"ढाका की मलमल इतनी बारीक तैयार होती थी कि उन्नीसवी सदी की मशीने उतना बारीक सूत निकाल नही सकी थी।"[२]

'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' मे भी इसी आशय के विचार प्रदर्शित किये गये है—

"हिन्दुस्तान मे हाथ के करघे पर बुने हुए रुई के अत्यन्त सुन्दर वस्त्र बारीकी की दृष्टि से इतने पूर्णावस्था को पहुच चुके है कि अर्वाचीन यूरोप मे मशीन के आश्चर्यजनक साधनो से भी उतने सुन्दर वस्त्र तैयार हो नहीं सकते।"[३]

यन्त्रशास्त्र विशेषज्ञ मि० क्लेअर ने इग्लैण्ड की मिलो के सूत से ढाका के हाथ-कते सूत की तुलना करते हुए निम्नलिखित उद्गार प्रकट किये है—

"इग्लैण्ड मे मिलो का सूत इतना बारीक होता है कि एक पाउण्ड सूत मे ३३० अट्टी चढती है। इनमे से प्रत्येक अट्टी की लम्बाई ८४० गज होती है। कुल सूत १६५ मील तक फैलेगा। सूक्ष्मदर्शक यन्त्र—खुर्दबीन—की सहायता से इस धागे का व्यास निकालने पर वह एक इच का ४८० वा हिस्सा ($\frac{१}{४८०}$") ठहरता है। लेकिन हिन्दुस्तान में हिन्दुओ द्वारा हाथ से कते हुए सूत का इसीप्रकार माप निकालने पर उसका व्यास एक इच का एक हजारवा ($\frac{१}{१०००}$")ठहरता है। इसका मतलब यह हुआ कि हिन्दुस्तान में हाथ कते सूत के चार धागे लेकर एकसाथ बट दिये जाय तब इग्लैंड की मशीन के सूत के बराबर मोटे होगे।"[४]

अर्थात् श्री तालचेरकर लिखते है कि "भारतीय कारीगरो का हाथ का

१. तालचरकर के "Charkha Yarn" पृष्ठ ७ से
२. भाग १, पृष्ठ ३५६। "खादी का इतिहास" पृष्ठ ३६ से
३. पृष्ठ ४४६
४. तालचेरकर के "Charkha Yarn" पृष्ठ ३६ से

काता हुआ सूत इग्लैण्ड के ३३०नम्बर के सूत से चौगुना बारीक होता था।"[1]

नीचे के अको से यह स्पष्ट दिखाई पडता है कि ढाका की मलमल और फ्रेञ्च तथा इग्लिश मलमल की प्रत्यक्ष तुलना की जाने पर बारीकी, बट, पोत, टिकाऊपन और कस मे दोनो ही यूरोपियन राष्ट्रो की मलमल ढाके की मलमल की बराबरी नही कर सकी[2]—

वर्णन	धागे का व्यास एक इञ्च का भाग	धागे की सख्या प्रत्येक इञ्च मे
फ्रेञ्च मलमल (अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी)	००१९	६८ ८
इग्लिश मलमल (सन् १८५१, ४४० नम्बर)	००१८	५६ ६
ढाका की मलमल (अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी १८६२)	००१५६२५	८० ७
ढाका की मलमल (भारतीय अजायबघर)	००१३३७५	११० १

सन् १६१७-१८ मे 'सर थामस रो' के धर्मगुरु एडमण्डटेरी नौ महीने अहमदाबाद ठहरे थे। बारीक कपडे पर रग व छपाई के काम के सम्बन्ध मे वह अपने यात्रा-वर्णन मे लिखते है—"यहा के लोग रुई से भिन्न-भिन्न प्रकार के कपडे तैयार करते है। इन कपडो को वे रगते है और उनपर सुन्दर आकार-प्रकार के फूल और आकृति छापते है। ये रग इतने पक्के होते है कि कैसे ही पानी में डालने पर भी वे नही उतरते। छापने की इस सुन्दर कला मे ये लोग इतने प्रवीण होगये है कि गाव के और दूर-दूर के लोग इनसे छीटे खरीदने के लिए अपने साथ पैसे लेकर इनके पास आते है।[3]

हिन्दुस्तान से बढिया बारीक कपडे कितनी अधिक तादाद मे बाहरी

१. 'Charkha Yarn' पृष्ठ ८
२. Essay on Handspinning and Weaving पृष्ठ३६
३. "नवजीवन", ७ अक्तूबर १९२८.

देशो को जाते थे, इस सम्बन्ध मे टेवर्नियर लिखता है—"सन् १६८२ मे अकेले सूरत बन्दर से १४,३६,००० और मारे भारतवर्ष से ३०,००,००० से अधिक थान विलायत के लिए रवाना हुए।"[१]

यह बात नही है कि केवल रुई के वस्त्रो के बारे मे ही हिन्दुस्तान ने इतनी प्रगति की थी, रेशमी माल भी भारी तादाद मे तैयार होता था। हिन्दुस्तान मे तैयार होनेवाले माल के सम्बन्ध मे टेवर्नियर ने सिर्फ कासिम-बाजार का ही वर्णन किया है। वह लिखता है—"बगाल के इस गाव से २२ लाख पाउण्ड वजन की, रेशमी कपडे की, २२ हजार गाठे विदेश जाती है। सोने-चादी के कलाबत्तू का काम कढे हुए रेशम के गलीचे आदि सैकडो तरह की अत्यन्त सुन्दर वस्तुए भारत मे तैयार होती है। ढाका की मलमल तो इतनी अपूर्व बनती है कि, कई बार तो वह सोने-चादी के भाव बिकती है।"[२]

इसी तरह बर्नियर कहता है—"बगाल मे इतना रेशमी माल तैयार होता है कि वह मुगल साम्राज्य की ही नही, बल्कि यूरोपियन साम्राज्य तक की आवश्यकता पूरी कर सकता है।"[३]

रेशमी माल के लिए बगाल मे मुर्शिदाबाद अत्यन्त प्रसिद्ध था और अब भी है। इसी तरह बनारस, दक्षिण हैदराबाद, मैसूर और कच्छ भी प्रसिद्ध थे। पूना, सूरत और थाना का रेशमी माल भी अपनी सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध था। रेशम पर विविध रगो और बेलबूटो के नक्काशीदार फूल और बेलबूटे काढने के लिए बनारस और अहमदाबाद के शहर प्रसिद्ध थे।[४]

आइये, अब ऊनी माल का कुछ दिग्दर्शन करे।

"काश्मीर के शाल, पजाब के पट्टू, मैसूर की बिना जोड़ की घुग्घी और चागे तथा नैपाल और तिब्बत का ऊनी माल वर्णन करने योग्य था।"[५]

१. "नवजीवन", ७ अक्तूबर १६२८

२. 'हिन्दी स्वराज्यची कैफियत' पृष्ठ २१

३ "खादी का इतिहास" पृष्ठ ७३

४-५. आर पलित कृत "Sketches on Indian Economics पृष्ठ १५७-१५८

हिन्दुस्तान के दुशालो के सम्बन्ध मे सर थामस मनरो का मत है कि उक्त शाल लगातार सात वर्ष तक व्यवहार मे लाने पर भी उसमे जरा भी अन्तर नही पडा। भारतीय शाल की नकल करके बनाये गये विलायती शाल के सम्बन्ध मे उन्होने कहा था—"मुझे वैसा शाल कोई भेट करे तो भी मै वह कदापि इस्तेमाल नही करूगा।"[1]

काश्मीर के दुशालो की अभी भी ख्याति है। पाठको को यह जानकर आश्चर्य होगा कि सन् १८४६ मे अग्रेजो की काश्मीर राज्य से जो सन्धि हुई, उसमे एक शर्त यह भी रक्खी गई थी कि काश्मीर राज्य प्रति वर्ष काश्मीर का बना हुआ एक शाल भारत-सम्राट को भेजता रहेगा। यह शाल करीब-करीब आठ हजार रुपये का होता है। इसके सिवा तीन ऊनी रूमाल भी शाल के साथ भेजने पडते है। यह कहने की जरूरत नही कि ये भी उसी मान से कीमती होते है।[2]

१ दत, भाग २ पृष्ठ ४१

२ "खादी का इतिहास" पृष्ठ ८०

: ३ :

कपड़े का व्यवसाय कैसे मिटाया ?

वैदिक-काल से उन्नीसवी सदी तक वस्त्रो के सम्बन्ध मे हिन्दुस्तान ने कितनी प्रगति की थी, यह हम पिछले अध्याय मे देख चुके है। उक्त वस्त्र-व्यवसाय का किस प्रकार गला घोटा गया उसका हृदय-द्रावक इतिहास इस अध्याय मे बताना है। इसके लिए क्रमश नीचे लिखे मुद्दो का विवेचन करना है—

(१) भारतीय वस्त्रो का प्रसार और व्यापार,
(२) उस माल की इग्लैण्ड मे लोकप्रियता,
(३) उसपर ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा उठाया गया मुनाफा,
(४) ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियो द्वारा—
 (अ) प्रजा पर किया गया जुल्म,
 (आ) जुलाहो के साथ की गई ज्यादतिया,
 (इ) नवाबो को किस तरह लूटा गया ?
(५) इग्लैण्ड का सरक्षक कर तथा भारतीय व्यापार पर उसका परिणाम,
(६) कस्टम-विभाग का जुल्म,
(७) 'मुतार्फा' कर का जुल्म,
(८) अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी, अजायबघर, आदि।

(१) भारतीय वस्त्रों का प्रसार और व्यवसाय

अत्यन्त प्राचीन-काल से हिन्दुस्तान की मलमल और दूसरा सूती माल खुश्की और जलमार्ग दोनो से एशियाखण्ड के पश्चिम भाग, सीरिया, बेबिलोन, ईरान, चीन, जावा, पेगू, मलाया, ग्रीस, रोम, तथा मिस्र आदि देशो को जाता था।[१]

१. Essay on Handspinning and Weaving, पृष्ठ १५

सिन्धु नदी के मुहाने पर का बार्बेरीकान, खभात की खाडी, उज्जैन, पैठन, देवगिरी, सूरत, नवसारी, कन्याकुमारी, मछलीपट्टम तथा कावेरीपट्टम आदि इस माल का निर्यात करनेवाले भारत के बडे बन्दर और शहर थे।[१] भारत के इस माल के १५० प्रकार होने और उसके बेहद सस्ते और टिका-ऊपन के कारण वह सर्वत्र लोकप्रिय हो गया था, विशेषत उसने विलायत के बाजार पर कब्जा कर लिया था।[२]

(२) इग्लैण्ड मे भारतीय माल की लोक-प्रियता

बगाल का वर्णन करते हुए लार्ड मेकाले कहते है—"लन्दन और पेरिस की स्त्रिया बगाल के करघो पर तैयार होनेवाले कोमल वस्त्रो से विभूषित थी।" इसी तरह अठारहवी सदी के इग्लैण्ड के इतिहास का लेखक लेके अपने ग्रन्थ के दूसरे भाग मे कहता है—"सन् १६८८ की राज्यक्रान्ति के बाद जब महारानी मेरी ने अपने पतिसहित इग्लैण्ड मे प्रवेश किया उस समय उसकी पोशाक पर से ऐसा मालूम होता था मानो हिन्दुस्तान के रगीन माल ने उसे आश्चर्य-मुग्ध कर दिया है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि समाज मे उसी माल का तेजी से प्रचार हुआ।[३] इन सस्ती और सुन्दर छीटो और मलमल के तेजी से लोकप्रिय होने के कारण सत्रहवी सदी के अत मे इग्लैण्ड का ऊन और रेशम का व्यवसाय तले बैठ गया। इस कारण उसने सन् १७०० और १७२१ मे पार्लमेण्ट में कानून पास करवा कर हिन्दुस्तान के छपे हुए और रगीन माल पर जबर्दस्त चुगी लगवाई और इस प्रकार माल की आयात बन्द करवाई।[४]

इग्लैण्ड मे हिन्दुस्तान के माल की लोकप्रियता देखकर वहा के सुप्रसिद्ध

१. Essay on Handspinning and Weaving पृष्ठ १६

२. " " पृष्ठ ४३—५१

३. बी.डी. बसुकृत "Ruin of Indian Trade and Industries" पृष्ठ ४ से

४ 'लेके' (Leckay) भाग २ पृष्ठ २५५-५६, बी. डी. बसुकृत Ruin of Indian Trade and Industries पृष्ठ ४ से उद्धृत

लेखक डेनियल डीफो का हृदय तिलमिला उठा और इसलिए उसने लिखा कि पहले जिन छीटो और रुई के रगीन वस्त्रो को हम अपनी चद्दरो और पलग-पोश के काम मे लाते थे अथवा जिस माल को पहले साधारण पुरुष एव लडके व्यवहार में लाते थे, उसी माल को अब कुलीन स्त्रियो ने व्यवहार करने की प्रथा डाली है। जिस माल को पहले हम ताजपोशी होने के समय काम मे लाते थे वही अब हमारे सिर पर चढने लगा है। बात इतने पर ही समाप्त नही होती, बल्कि हमारे शयन-गृह, दीवानखाने और गद्दी-तकिये आदि सब पर हिन्दुस्तान का माल सुशाभित होने लगा है। हिन्दुस्तान से जो माल यहा आता है वह भारी नफा लेने पर भी हमारे माल की अपेक्षा सस्ता ही पडता है।[१]

(२) भारतीय वस्त्र पर लिया जानेवाला मुनाफा

अब हम यह देखेगे कि भारतीय माल पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी कितना मुनाफा लेती थी।

"सूती वस्त्र के जिस थान की कीमत ७ शिलिंग पडती थी वह २० शिलिंग मे बेचा जाता था।"[२]

लियाल नामक एक अग्रेज सिविलियन लिखता है—"हिन्दुस्तान पर हमारे शासन करने का मुख्य कारण यही है कि उसके व्यापार से हमे जबर्दस्त नफा मिलता है। सन् १६६२ मे हम हिन्दुस्तान से ३,५६,२८८ पौण्ड का माल लाये और वह विलायत मे १९,१४,६०० पौण्ड मे बिका।"[३]

एक इतिहास-लेखक ने लिखा है कि "सन् १६७६ मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हिस्सेदारो को अपने एक हिस्से के जितन मुनाफा (बोनस) मिला, और जिसके दो हिस्से थे उन्हे ५ वर्ष तक बीस प्रतिशत मुनाफा मिला।"[४]

१ Essay on Handspinning and Weaving पृष्ठ ५०-५१ से उद्धृत
२ " " " " पृष्ठ ४६
३ गणपति ऐयर कृत "Indian Industrialism" पृष्ठ ६
४ Essay on Handspinning and Weaving पृष्ठ ४७

सर चार्ल्स डाविनेट लिखते है—"पेरू और मेक्सिको प्रदेशों पर शासन करने से जो राजकीय आय होती है उससे ६० लाख पौण्ड अधिक आय भारत के व्यापार से होती है।[१]

यह तो हुआ ईस्ट इण्डिया कम्पनी का मुनाफा। अब इस बात का विवेचन करना है कि उस कम्पनी के नौकरो ने किस तरह (अ) जनता पर अत्याचार कर, (आ) जुलाहो को सता कर और (इ) नवाबो को लूट कर अपनी तौद भरी। इससे पहले इस बात की कल्पना आवश्यक है कि ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के जो नौकर हिन्दुस्तान मे आते थे उनकी उस काम के लायक योग्यता कितनी होती थी और उनका सामाजिक एव नैतिक दर्जा क्या होता था। लार्ड मेकाले ने अपनी सजीव भाषा मे लिखा है—

"कम्पनी के कर्मचारी बहुतकर विलायत के नौसिखिये होते थे। उनमे नीतिमत्ता मामूली होती थी। कम्पनी के मुखियाओ मे भी उदारता एव सार्वजनिक हित करने की भावना क्वचित ही दिखाई देती थी। उनके दिमाग मे यही विचार उठते रहते थे कि हिन्दुस्तान मे जाकर हम कितने लाख रुपये पैदा करेंगे अथवा विजित राष्ट्र की आगामी जनता की छाती पर हम अपने कितने लडको, भतीजो और भानजो का पोषण करेंगे। भारतीय जनता के पास मे लाख-दोलाख हडप कर लाना, एकाध लार्ड की लडकी से विवाह-सम्बन्ध स्थापित करना, एकाध पुराना गाव खरीदना, अथवा शहर के किसी प्रमुख स्थान पर नाच-जलसे करना आदि यही सब कम्पनी के कर्मचारियो का मकसद था।[२]

कम्पनी के इस दर्जे के कर्मचारियो का जनता के साथ किस तरह का बरताव था वह देखिये—

(४ अ) जनता पर अत्याचार

बगाल के नवाबो ने सिर्फ ईस्ट इण्डिया कम्पनी को ही किसी प्रकार की

१. गणपति ऐयर कृत Indian Industrialism पृष्ठ ४

२. "Essay on Handspinning and Weaving" पृष्ठ ५७ से उद्धृत

ज़ ... —चुर्ग —न देकर आयात निर्यात व्यापार करने की इजाजत दी थी, किन्तु कम्पनी के कर्मचारियो ने अपने निजी व्यापार तक मे उक्त रिआयत का उपयोग किया।[1]

बगाल के नवाब मीरकासिम ने कम्पनी के कर्मचारियो के निजी व्यापार के सम्बन्ध मे कम्पनी के गवर्नर से नीचे लिखेअनुसार शिकायत की थी—

"कम्पनी के कर्मचारी प्रत्येक परगने, गाव और कारखाने मे जाते है और कारीगर और व्यापारियो को माल की कीमत की चौथाई रकम देकर जबर्दस्ती माल ले जाते है और जिस विलायती माल की कीमत एक रुपया होती है उसे जनता को पाच रुपये मे बेचने के लिए उसपर अत्याचार और जुल्म करते है। कम्पनी के कर्मचारियो की इस धीगामस्ती के कारण मेरे अफसर जनता के साथ न्याय नही कर पाते और न अनुशासन और कानून का ही पालन कर पाते है। कम्पनी के कर्मचारियो के इन अत्याचारो के कारण देश की स्थिति दु खमय होने के सिवा मेरी आय मे भी २५ लाख की कमी होगई है।"[2]

सार्जेण्ट ब्रेगो ने २६ मई १७६२ को कम्पनी डाइरेक्टरो को जो एक पत्र लिखा था उसमें वह लिखते है—

"कम्पनी का जो गुमाश्ता जिले मे माल की खरीद-बिक्री के लिए जाता है, वह इसके साथ ही वहा प्रत्येक निवासी को अपना माल खरीदने अथवा उसका माल अपने को ही बेचने के लिए बाधित करना अपना एकमात्र कर्तव्य ही समझता है। अगर कोई उसके कहने के मुताबिक खरीद-बिक्री नही करता तो तुरन्त ही उसे कोडे मारने अथवा कैद करने की सजा मे से कोई-सी भी सजा सुनादी जाती है। जो लोग उसकी मर्जी के मुताबिक माल की खरीद-बिक्री करते है उनपर फिर एक दूसरी शर्त यह लाददी जाती है कि उसे हर तरह के माल की खरीद-बिक्री उसी से करनी

१. दत्त—भाग २, पृष्ठ १

२. दत्त, भाग २, पृष्ठ ६

चाहिए । वह जो माल खरीदता है, उसके लिए दूसरे व्यापारी उसका जो कीमत देते है उससे वह बहुत कम कीमत देता है और बहुत बार वह कीमत देने से साफ इनकार तक कर देता है । मै अगर उसके काम मे दखल देता हू तो वह फौरन ही झगडे के लिए तैयार हो जाता है । कम्पनी के कर्मचारियो के दैनिक अत्याचारो के इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिये जा सकते है । ऐसे अत्याचारो का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ है कि बगाल जिले के अत्यन्त समृद्ध शहर बाकरगज के बहुत-से लोग शहर छाड-कर चले जा रहे है । प्रत्येक दिन वहा के निवासी अपने लिए किसी विशेष सुरक्षित स्थान की तलाश मे रहते है । यहा के बाजार म जो विपुल पदार्थ बिक्री के लिए आते थे, कम्पनी के इन गुमाश्तो की कम्पनी के पट्टेदारो तक को गरीब लोगो पर जुल्म करने की छूट होने के कारण, उसमे अब कुछ भी माल नही आता । जमीदारो को यह धमकी दी जाती है कि अगर वे इन लोगो को जनता पर जुल्म करने से रोकने का प्रयत्न करेगे तो उनके साथ भी वैसा ही व्यवहार किया जायगा । पहले जनता को सरकारी अदालत से न्याय मिलता था, लेकिन अब प्रत्येक गुमाश्ता न्यायाधीश बन बैठा है और इसलिए प्रत्येक गुमाश्ते का घर ही अदालत बन गया है । वे जमीदारो तक को सजा देते है और उन्होने हमारे पट्टेदारो से झगडा किया, अथवा जो वस्तु खुद कम्पनी के गुमाश्तो के लोग ही लेगये होगे उनकी चोरी करने आदि के झूठे इलजाम उनपर लगाकर उनसे पैसे ऐंठते है ।"[1] ।

(४ आ) जुलाहों पर सख्तिया

कम्पनी के कर्मचारियो ने जिस पद्धति से कारखानो पर कब्जा जमाया, वह भी इतनी ही अत्याचारी थी । विलियम वोल्ट्स नामक एक अग्रेज व्यापारी ने अपनी आखो देखी बात का जो वर्णन किया है वह, उसीके शब्दो मे इस प्रकार है—

"कम्पनी का खुद हिन्दुस्तान मे और इग्लैण्ड के साथ जो व्यापार चलता है, वह, अगर सच कहा जाय तो अत्याचारो की एक शृखला ही है।

१ दत्त, भाग २, पृष्ठ ७

देश के जुलाहो और कारखानेदारो को इन अत्याचारो का अनिष्ट परिणाम अत्यन्त तीव्रता के साथ अनुभव करना पडता है। देश मे तैयार होनेवाली प्रत्येक वस्तु का एक ही मालिक बन बैठता है और अग्रेज लोग अपने बनियो और कृष्णवर्गीय गुमाश्तो की सलाह से अपने मनमानी तौर पर यह फैसला कर डालते है कि प्रत्येक कारखानेदार को उसे कितना माल तैयार करके देना और उसकी कितनी कीमत लेनी चाहिए। गुमाश्ता कारखाने के केन्द्र-स्थान पर पहुचकर अपने ठहरने का एक स्थान निश्चित करता है और उसे 'अदालत' कहता है। वहा जुलाहो के आने पर गुमाश्ता अपने पट्टेदारो और हलकारो अथवा चपरासियो की मार्फत उन्हे इस आशय के इकरारनामे पर दस्तखत करने के लिए मजबूर करता है कि 'हम आपको अमुक समय इतना माल देगे।' और इसके लिए उन्हे कुछ पैसे पेशगी दे दिये जाते है। इसके लिए सामान्यत गरीब जुलाहो की सम्मति लेना जरूरी नही समझा जाता, क्योकि गुमाश्ते उन्हे मनमानी दस्तावेज पर दस्तखत करने के लिए बाधित करते और अगर वे पेशगी दिये जानेवाले पैसे लेने से इनकार करते है तो जबर्दस्ती उनकी कमर से बाध दिये जाते और फिर कोडे मारकर उन्हे भगा दिया जाता है।

"इन जुलाहो मे-से बहुतो के नाम सामान्यत गुमाश्तो के रजिस्टर मे दर्ज होते है। उन्हे अपने निश्चित गुमाश्ते के सिवा किसी दूसरे गुमाश्ते का काम करने की इजाजत नही होती। उस गुमाश्ते की बदली हो जाने पर उसके रजिस्टर मे यह नोट कर दिया जाता था कि उसके बाद आने वाले गुमाश्ते के इतने-इतने जुलाहे गुलाम है। इस नोट करने का यही उद्देश्य होता था कि यह बाद मे आनेवाला गुमाश्ता भी पहले गुमाश्ते की तरह अत्याचार और लूट कर सके। इस विभाग मे जो लूट होती है वह कल्पनातीत है। इस सब लूट का अन्तिम परिणाम जुलाहो की लूट होता है, क्योकि बाजार मे उनके थान जिस कीमत मे बेचे जाते, ये गुमाश्ते उसमे पन्द्रह फीसदी और कही-कही चालीस फीसदी तक कम कीमत ठहराते है। थान की जाच करने वाले को कीमत कम करने के सलाह-मशविरे मे

शामिल रक्खा जाता था। जुलाहो पर जबर्दस्ती लादे गये करार-मुचलके का अगर उनसे पालन न हो सके तो उनका माल जब्त कर लिया जाता है और नुकसान की भरपाई के लिए वही-का-वही बेच दिया जाता है। कच्चा रेशम लपेटनेवाले 'नाडगौड', पर भी इसी तरह के अत्याचार होते थे, इसलिए दुबारा इन जुल्मो से बचने के लिए उन्होने अपने अगूठे ही काट लिये, ऐसे कितने ही उदाहरण हम जानते है।

"कारखानेदारो मे के बहुत-से लोग खेती भी करते थे, इसलिए उपरोक्त अत्याचारो के कारण केवल उद्योग-धन्दे ही डूबे हो, सो बात नही, बल्कि खती पर भी उनका परिणाम स्पष्ट दिखाई देता है। गुमाश्तो के अत्याचारो के कारण कारखानेदारो के लिए अपनी खेती मे सुधार या तरक्की करना अथवा लगान देना अशक्य हो गया। उनके इस दूसरे अपराध के लिए माल अथवा रेवेन्यू अफसर उन्हे और सजा देते और कई बार इन पर भक्षको के जुल्मो मे बचने के लिए कारखानेदारो को अपनी खेती का लगान चुकाने के लिए अपने लडके बेचने अथवा देशत्याग करने तक के लिए मजबूर होना पडा है।"[1]

कम्पनी के जो नौकर जुलाहो से अपना माल जल्द देने के लिए तकाजा करने जाते थे, उनपर कितना जुल्म होता था, इस सम्बन्ध मे पार्लमेण्टरी कमेटी के सामने गवाही देते हुए सर थामस मनरो कहते है —

"कम्पनी के नौकर 'वीर महाल' जिले मे मुखिया-मुखिया जुलाहा को इकट्ठे करते थे और जबतक वे जुलाहे इस आशय के इकरारनामे पर दस्तखत अथवा उनपर अपनी स्वीकृति नही कर देते थे कि 'हम सिर्फ कम्पनी को ही अपना माल बेचेगे' तबतक उन्हे हवालात मे बन्द रक्खा जाता था। जो जुलाहा 'साई' अथवा पेशगी ले लेता था, वह शायद ही कभी अपनी जिम्मेदारी से बरी हो सकता था। उससे माल तैयार करवा लेने के लिए एक चपरासी उसके घर पर धरना देकर बैठ जाता था और अगर वह माल तैयार करने मे देर कर देता था तो अदालत से वह सजावार

१. दत, भाग २, पृष्ठ १०

होता था । चपरासी के धरना देकर बैठने के दिन से ही जुलाहे को उसे एक ग्राना रोज तलवाना देना पड़ता था।[1] इसके सिवा चपरासी के पास एक मजबूत लट्ठ रहता था। जुलाहे को कई बार उसका भी प्रसाद मिलता रहता था। जुलाहो पर जुर्माना होने पर उसकी वसूली के लिए उनके बर्तन तक जब्त कर लिये जाते थे। इस तरह गाव-गाव के सब जुलाहो को कम्पनी के कारखाने मे गुलामी करनी पडती थी।"

कम्पनी के कर्मचारियो के सम्बन्ध मे लार्ड मेकाले 'लार्ड क्लाइव' नामक ग्रपने निबन्ध मे लिखते है—

"ग्रपनी खुद की तौद भरने के लिए कम्पनी के नौकरो ने देश के सब ग्रन्दरूनी व्यापार पर कब्जा कर लिया। वे इस देश के लोगो के साथ जबर्दस्ती करके ग्रपना विलायती माल उन्हे महगे भाव से बेचते ग्रौर उनका माल सस्ते भाव मे खरीदते। वे देश के न्यायाधीश, पुलिस ग्रौर मुल्की ग्रधिकारियो का अपमान करते। लेकिन इसके लिए कोई भी उनके कान नही ऐठता था। उन्होने कुछ स्थानीय गुर्गे पाल रक्खे थे ग्रौर उनके जरिये प्रान्त भर मे ग्रधेर मचाकर भयङ्कर वातावरण पैदा कर दिया था। कम्पनी के ब्रिटिश कारखानेदार को, उसके प्रत्येक नौकर को, उसके सब ग्रधिकार प्राप्त थे। इस प्रकार कलकत्ते मे कम्पनी के कर्मचारियो ने तेज़ी के साथ ग्रटूट सम्पत्ति पैदा करली। लेकिन दूसरी तरफ प्रान्त की तीन करोड जनता धूल मे मिल गई! यह ठीक है कि इस ग्रोर की जनता जुल्म सहने की ग्रादी थी। पर उसने इस तरह का जुल्म इससे पहले कभी नही सहा था। उन्होने यह ग्रनुभव किया कि सिराजुद्दौला के शरीर की ग्रपेक्षा कम्पनी की चिटी उगली ग्रत्यन्त भारी है। पहले जनता के पास कम-से-कम एक साधन यह था कि अगर सरकार का जुल्म उसके लिए ग्रसह्य हो जाता था तो वह उस सरकार के खिलाफ बगावत कर उसे उखाड फैकती थी। लेकिन ग्रग्रेज सरकार सुधार का ढिंढोरा पीटकर सर्वथा जगली राज्यो की पद्धति का

१ एक ग्राने का मतलब होता था एक मनुष्य के भोजन के लिए उस समय जितने पैसे खर्च होते थे उसका दस गुना।

अवलबन करती थी, इससे जनता उसे हिला नही सकती थी।"[१]

(४ इ) कम्पनी के कर्मचारियों ने नवाबों को कैसे लूटा ?

ऊपर कम्पनी के सामान्य कर्मचारियो के ही जुल्मो और लूट का विवरण दिया गया है। अब हम यह देखेगे कि कम्पनी के बडे-बडे अधिकारी बडे-बडे नवाबो को किस तरह लूटते थे—

सन् १७५७ मे पलासी के युद्ध के बाद जब मीरजाफर को गद्दी पर बैठाया गया तब ब्रिटिश अधिकारी और फौज दोनो को कुल मिलाकर १,८५,७८,६२५ रु० मिले थे। इस रकम मे से अकेले क्लाइव को ही ४,७२, ५०० रु० मिले और इसके सिवा भारी पैदावार की खासी जागीर मिली सो अलग।[२]

लार्ड क्लाइव साहब के इस कार्य के लिए जब उनसे कैफियत तलब की गई तो उन्होने यह कहकर उसका समर्थन किया कि अगर नवाब की उदारता के कारण लक्ष्मी स्वभावत ही मेरे घर चली आई तो क्या मै उसका निरादर करता ? इसके सिवा इतने अर्से तक कम्पनी की नौकरी मे अपने जीवन को खतरे मे डालते और उसका किसी तरह का नुकसान न होने देने हुए अगर अनायास ही मुझे पैसे प्राप्त करने का मौका मिल गया तो मै नही समझता कि कम्पनी यह चाहती कि मै उस मौके को गवा देता।[३] कितना सुन्दर समर्थन है यह !

अकेले लार्ड क्लाइव साहब पर ही लक्ष्मी ने कृपा की हो,सो बात नही, कम्पनी के दूसरे अधिकारियो पर भी उसने अपनी कृपा दृष्टि की थी !

सन् १७६० मे जिस समय मीरकासिम को नवाब बनाया गया, उस समय ब्रिटिश अधिकारियो को ३०,०४,०३५ रु० नजराना मिला, इसमे से ८, ७८,९९५ रु० अकेले वैंजिटार्ट ने लिये।[४]

१. दत्त, पृष्ठ ४५

२. दादा भाई कृत "Poverty and un-British Rule in India" पृ० ५९९ से

३. दत्त, भाग२, पृष्ठ १५-१६   ४. दत्त, भाग २,पृष्ठ १६

सन् १७६३ में जब मीरजाफर को फिर गद्दी पर बिठाया गया तब कम्पनी के अधिकारियो को ७५,०२,४७५ रु० नजराना दिया ।[1]

सन् १७६५ मे जब नाजिमुद्दौला को गद्दी पर बिठाया गया तब फिर ३४,५५,२५० रु० नजराने के तौर पर मिले ।[1]

आठ वर्षों मे नजराने के तौर पर वसूल किये गये ३,२५,४४,९७५ रुपयो के सिवा गद्दी पर बिठाने के हक जैसे कुछ और हक पेश कर ५,६५, ६२,४९५ रु० और वसूल किये गये ।[1]

कम्पनी के कर्मचारी अपना यह व्यवहार चलाते हुए अपने डाइरेक्टरो को जो पत्र लिखते थे और डाइरेक्टरो की ओर से दूसरो को जो पत्र जाते थे उनमे इन बातो का उल्लेख हुआ दिखाई देता है ।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बगाल के तत्कालीन सञ्चालकों ने ३०सितम्बर १७६५ को जो पत्र लिखा था उसमे लिखा है कि अटूट सम्पत्ति प्राप्त करने का अवसर इतना अधिक आकर्षक है कि उसकी तरफ से आखे बन्द की नही जा सकती और उसका मोह इतना जबर्दस्त है कि उसका प्रतिकार किया नहीं जा सकता । नजराना लेने की पद्धति का नतीजा यह हुआ है कि उसके लिए अब अत्यन्त लज्जास्पद अत्याचार और निन्दास्पद रिश्वतखोरी होने लगी है ।[2]

कम्पनी के कोर्ट आव डाइरेक्टरो ने बगाल के तत्कालीन अधिकारी को १७ मई १७६६ को एक पत्र लिखा था, उसमे उन्होने स्पष्ट ही स्वीकार किया है कि, "हमारे कर्मचारियो ने जिस तरह की रिश्वतखोरी और लूटमार की, जिस प्रकार के अत्यन्त नीच साधनों का अवलम्बन किया उससे शोचनीय स्थिति हो गई है, उस सबकी हमे स्पष्ट कल्पना है । ऐसा मालूम होता है कि कम्पनी के कर्मचारियो ने जितने अत्याचार कर अटूट सम्पत्ति प्राप्त की उतने अत्याचार किसी भी कौम और किसी भी देश मे नही हुए ।"[2]

स्वय लार्ड क्लाइव साहब का ही पत्र देखिए—

१. दत्त, भाग २, पृष्ठ १६ २. दादा भाई कृत 'Poverty and Un-British Rule in India' पृष्ठ ६१५ से

८ सितम्बर १७६६ को कलकत्ते के एक सज्जन 'डडले' को एक पत्र लिखा था, उसमे उसने लिखा है—

"अगर इतने वर्ष पुराने अथवा विस्मृत कृत्यो का सिहावलोकन किया जाय और उनकी जाच की जाय तो कुछ ऐसी बातो का पता लगेगा कि जो कभी जाहिर होनी ही न चाहिए। उन बातो से देश का सिर नीचा होगा और बडे-बडे तथा भले कुटुम्बो की कीर्ति पर कालिमा लगेगी।"[१]

अपने एक और दूसरे पत्र मे वह लिखते है—"मै सिर्फ इतना ही कह सकता हू कि मुझे पता नही कि इस तरह की अन्धाधुन्दी, रिश्वतखोरी और जबर्दस्ती से पैसे पैदा करने के उदाहरण मैने बगाल के सिवा और कही देखे या सुने हो। स्वतन्त्र व्यापारियो ने कम्पनी के कर्मचारियो के गुमाश्ते बनकर उनकी सलाह से ऐसे-ऐसे कृत्य किये है, जिनके कारण हिन्दू और मुसलमान अग्रेजो का नाम सुनते ही, मानो उसमे दुर्गंध आती हो, इस तरह अपनी नाक बन्द कर लेते है।"[२]

यह बात खास तौर पर ध्यान देने योग्य है कि सन् १७५७ मे खुद लार्ड क्लाइव साहब ने ४,७२,५०० रु० निगलने के बाद ये पत्र लिखे है!

अंग्रेजों की पूंजी कहां से आई ?

ऊपर लिखे अनुसार हिन्दुस्तान की पूजी का प्रवाह इग्लैण्ड की ओर हो जाने से इग्लैण्ड कैसा समृद्ध हो गया और उस पैसे के कारण ही इग्लैण्ड के उद्योग-धन्धो को कितनी गति मिली, मि० ब्रुक्स एडम्स ने अपनी "The Law of Civilisation and Decay" नामक पुस्तक मे इसका अत्यन्त मार्मिक विवेचन किया है। इस वर्णन को पढकर पाठको को यह निश्चय हो जायगा कि अग्रेज अधिकारी और कारखानेदार जिस 'अग्रेजी

१. दादा भाई कृत "Poverty and Un-British Rule in India" पृष्ठ ६१५ से

२. दादा भाई कृत "Poverty and Un-British Rule in India" पृष्ठ ६००

पूंजी' की बार-बार इतनी शेखी मारते है, वह पूंजी वास्तव मे हिन्दुस्तान की ही है। मि० एडम्स ब्रुक्स लिखते है—

"हिन्दुस्तान से बहकर आनेवाले द्रव्य के प्रवाह से इग्लैण्ड की सिर्फ नकद पूंजी ही नही बढी, बल्कि उनकी शक्ति बढकर उसे गति और स्थिति-स्थापकता प्राप्त हुई। प्लासी के युद्ध के बाद बगाल की लूट का माल लन्दन मे आने लगा और उसके साथ उसी समय उसका परिणाम भी दिखाई पडने लगा, क्योकि सब जिम्मेदार आदमी स्वीकार करते है कि अठारहवी सदी की औद्योगिक-क्रान्ति का आरम्भ सन् १७६० से ही हुआ है। १७६० का यह वर्ष ही अठारहवी सदी को इस तरह दो विभागो मे बाट सकता है। मि० बेन्स के कथनानुसार सन् १७६० के पहले लङ्काशायर मे सूत कातने के लिए जिन साधनो का उपयोग होता था वे हिन्दुस्तान के साधनो की तरह ही सीधे-सादे थे। और १७५० मे ईंधन के लिए जगल उजाडे जाने के कारण इग्लैण्ड के लोहे के कारखाने पूरी तरह अवनति की ओर जा रहे थे। उस समय इग्लैण्ड मे व्यवहार मे आनेवाले लोहे का ४/५ भाग स्वीडन से आता था।"

"सन् १७५७ मे प्लासी का युद्ध हुआ। उस समय से इग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति मे जो तेजी आई, वैसी और किसी दूसरी बात से नही आई। सन् १७६० मे 'झटका करघे' का जन्म हुआ और भट्टियो मे लकडी के बजाय कोयले काम मे लाये जाने लगे। सन् १७६४ मे हारग्रिव्ज ने एक ऐसी मशीन का आविष्कार किया जिसके जरिये बहुत-से तकुए एक साथ सूत निकाल सकते थे। इसी तरह सन् १७६६ मे क्राप्टन ने रुई धुनने की मशीन का और १७८५ मे कार्ट राइट ने भाप से चलने वाले करघे का आविष्कार किया। और सन् १७८६ मे जेम्स वेट ने भाप से चलनेवाले एंजिन को पूरी तरह तैयार कर इन सब पर बाजी मार ली। केन्द्री-भूत शक्ति को बाहर छोडनेवाले यन्त्रो मे यह यन्त्र अत्यन्त परिपूर्ण था। यद्यपि ये सब यन्त्र समय-चक्र को गति देने वाले थे, फिर भी वे वैसी गति देने मे कारणीभूत नही हुए। यान्त्रिक शोध स्वतः तो निश्चल ही होती है। इनमे बहुत से यन्त्रो को अपने को गति देने वाली

आवश्यक शक्ति पाने की मार्ग-प्रतीक्षा करते हुए कई वर्षों तक सुप्तावस्था मे ही पडे रहना पडा। हिन्दुस्तान से द्रव्य की बाढ आने और साख के बढने के पहले—जो जल्दी ही बढ गई—इस कार्य के लिए आवश्यक शक्ति अस्तित्व मे नही आई थी और इसलिए जेम्स वाट अगर ५० वर्ष पहले पैदा हुआ होता तो उसका और उसके यन्त्र का एकदम नाश ही हो गया होता।"

"हिन्दुस्तान की लूट ने जो पूजी दी और उससे इग्लैण्ड ने जितना नफा कमाया, उतना नफा ससार की और किसी भी पूजी पर मिला नही मालूम होता, क्योकि पचास वर्ष तक इग्लैण्ड का कोई भी प्रतिस्पर्धी नही था। तुलनात्मक दृष्टि से सन् १६९४ से १७५७ तक इग्लैण्ड की प्रगति मन्द गति से और १७६० से १८१५ के बीच यही प्रगति बहुत तेजी से और आश्चर्य-जनकरूप मे हुई। 'साख' ही समाज के सग्रहीत धन का प्रिय वाहन होता है। 'साख' के होते ही द्रव्य के अनेक अकुर निकल आते है। लन्दन में पूंजी जमा होते-न-होते उसमे आश्चर्यजनक गति से शाखा-प्रशाखायें फूट आई।

बगाल का सोना-चादी आने के पहले लन्दन की बैंक आव इग्लैण्ड २० पौण्ड से कम के—दस और बीस पौण्ड के नोट जारी करने की हिम्मत नही कर रहा था, लेकिन उक्त सोने-चादी के पहुचते ही उनके जारी करने मे वह सहज ही समर्थ हो गया। प्राइवेट पेढिया तक नोटो की वर्षा करने मे समर्थ हो गई।"[1]

(५) इग्लैण्ड के संरक्षक कर

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने हिन्दुस्तान के मालपर कितना मुनाफा कमाया, यह हम देख चुके। यह भी हम देख चुके कि कम्पनी के छोटे-बडे कर्मचारियो ने भारतीय जनता पर कैसा जुल्म किया, जुलाहो को किस तरह तबाह किया और नवाबों को किस तरह लूटा। आइये, अब हम यह देखे कि 'मुक्त व्यापार'

१. बी. डी. बसु कृत "Ruin of Indian Trade and Industries" पृष्ठ ८१९ से

के हिमायती इग्लैण्ड ने किस प्रकार सरक्षक करो का अवलम्बन कर हिन्दु-
-स्तान के व्यापार को चौपट किया।

हिन्दुस्तान के व्यापार को तबाह करने के लिए इग्लैण्ड ने पहले प्रतिबन्धात्मक (Prohibitive), बाद को दमनात्मक (Suppressive) और अन्त में पीडनात्मक (Repressive) नीति ग्रहण की।[१]

सन् १६०० से १७०० के बीच की इस एक सदी मे विलायत के साथ हिन्दुस्तान का व्यापार खूब जोरो पर था। १६८० तक विलायत मे हिन्दुस्तान के माल के प्रवेश पर कोई प्रतिबन्ध नही था। लेकिन उसी वर्ष से उस पर चुगी का जो क्रम जारी हुआ, वह नीचे के विवरण मे देखिए—

१६८० से १६८३ तक रुई के प्रत्येक थान पर चुगी की रकम ९ पैंस से ३ शि० तक थी। वह

१६८५ से १६९० तक हिन्दुस्तान से इग्लैण्ड जाने वाले सब किस्म की रुई, सूत तथा वस्त्रो पर १०० पौण्ड के माल पर १० पौण्ड तक बढी।

१७०० मे सूती सब रगीन वस्त्रो के आने पर रोक लगाई गई। इसलिए सफेद वस्त्र ही वहा जाने लगे। लेकिन बाद को इन पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

सन् १७०० मे, इग्लैण्ड के राजा विलियम तृतीय ने कानून बना कर इग्लैण्ड से हिन्दुस्तान के व्यापार को रोक दिया। उसने यह सरकारी हुक्म जारी किया कि "जो व्यक्ति—स्त्री अथवा पुरुष—रेशमी वस्त्र या सूती छीट बेचेगा अथवा व्यवहार मे लायगा, उस पर २०० पौण्ड (३००० रुपये) जुर्माना होगा।" (खादी का इतिहास, पृ० ७१)

१७२१ मे सूती रगीन वस्त्र के व्यवहार पर प्रतिबन्ध लगाया गया। इसके अनुसार उसके व्यवहार के प्रत्येक अपराध पर ५ पौण्ड (७५ रु०) और बेचने वाले पर २० पौण्ड (३०० रु०) जुर्माना होता था।

१. "Essay on Handspinning and Weaving" पृष्ठ ६४

१७३७ मे सूत के छपे हुए माल पर प्रतिबन्ध लगाया गया । पहले मिश्रित माल पर जो रोक लगाई गई थी, वह उठा ली गई।

इतने प्रतिबन्ध लगाये जाने पर भी फेशन के मोह से कहिए अथवा स्त्रियो के आग्रह के कारण, सूती माल का व्यापार चलता ही रहा। मलमल, सादी छीट तथा बगाल के रेशमी रूमाल के 'छपे हुए माल' की सज्ञा में न आने के कारण इनकी तथा प्रतिबन्ध-रहित माल की माग बहुत थी।

१७६६ मे अग्रेज इतिहासकार लेके अपने अठारहवी सदी के इग्लैण्ड के इतिहास (भाग ७ पृ० ३२०) मे लिखता है—

"किसी भी स्त्री का हिन्दुस्तान का सूती माल व्यवहार करना अपराध समझा जाता था। लेकिन, (सूती वस्त्र ही क्या) गिल्ड हाल मे एक स्त्री पर इसलिए २०० जुर्माना हुआ कि वह एक सन का हाथ-रूमाल अपने काम मे लाई थी।"[१]

डिफो का तो यहा तक कहना है कि कॉलचेस्टर मे एक बार इसी बात पर दगा हो गया कि एक स्त्री ने हिन्दुस्तान का सूती वस्त्र अपने शरीर पर पहन लिया, और दगे मे स्त्री पर सिर्फ हमला ही नही किया गया बल्कि उसकी बेइज्जती तक की गई।[२]

हिन्दुस्तान के कपडे पर इतनी जकात अथवा चुगी होने पर भी वह इतना लोकप्रिय था कि विलायत मे उसकी खपत अधिकाधिक परिमाण मे होती थी। यह देखकर सन् १७७४ मे पार्लमेण्ट ने इस आशय का एक महत्त्वपूर्ण कानून बनाया कि इग्लैण्ड मे बिकने वाला माल इग्लैण्ड का ही कता और बुना होना चाहिए। निम्नलिखित अको से स्पष्ट दिखाई देगा कि इस कानून

१. बी डी. बसु कृत "The Ruin of Indian Trade and Industries" पृष्ठ ५ से

२. "Essay on Handspinning and Weaving" पृष्ठ ५१

का भी उस व्यापार पर कुछ असर नही पड़ा।[१]

वर्ष	विलायत जाने वाले माल की कीमत
सन् १७७२	१,५६,२९,३४० रु०
,, १७८२	१,९०,०६,८४५ ,,
,, १७९२	२,६९,०४,३७५ ,,

तब फिर पार्लमेण्ट ने हिन्दुस्तान से आने वाले माल पर नीचे लिखे अनुसार जकात बढाई—

प्रत्येक १०० पौण्ड की कीमत के सूती वस्त्र पर[२]

वर्ष	सफेद सूती वस्त्र	मलमल और नानकिन
सन् १७९७	१८ पौ०—३ शि०—० पैं०	१९ पौ०-१६शि०-०पैं०
१७९८	२१ पौ०—३ शि०—०	२२ पौ०-१६शि०-०
१७९९	२६ — ९ — १	३० — ३ — ९
१८०२	२७ — १ — १	३० —१५ — ९
१८०३	३९ — १ — ३	३० —१८ — ९
१८०४	६५ — १२ — ६	३४ — ७ — ६
१८०५	६६ — १८ — ९	३५ — १ — ३
१८०६	७१ — ६ — ३	३७ — ७ — १
१८०९	७१ — १३ — ४	३७ — ६ — ८
१८१२	७३ — ० — ७	३७ — ६ — ८
१८१३	८५ — २ — १	४४ — ६ — ८

इसका मतलब यह हुआ कि सन् १८१३ मे १५०० रु० के सफेद सूती वस्त्र पर १२७५ रु० और उतनी ही कीमत की मलमल अथवा पीले सूती वस्त्र पर ६७५ रु० जकात लगती थी। इस जकात का हिन्दुस्तान पर कितना अनिष्टकारी परिणाम हुआ वह निम्नलिखित अङ्को से स्पष्ट दिखाई देगा[३]—

१. "Essay on Handspinning and Weaving" पृष्ठ ५४
२. "Essay on Handspinning and Weaving पृष्ठ ८७
३. बी०डी० बसु कृत "The Ruin of Indian Trade and Industries" पृष्ठ ३०

हिन्दुस्तान से विलायत जाने वाला माल

वर्ष	माल की कीमत
१८१६–१७	१,६५,८४,३८०
१८२०–२१	८५,४०,७६२
१८२४–२५	६०,१७,५५६
१८२८–२९	२२,२३,१६३
१८३२–३३	८,२२,८९१

इस मुकाबले में विलायत से हिन्दुस्तान मे आने वाले कपडे का परिणाम देखिये[१]—

सन्	माल की कीमत
१७९४	२,३४० रुपये
१७९८	६६,५४०
१८०२	२,४२,८६५
१८०६	७,२७,८७५
१८१०	११,२०,४२५
१८११	१७,१६,७३५
१८१२	१६,०९,५००
१८१३	१६,३३,३६०

यह कहने की आवश्यकता ही नही कि इसके बाद प्रतिवर्ष यह तादाद बढती ही गई ।

इग्लैण्ड अब भले ही बडे हर्ष के साथ यह कहे कि 'हम मुक्त अथवा अबाध व्यापार के हिमायती है ।' लेकिन जकात के इन वार्षिक अको से यह स्पष्ट दिखाई देता है कि किस तरह उसने सरक्षक जकात का अवलम्बन कर अपने उगते हुए धन्धो की परवरिश की । विजित राष्ट्र पर विजयी राष्ट्र के

१ बी०डी० वसु कृत "The Ruin of Indian Trade and Industries" पृष्ठ ३०

नि.शक अन्याय का यह अत्यन्त स्पष्ट उदाहरण है। इस सम्बन्ध मे इतिहासकार विल्सन अपनी पुस्तक मे लिखते है—

"इस बात प्रमाण दिया जा चुका है कि सन् १८१३ तक इग्लैण्ड के माल की अपेक्षा हिन्दुस्तान का माल ५० से ६० फीसदी तक सस्ता पडता था। इसका नतीजा यह हुआ कि हिन्दुस्तान के माल पर ७० से ८० फीसदी तक जकात लगाकर अथवा उस माल के आने की रोक करके इग्लैण्ड के माल की रक्षा करनी पडी। अगर इग्लैण्ड ने हिन्दुस्तान के माल पर इस तरह सरक्षक जकात न लगाई होती तो 'पेसले' और 'मेन्चेस्टर' की मिले प्रथमारम्भ मे ही बन्द कर देनी पडी होती और भाप का उपयोग करके भी वे शायद ही खोली जा सकी होती। हिन्दुस्तानी कारखानेदारो का नाश करके ही वे मिले खोली गई। हिन्दुस्तान अगर स्वतन्त्र होता तो उसने इसके बदले मे इग्लैण्ड के माल पर पूर्णत प्रतिबन्धात्मक जकात लगाकर इग्लैण्ड का बदला चुकाया होता और अपने उद्योग-धन्धो को उसके हाथो नाश होने से बचा लिया होता। हिन्दुस्तान को अपना बचाव करने का मौका ही नहीं दिया गया। वह विदेशी सत्ता का भक्ष्य बन गया था। उस पर विलायती माल लाद दिया गया। इस माल पर किसी भी तरह की जकात न थी। प्रतिस्पर्धी के साथ बराबरी के नाते धर्मयुद्ध तो नही किया जा सकता था, इसलिए विलायती कारखानेदारो ने अन्यायी राज्य-सत्ता का सहारा लेकर उसे धर-दबोचा और अन्त मे उसका गला घोटकर उसे मार दिया।"[1]

इग्लैण्ड की कामन्स-सभा की जाच-कमेटी के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए मि० रिकार्ड्स ने कहा था—"इग्लैण्ड और हिन्दुस्तान दोनों ही राष्ट्रों पर इग्लैण्ड की सत्ता होने के कारण यह असगतता दिखाई देती है कि विलायती माल तो बिना किसी तरह की जकात के बेरोक-टोक हिन्दुस्तान में उतार लिया जाता है, लेकिन सिर्फ इस्तेमाल तक के लिए आने वाले

१. एच० विल्सन कृत "History of British India" भाग १, पृष्ठ ३८५। बी० डी० बसु कृत "The Ruin of Indian Trade and Industries" पृष्ठ ६ से

हिन्दुस्तानी माल पर इग्लैण्ड मे जबर्दस्त जकात देनी पडती है । इनमे की बहुत-सी चीजो पर १०० से ऊपर ६००) तक और एक नग पर फीसदी ३०००) जकात देनी पडी ।"[१]

इग्लैण्ड के हिन्दुस्तान पर जबर्दस्त जकात लादने और 'मुक्त' व्यापार की डीग हाकने के सम्बन्ध मे एक और अग्रेज सज्जन के विचार देना अप्रासगिक न होगा । मि० माण्टगोमेरी मार्टिन कहते है—

"चौथाई सदी के अर्से मे ही—उन्नीसवी सदी के प्रारम्भ मे—हम (अग्रेज लोग) ने हिन्दुस्तान को अपने कारखानो मे तैयार हुआ माल खरीदने के लिए मजबूर कर दिया । इस माल मे ऊनी माल पर तो जकात बिल्कुल ही नही थी । सूती और दूसरे माल पर अढाई फीसदी के औसत से जकात लगती थी । लेकिन इसी अर्से मे हमने हिन्दुस्तान के अथवा अपने ही साम्राज्यान्तर्गत माल पर करीब-करीब प्रतिबन्धक अथवा दस, बीस, तीस, पचास, सौ और एक हजार फीसदी तक जकात लगाने का दौर चलाया । इसलिए हिन्दुस्तान के साथ 'मुक्त' व्यापार का अर्थ यह हुआ कि इस देश—इग्लैण्ड—से जो माल हिन्दुस्तान को जाय सिर्फ वही 'मुक्त' अथवा 'खुला', हिन्दुस्तान से इग्लैण्ड जाने वाला माल 'खुला' नही ।...सूरत, ढाका, और मुर्शिदाबाद तथा जहा-जहा ऐसा माल तैयार होता था, उन शहरो के विनाश की कहानी इतनी करुण है कि उस विषय मे यहा कुछ विचार न करना ही अच्छा है । मै नही समझता कि इसे सचाई का व्यापार कहा जा सकता है । मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि यहा 'जिसकी लाठी उसकी भैस' के न्याय को ही काम मे लाया गया है ।"[२]

इस सब कार्रवाई मे ब्रिटिश सरकार की व्यापार विषयक क्या नीति थी, इस सम्बन्ध मे सर जार्ज टक्कर १८२३ मे लिखते है—

"हम लोगो (अग्रेजो) ने हिन्दुस्तान के साथ व्यापार के सम्बन्ध मे

१. बी. डी. बसु कृत "The Ruin of Indian Trade and Industries" पृष्ठ ९० से

२. दत्त, भाग २, पृष्ठ ८८,

अपनी क्या नीति रखी है ? अपने बाजारो में से हमने उसके रेशमी और रेशम तथा सूत के मिले हुए माल का बहिष्कार कर दिया है। इधर हिन्दुस्तान से आने वाले माल पर ६७ फीसदी जकात लगा देने और खासकर हमारी उच्च कोटि की मशीनरी के कारण हिन्दुस्तान से भारी तादाद में आने वाले सूती माल का आना रुक गया है। इतना ही नही, प्रत्यक्षत अब तो हम एशिया की जनता को अशत अपने ही कारखानो में तैयार हुआ माल देते है। इस तरह हिन्दुस्तान अब 'कारखानेदार राष्ट्र' के पद से च्युत होकर 'किसान-राष्ट्र' के दर्जे पर आ पहुचा है।'[1]

(६) कस्टम-विभाग के कष्ट

कपडे के व्यवसाय का गला घोटे जाने की करुण कहानी यही समाप्त नही हो जाती। विलायत के साथ चलने वाले हिन्दुस्तान के व्यापार को ही डुबोकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी को सन्तोष नही हुआ, बल्कि देश-का देश मे चलने वाला व्यापार तक उसकी आखो मे खटकता था। अत उसे समाप्त करने के लिए कम्पनी ने अपने कस्टम-विभाग का किस तरह उपयोग किया, उसकी ओर नजर डालना सर्वथा प्रासगिक होगा।

कस्टम-विभाग की लीलाओ का वर्णन करने के पहले देश में प्रचलित 'टोल' पद्धति का दिग्दर्शन करना आवश्यक है। प्रत्येक बैल, घोडे, ऊट तथा गाडी पर लादे जाने वाले माल पर यह कर वसूल किया जाता था। इस कर के वसूल करते समय माल की कीमत पर ध्यान देने की जरूरत नही समझी जाती थी। उसी तरह यह कर इतना थोडा था कि माल को छिपाने-छिपूने का कुछ भी कारण नही रहता था। इसलिए माल के जाच की भी कुछ जरूरत नही रहती थी। प्रति चालीस, पचास, अथवा साठ मील के अन्तर पर यह कर देना पडता था। इस पर से ऐसा मालूम होता है कि जितने अन्तर से माल की आमद-रफ्त होती थी, उसी के अनुसार हफ्ते-हफ्ते भर में यह कर देना पडता था।

१. दत्त भाग १, पृष्ठ २६२

लेकिन कम्पनी के अंग्रेज कर्मचारियो ने 'टोल' नाके बन्द करके उसके बजाय 'पास'-पद्धति शुरू की। इस पद्धति के अनुसार प्रत्येक व्यापारी को सारी जकात एकदम दे देनी पडती थी। उसके बदले मे उसे पास (परवाना) मिलता था। व्यापारी के यह पास बता देने पर यात्रा समाप्त होने तक कोई भी नया कर नही देना पडता था। सम्भव है पहली ही नजर मे यह पद्धति बहुत सुविधाजनक प्रतीत हो, लेकिन वास्तव मे इससे व्यापारी को 'टोल' पद्धति से अधिक पैसा देना पडता था। क्योकि, 'टोल'-पद्धति मे यह लाभ था कि जितनी दूरी का सफर होता था, उतनी ही दूरी के लिए पैसे देने पडते थे। वह भी हफ्ते-भर मे देने पडते थे। लेकिन पास-पद्धति मे व्यापारी को भले ही माल नजदीक के गाव मे अथवा दूर के शहर मे ले जाना हो, यह खयाल करके कि उसे दूर-से-दूर का सफर करना है, उससे एकदम सारी जकात वसूल करली जाती थी। अवश्य ही इससे जकात की आमदनी बढ गई, लेकिन साथ ही व्यापारियो मे भयकर असन्तोष भी फैल गया।

व्यापारियो के लिए यह 'पास'-पद्धति कितनी कष्ट-दायक थी, इसका विवेचन तो अभी बाकी ही है। मान लो कि बनारस से एक ही व्यापारी का भिन्न-भिन्न प्रकार का माल कलकत्ते के लिए रवाना हुआ। उसके लिए उसे एक पास मिला। कलकत्ते मे अगर सब माल की थोक बिक्री हो गई तो ठीक, नही तो जितनी तरह का माल होता, व्यापारी को उतने ही पास और लेने पडते और इन नये पासो के लिए उसे आठ आने फी सैकडा नई जकात देनी पडती थी। इसके लिए व्यापारी को जो समय बरबाद करना पडता था, माल की एकदम बिक्री होने मे जो रुकावट पडती थी, और कस्टम-हाउस से माल हटाने मे जो असुविधा होती थी, उसके मुकाबले मे आठ आने फी सैकडा की यह करबन्दी इतनी असुविधा-जनक नही मालूम होती थी। पास की मियाद सिर्फ एक वर्ष की होती थी। अगर वर्ष के अन्त तक माल नही बिका तो व्यापारी को अपना पास बदलवा लेना अथवा नया करा लेना पडता था। लेकिन इतना निश्चित था कि वर्ष की मियाद पूरी

होने के पहले उसे अपना पुराना पास लौटाना ही पडता और उसमे लिख माल की जाच कस्टम अधिकारियो को करा देनी पडती थी। इन सब क्रियाओं के पूरा होने के बाद आठ आने सैकडा के हिसाब से पैसे देने पर ही नया पास मिल सकता था। अगर वह अपने इस कर्तव्य-पालन में चूक जाता तो उसे नई जकात देनी पडती। सच तो यह है कि व्यापारियो को माल की जांच कराना, समय-समय पर कस्टम-हाउस मे उसकी निगरानी करना और अपना अमूल्य समय बरबाद करना इतना असह्य होता था कि इन सब असुविधाओं को सहने की बनिस्बत वे नई जकात दे देना ही पसन्द करते थे।

जगह-जगह पर कस्टम-विभाग की चौकियां होती थी, जहा पर व्यापारियो को अपना माल दिखाना पडता था। एकाध बार किसी कारणवश पास लेना रह जाता, और व्यापारी ईमानदारी के साथ यह खयाल करके कि "चौकी पर पैसे अदा कर देगे," रवाना हो जाता तो बिना पास के चौकी पर से जाने के अपराध मे उसका माल जब्त कर लिया जाता।

माल की जाच के लिए जगह-जगह नाके मुकर्रिर थे, ताकि माल की आयात-निर्यात नियम-विरुद्ध एव चोरी से न हो सके। पास मे लिखे मुताबिक माल है या नही, यह जाच करना नाकेदार का काम था। कानून के अनुसार कस्टम्स हाउस से चार मील से अधिक फासले पर जाच के नाके अथवा चौकिया न रखने का नियम था, लेकिन उसकी अवहेलना करके सारे देश भर में ये नाके फैले हुए थे। कभी-कभी तो ये नाके कस्टम्स-हाउस से साठ-सत्तर मील तक के फासले पर होते थे। इन नाको के नाकेदारो को इस बात की बारीकी से जाच करने का पूरा अधिकार रहता था कि पास में लिखेअनुसार माल की किस्म, सख्या और वर्णन के अनुसार माल ठीक निकलता है या नही। प्रत्येक नाकेदार अगर नियमानुसार अपने मन में उक्त प्रकार से बारीकी से माल जाचने की ठान लेता तो यह साफ है कि इससे देश का सारा व्यापार बन्द हो जाता, क्योकि इतनी अग्नि-परीक्षा

इन सब जुल्मो के खिलाफ अगर शिकायत की जाती तो शिकायत करनेवाले को लाभ होने की बनिस्बत हानि ही अधिक उठानी पडती थी। अगर शिकायत की ही तो रोग की अपेक्षा उसका उपाय अधिक कष्टकर हो जाता था।

कस्टम्स हाउस के इस जुल्म के कारण देश का अन्दरूनी व्यापार बिल्कुल डूब गया। चार रुपये मासिक वेतन पानेवाला एक क्षुद्र नाकेदार जब लखपती व्यापारियो को उक्त प्रकार सताता हो तब अगर व्यापारियो ने ऐसा व्यापार छोड दिया तो इसमे आश्चर्य की क्या बात है ? देश का व्यापार डूबने का अर्थ हुआ कारखानेदारो की समाप्ति ! कस्टम्स अफसरो के पैसे ऐठने के इस जुल्म के कारण कस्टम्स हाउस पर होकर जानेवाली स्त्रियो की इज्जत तक सुरक्षित नही रहती थी।[१]

(७) मुतारफा कर का जुल्म

कपडे के व्यवसाय के प्रबल सगठन को उपरोक्त चारों ओर से सुरग लगाकर ढहा देने के जो प्रयत्न चल रहे थे, कम्पनी को शायद वे काफी मालूम नही हुए, इसलिए उसने 'मुतारफा' नामक एक नये कर का और सहारा लेकर उक्त सगठन को तो ढहाया ही, उसके साथ-ही दूसरे धन्धे-वालो का भी खात्मा हो गया।

खेती न करनेवाले प्रत्येक मनुष्य पर यह कर लादा जाता था। सुनार या बढई, धातु के औजार आदि बनाने वाले कारीगर, और रास्ते पर परचूनी की दूकान करनेवाले सब को यह कर देना पड़ता था। कोई एकाध बुढिया रास्ते के कोने पर साग-सब्जी बेचने के लिए बैठती तो उसको तक इसके लिए कर देना पडता था।

कपडे के व्यापारियो को भी यह कर देना पडता था। लेकिन यूरो-पियन व्यापारी इससे बरी थे। जो व्यापारी वर्ष-भर तक मेहनत-झझट कर कपड़े बेचता और अपना पेट भरने लायक पैसा पैदा कर पाता था,

१. Sir Charles Travelyan's Report—दत्त, भाग १ पृष्ठ ३०६ से

उसको तो यह कर देना पडता था, लेकिन सैकडो रुपये कमानेवाले उसी के पडोसी यूरोपियन व्यापारी को कुछ भी नही देना पड़ता था।[१]

व्यापार की मामूली-से-मामूली चीज पर और साधारण मनुष्यो के काम में आनेवाले सस्ते-से-सस्ते औजारो तक पर यह कर लादा जाता था। चरखे पर भी यह कर लाद दिया गया था। हिन्दुस्तान के रुई के व्यापार मे मि. ब्राउन नामक एक अंग्रेज सज्जन ने काफी नाम कमाया था। जब १८४८ की 'भारतीय रुई' की सिलेक्ट कमेटी के सामने उनकी गवाही ली गई थी, उस समय वह अपने साथ एक चरखा ले गये थे, और गवाही देते हुए साफ तौर पर बताया था कि "प्रत्येक चरखे और प्रत्येक घर और कारीगर के बरतने के प्रत्येक औजार पर 'मुतारफा' नामक कर लगाया जाता है।[२]

चरखे की तरह ही हाथ के करघे पर भी यह कर लादा जाता था।[३]

इस कर की एक और विशेषता यह थी कि इसकी वसूली के लिए नियुक्त अधिकारियो की इच्छा पर ही इसकी वसूली का दारमदार था। इसलिए वे गैर-जिम्मेदार लोग जब चाहते धावा बोल देते और इस तरह जनता पर अत्याचार कर पैसे ऐंठते रहते थे। इस कर की वसूली के लिए लोगो के हाथो मे हथकडी डालना और उन्हे कैद कर देना तो इन लोगो के लिए बाये हाथ का खेल हो गया था।[४]

(८) अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी, अजायबघर, आदि

आइये, अब इस दु:खान्तक नाटक के अन्तिम अङ्क पर नजर डालें। हिन्दुस्तान के कारखानेदारो और जुलाहो के धन्धो को खतम कर देने से विलायत के कारखानेदारो मजदूरो की खूब चादी हो गई। हिन्दुस्तान की कपडे की आवश्यकतापूर्ति के लिए मानो उन्होने बीड़ा ही उठा लिया था

१ दत्त, भाग २. पृष्ठ ११७
२ दत्त, भाग २ पृष्ठ १०४
३ "Essay on Handspinning and Weaving पृष्ठ ९४
४. दत्त, भाग २. पृष्ठ ११६

और इसलिए वहा किस-किस तरह के माल की खपत है, इस बात की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म जानकारी प्राप्त करने के लिए सन् १८५१ मे लन्दन मे एक भारी अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी करने का आयोजन किया। सर थॉमस मनरो ने ब्रिटिश पार्लमेंट के सामने गवाही देते हुए कहा था कि "कारखानेदार के रूप मे हम हिन्दुस्तान के बहुत पीछे है।" इसलिए ब्रिटिश कारखानेदारो ने प्रदर्शनी के बहाने भारतीय कारीगरो के हुनर का रहस्य खोज निकालने का कमाल का प्रयत्न किया।[१]

इस सम्बन्ध मे मि० कीथ नामक अग्रेज सज्जन ने जो कुछ कहा है, उससे यह स्पष्ट दिखाई पडता है कि इस सम्बन्ध मे भी भारतीय कारीगरो पर काफी जुल्म हुए है। वह कहते है—

"हुनर की खूबियो या रहस्यो को गुप्त रखने मे कितनी सावधानी रक्खी जाती है, यह प्रत्येक व्यक्ति जानता है। अगर हम इग्लैड के मेसर्स डाल्टन के चीनी के बर्त्तनो का कारखाना देखने जाते है तो वे बड़ी शिष्टता से हमारे साथ आनाकानी कर जाते है। लेकिन मेञ्चेस्टर के कारखानेदारो ने धुनने और दूसरे विषयो म अपने धधेका हुनर या कला की खूबिया बताने के लिए हिन्दुस्तानी कारीगरोके साथ जबर्दस्ती करके उनसे वे खूबिया जान ही ली।"[२]

डा० राइल ने तजवीज पेश की कि इस प्रदर्शनी मे भारतीय कला-कौशल के जो काम दिखाये गये है उनका एक स्थायी अजायबघर कायम किया जाना चाहिए। उनकी यह तजवीज मजूर हो गई और हिन्दुस्तान के खर्चे से उसका कायम किया जाना तय पाया। इस अजायबघर के जरिये ब्रिटिश कारखानेदारो और मजदूरो का जीवन सुखी करने की मानो स्थायी तजवीज की गई।

१. बी. डी. बसु कृत "The Ruin of Indian Trade and Industries" पृ० ११०-११

२ 'पायोनियर' ७ सितम्बर १८९८, बसु की पुस्तक के पृष्ठ १२०-२१ से

इस अजायबघर मे भारतीय बुनाई के काम के जो महत्त्वपूर्ण नमूने थ, वे अठारह बडे-बडे ग्रन्थो में सगृहीत किये गये। इन अठारह ग्रन्थो के एक-समान नमूने के बीस सेट तैयार किये गये। इन ग्रन्थो मे भारतीय कला के ७०० नमूने सुव्यवस्थित प्रकार ग्रथित किये गये है। इन बीस सेटो मे से १३ सेट विलायतमे और सात हिन्दुस्तानमे रखना तय पायागया। इस से इग्लेड की स्वार्थी नीति स्पष्ट हो जाती है। इन ७०० नमूनो के कारण ब्रिटिश कारखानेदारो के लिए भारतीय रुचि के अनुसार मन-चाहा माल निकालना अत्यन्त सुगम हो गया। लेकिन इसमे कोई शक नही कि भारतीय जुलाहो और कारखानेदारो के विनाश के लिए निकाली गई अनेक युक्तियो मे यह प्रदर्शनी एक खास और कदाचित अन्तिम युक्ति थी।[1]

यह हुआ कपडे के व्यवसाय का गला घोटे जाने का इतिहास। भारतीय परिस्थिति का अध्ययन कर श्री रमेशचन्द्र दत्त ईस्ट इण्डिया कम्पनी की गैरकानूनी राज्य-पद्धति के कारण होने वाली हानियो की चर्चा करते हुए लिखते है—"कातने-बुनने के धन्धे के विनाश के साथ-ही-साथ भारत के दूसरे पुराने धन्धो का भी नाश हो गया। रगाई, रग तैयार करने, चमडा कमाने और उसके उपयुक्त पदार्थ बनाने, लोहे और दूसरी धातुओ पर कला-कौशल का काम कर उनके उपयुक्त पदार्थ बनाने, शाल और दरिया बनाने, मलमल और जरी का काम और लेखन-पठन की सामग्री आदि सबका सत्यानाश हो गया है। इन उद्योगो के जरिये करोडो भारतीयजन अपनी आजीविका चलाते थे, लेकिन अब उन्हे अपना पेट भरने के लिए अन्तिम उपाय के तौर पर खेती का आश्रय लेना पडता है।"[2]

१ बी० डी० बसु कृत "Ruin of Indian Trade and Industries" पृ० १११

२. रमेशचन्द्र दत्त कृत "Speeches and papers on Indian Questions" पृष्ठ १०६, ९०, ८१—डा० बालकृष्ण कृत "Industrial Decline in India" पृष्ठ ९०-९१ से

: ४ :

सोलहों आने दरिद्रता

शासक वर्ग और भारतीय राजनीतिज्ञो को चेताते हुए श्री रमेशचन्द्र दत्त लिखते है, "किसी भी देश को—पृथ्वी पर के अत्यन्त समृद्ध देश तक को—अगर ऐसी स्थिति मे रक्खा जाय कि उसके उद्योग-धन्धे नष्ट-भ्रष्ट होगये हो, खेती भाररूप और अनिश्चित करो के बोझ के नीचे दबी पड़ी हो और आमदनी का आधा भाग प्रतिवर्ष देश से बाहर चला जाता हो[1] तो जल्दी ही उसे अकाल की वेदना अनुभव होने लगेगी। देश के द्रव्योत्पादक साधनों को व्यापक बनाने और जनता से कर के रूप मे प्राप्त धन को उसी पर और उसी के लिए खर्च किये जाने से ही देश समृद्ध होता है। इसके विपरीत अगर सम्पत्ति के साधन सकुचित कर दिये जाय और करके रूप मे

१. हिन्दुस्तान से जिन-जिन मार्गों से विलायत को पैसा जाता है वे इस प्रकार है—

(१) सिविल और मिलिटरी अधिकारियो की पैंशन और छुट्टी के भत्ते।

(२) रेल्वे, सेना और दूसरे विभागो के लिए आवश्यक माल की विलायत में खरीद।

(३) विनिमय की दरो के हेर-फेर

(४) दूषित चलन-पद्धति

(५) 'राष्ट्रीय-ऋण'—उस पर ब्याज

(६) हिन्दुस्तान में लगी हुई इंग्लैंड की पूंजी पर ब्याज

(७) विलायती जहाजो के जरिये होनेवाला भारतीय माल का आवागमन

(८) कपड़े तथा दूसरे माल की आयात, आदि-आदि

वसूल होने वाले धन का खासा भाग देश के बाहर जाने लगे तो वह देश दरिद्री बन जाता है। अर्थशास्त्र का यह अत्यन्त सरल और स्पष्ट नियम है। हिन्दुस्तान और दूसरे राष्ट्रो के व्यवहार इन्ही नियमो के अनुसार होते है। हिन्दुस्तान के अपने उद्योग-धन्धो के पुनरुद्धार हुए बिना, भारतीय किसानो पर निश्चित और सहज मर्यादा डाले बिना और भारतीय आय का पर्याप्त भाग भारत मे ही खर्च किये बिना भारत की दरिद्रता का नष्ट होना सम्भव नही है।[१]

साधारण मनुष्य वर्तमान मे प्रचलित व्यवहार के भावी परिणाम का अनुमान नही कर सकते, लेकिन दृष्टा, राजनीति विशारद और राष्ट्र के सच्चे नेता इस बात को सहज ही समझ जाते है।

गत डेढसौ वर्षो की अवधि मे जिन अग्रेज सज्जनो को प्रसगानुसार भारत की स्थिति का सूक्ष्म निरीक्षण करने का मौका मिला, उनमे के कुछ लोगो ने भारत की भावी स्थिति के सम्बन्ध मे कुछ भविष्यवाणिया लिख रक्खी है। इन भविष्यवाणियो से भारत की स्थिति का स्पष्टतर ज्ञान मिलने मे सहायता मिलती है, अत समय के क्रम के अनुसार वे नीचे उद्धृत की जाती है।

सन् १७६९ मे मि० वेरेल्स्ट नामक अग्रेज सज्जन बगाल के गवर्नर थे। वह उसी सन् के ७ अप्रैल के अपने एक पत्र मे कम्पनी के डायरेक्टरो को लिखते है—

इस विवेचन की कदाचित ही आवश्यकता हो कि, जिस राष्ट्र के वार्षिक तलपट मे उसकी कुल आय की $\frac{1}{3}$ से अधिक रकम उसके नाम लिखी जाती हो—प्रतिवर्ष जिस पर इतना कर्ज लादा जाता हो—वह कितना ही सम्पन्न क्यो न हो, उसके समृद्ध बने रहने की बात तो दूर रही, वह अधिक समय तक अपना अस्तित्व तक कायम न रख सकेगा। इसके सिवा राष्ट्र की सम्पत्ति का ह्रास करने वाले और भी कितने ही ऐसे कारण है, जिन्हे अगर जल्दी ही दूर नही किया गया तो राष्ट्र जल्दी ही दम तोडने लगेगा। मैने देखा

१. दत्त, भाग १, Introduction पृष्ठ १६

है कि पहले राजाओ के विलासितापूर्ण खर्चीले रहन-सहन, और राज्य की आय मे से भिन्न-भिन्न कुटुम्बो को बडी-बडी देनगी दी जाने के कारण देश का पैसा देश मे ही बना रहता था, लेकिन अब वसूल की गई सारी-की-सारी मालगुजारी या भूमि-कर अपनी तिजोरी मे आ पडता है। इसमे से कुछ आवश्यक खर्च अथवा कम्पनी के व्यवहार के लिए होने वाली देन-लेन के सिवा और कोई रकम यहा वापस नही आती।"[१]

सन् १८३० के लगभग सर जॉन शोर बगाल के गवर्नर थे। उन्होने हिन्दुस्तान के सम्बन्ध मे एक पुस्तक लिखी है। उसमे वह कहते है—

"अपने खुद के लाभ के लिए प्रत्येक सम्भव उपाय से भारत को अपने आश्रित कर लेना ही अग्रेज राजनीति का मुख्य उद्देश्य है। उसपर अधिकाधिक कर लाद दिया गया है, और एक के बाद एक जो-जो प्रान्त हमे मिलता जाता है, वह अधिकाधिक धन ऐंठने का एक क्षेत्र ही बन जाता है। हिन्दुस्तान की समृद्धि के दिन बीत गये। एक समय उसके पास जो सम्पत्ति थी वह समुद्र पार बह गई। थोडे लोगो के लाभ के लिए लाखो के हितो की हत्या करने की कुटिल राज्य-पद्धति के कारण हिन्दुस्तान की शक्ति का विकास होना रुक गया है।"[२]

मि० माण्टगामेरी मार्टिन[३] नामक सज्जन सन् १८३८ मे अपनी पुस्तक मे हिन्दुस्तान की लूट के सम्बन्ध मे लिखते है—

"ब्रिटिश हिन्दुस्तान से प्रतिवर्ष ३०,००,००० पौण्ड की जो रकम जाती है, उसको अगर भारतीय दर के अनुसार प्रतिवर्ष बारह सैकडा चक्रवृद्धि ब्याज से हिसाब लगाया जाय तो वह ७२,३६,९७,९१७ पौण्ड अथवा हलके दर से हिसाब किये जाने पर २०,००,००० पौण्ड के हिसाब से ५० वर्ष मे ८,४०,००,०००,००० पौण्ड (१,२६,००,००,००,०००) रु०

१. दत्त, भाग २ पृष्ठ ३०

२. दत्त, भाग १ पृष्ठ ४११-१२

३. उन्होने खुद अपने खर्च से दस वर्ष तक ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेशो में प्रवास करके उनके सम्बन्ध में सप्रमाण जानकारी और

होता है । ऐसे सतत और सगठित प्रवाह का परिणाम इग्लैण्ड तक को दरिद्र बनाये बिना न रहेगा । फिर जिस राष्ट्र मे मजदूरो की दैनिक मजदूरी दो से तीन पेस तक है उस हिन्दुस्तान पर इसका कितना घातक परिणाम हुआ होगा ?"[१]

यह तो हुआ १८३८ तक का हिसाब । इसके बाद सन् १९०१ मे श्रीदादाभाई नोरोजी ने हिसाब लगाकर यह सिद्ध किया था कि प्रति वर्ष ३,००,००,००० पौण्ड (४५,००,००,००० रु०) विलायत को जाते है। १९०१ और १९४६ की स्थिति मे काफी अन्तर पड गया है। आजतक हिन्दुस्तान क़र्ज़दार था वह गत ५ वर्षो मे साहूकार राष्ट्र बन गया है। हिन्दुस्तान से प्रतिवर्ष कितनी भारी रकम बिलायत को गई और युद्ध सहायता के नाम पर गत सात सालो मे कितनी असख्य धनराशि विलायत को चली गई होगी, यह विषय अङ्कशास्त्रियो का है ।

सुप्रसिद्ध अग्रेज राजनीतिज्ञ जान ब्राइट इग्लैण्ड की अतीत स्वार्थ-परायणता पर नजर डालते हुए लिखते है—

"अभी (१८५०) तक इग्लैण्ड ने तरह-तरह की सूक्ष्म और नई-नई

अक आदि सगृहीत करके इसी भारी ग्रन्थ मे उपनिवेशो का पूरा इतिहास लिखा है । उपनिवेशो की तरह हिन्दुस्तान मे भी रहकर उन्होने यहा की परिस्थिति का भी अध्ययन किया था । ईस्टइण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरों की हिमायत के अनुसार डा० बुकनन ने हिन्दुस्तान के उत्तर और दक्षिण के भागो का दौरा कर जो बहुमूल्य सामग्री एकत्र की थी, उसके प्रकाशित होने के पहले वह इस ससार से विदा हो गये थे । तब उनका यह अधूरा काम पूरा करने की जिम्मेदारी मि० मार्टिन पर डाली गई । मि० मार्टिन ने डा० बुकनन की सब सामग्री को सिलसिलेवार लगाया और उस पर प्रसगानुसार जगह-जगह पर अपने सम्पादकीय नोट लगाकर उसे ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित किया है ।

१. दादाभाईकृत "Poverty and un-British Rule in India," Introduction, पृष्ठ ७ से ।

युक्ति-प्रयुक्तियो से हिन्दुस्तान को लूटकर अपने को मालामाल बनाया है। हिन्दुस्तान के साथ न्याय और सम्मानपूर्वक तरीके से व्यवहार करके इग्लैण्ड इससे भी कई गुना अधिक सम्पत्तिशाली बन सकता है। मै चाहता हू और प्रतिपादन करता हू कि इग्लैण्ड अपने मे ऐसा सुधार करे। इग्लैण्ड अगर इस तरह व्यवहार करे तो वह हिन्दुस्तान और स्वय अपने लिए भी हितकर सिद्ध होगा और उससे मानवजाति के लिए एक श्रेयस्कर उदाहरण पैदा हो जायगा।[1]

इग्लैण्ड के अर्थशास्त्रज्ञ और इतिहासकार जान स्टुअर्ट मिल (१८०६ से १८७३) अपने 'हिन्दुस्तान का इतिहास' मे लिखते है—

"अपनी सम्पत्ति के प्रवाह से राष्ट्र (हिन्दुस्तान) के साधन-सामग्री पर बडे जोरो का बोझ या दबाव पडा है, जिससे वह सर्वथा थक गया है। इस तरह होने वाली हानि की पूर्त्ति के लिए और कोई दूसरी योजना अमल मे नही लाई गई। सम्पत्ति का यह प्रवाह राष्ट्रीय उद्योग-धन्धो की धमनी मे से राष्ट्र-पोषक जीवन-रस का शोषण कर लेता है।"[2]

आज उपरोक्त राजनीतिज्ञ के वर्णन के अनुसार हिन्दुस्तान की प्रत्यक्ष स्थिति हो गई है। इतना ही नही आज की स्थिति उससे भी अधिक शोचनीय है। मि० हेनरी सेण्ट जान टक्कर ने इग्लैण्ड का व्यापारिक उद्देश्य बताते हुए जो इच्छा प्रदर्शित की थी, उसके अनुसार हिन्दुस्तान अब 'कारखानेदार राष्ट्र' के दर्जे से च्युत होकर इग्लैण्ड को केवल कच्चा माल जुटाने वाला 'किसान-राष्ट्र' रह गया है। वह किस तरह, सो आगे देखिये।

सन् १९४१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार हिन्दुस्तान की जन-सख्या ३८,८९,००,००० है। इस जन-सख्या का, विभिन्न धन्धो के लिहाज से वर्गीकरण तथा ससार के दूसरे राष्ट्रो के साथ तुलना करने पर उसका क्या दर्जा

१. दादाभाई कृत "Poverty and un-British Rule in India" पृष्ठ ६२०।

२ दादाभाई कृत "Poverty and un-British Rule in India" Introduction पृष्ठ ८ से।

ठहरता है वह नीचे के अंको से स्पष्ट दिखाई देगा—

नाम	वर्ष	खेती	उद्योग-धन्धे व्यापार	सम्माननीय धन्धे	घरू नौकरी	दूसरे धंधे	सेना
हिन्दुस्तान		६५-६०	१५-९१	१-६१	७-५१	५-२७	
इंग्लैण्ड		७	६८	१०	१२	२	१
फ्रास		३८	५०	६	४		२
जर्मनी	१९२५	३१	५८	६	४½		½
इटली	१९२१	५६	३५	४½	२½		२
रूस	१९२६	८७	९	२	२		०
अमेरिका	१९३०	२२	५१	८	१०	८	½

(नोट—अंक जनता का प्रतिशत परिमाण दिखाते है)[1]

खेती और उद्योग-धन्धो के सम्बन्ध मे आय की दृष्टि से दूसरे राष्ट्रो से हिन्दुस्तान की तुलना करने पर उसका कौनसा स्थान है, यह नीचे के अंको से दिखाई देगा।

प्रत्यक्ष काम करने वाले लोगों की प्रति व्यक्ति आय—

देश का नाम	खेती से	उद्योग-धन्धों से
हिन्दुस्तान	५९) रु०	१२) रु०
जापान	५७) ,,	१५८) ,
स्वीडन	१२३) ,,	३८४) ,,
ग्रेटब्रिटेन	६२) ,,	४१२) ,,
कनाडा	२१३) ,,	४००) ,,
युनाइटेड स्टेट्स, अमेरिका	१७५) ,,	७२१) ,,

अर्थ शास्त्र का यह सिद्धान्त है कि जो राष्ट्र उद्योग-धन्धो से अधिक आमदनी पैदा करते है अथवा जिस राष्ट्र के बहुसख्यक लोग उद्योग-धन्दो मे सलग्न रहते है वे अधिक सम्पन्न और जो राष्ट्र अधिकाश मे कच्चा माल तैयार करते है वे आर्थिक दृष्टि से दरिद्र होते है।

१. छ० न० जोशी कृत "आपणा आर्थिक प्रश्नो"

हिन्दुस्तान किस प्रकार कृषि-प्रधान राष्ट्र है, यह उपरोक्त कोष्टक से स्पष्ट दिखाई दे जाता है। सन् १९४१ मे हिन्दुस्तान मे खेती के काम मे आनेवाली कुल जमीन २७ करोड ८० लाख एकड थी और गावो मे रहने वाले लोगो की सख्या ३३,९२,००,००० थी। इस हिसाब से प्रति व्यक्ति $\frac{3}{4}$ अर्थात् पौन एकड से भी कम जमीन का औसत पडता था। यह तादाद बहुत ही कम है। अमेरिका मे प्रति व्यक्ति ५ १ एकड और आस्ट्रेलिया मे प्रति व्यक्ति ३ एकड का औसत है।

हिन्दुस्तान मे अब बिना खेती की जमीन बहुत कम रह गई है। डा० राजेन्द्रप्रसाद ने हिसाब लगाकर बताया है कि अगर इस जमीन को भी खेती की जमीन के साथ मिला लिया जाय तो प्रति व्यक्ति के औसत में अधिक-से-अधिक आधा एकड की वृद्धि और होगी।[1]

सरकार को जनसख्या अर्थात् आबादी के लिहाज से खेती की जमीन के इस अत्यल्प परिमाण को ध्यान मे रखकर सिचाई की अर्थात् बन्द अथवा नहर की ही सुविधा करनी चाहिए थी, लेकिन उसकी ओर से ऐसी कोई सुविधा की गई हो, यह दिखाई नही देता।

सन् १९४१ मे हिन्दुस्तान मे कुल २९ करोड ८० लाख एकड जमीन जोती गई। उसमे से करीब ५ करोड ४६ लाख एकड भूमि के लिए ही सिंचाई की सुविधा थी। इसमे भी सरकारी बन्द या नहर की सुविधा तो करीब २॥ करोड एकड के लिए ही थी, बाकी करीब ३ करोड एकड भूमि का काम प्राइवेट नहर और निजी तालाब तथा कुओ से चलता था।

कुल जोती गई जमीन मे से पानी की सुविधा वाली जमीन का परिमाण सिर्फ ३० फीसदी है। इनसे यह सहज ही दिखाई पडता है कि सर्वत्र बन्द आदि के द्वारा सिचाई की सुविधा करना किस प्रकार आवश्यक है।

सरकारी बन्द केवल ९ फीसदी है उनमे के बहुत-से हिन्दू और मुसलमान राजाओ के समय के है। उनमे कई जगह मरम्मत की जरूरत है;

१. डा० राजेन्द्रप्रसाद कृत "Economics of Khadi" पृष्ठ ३-४

लेकिन सरकार से वह भी अभीतक नही की जाती ।[२]

देश के बहुसख्य लोगो के किसान बन जाने के कारण खेती के काम मे आनेवाली जमीन का परिमाण बढ गया । इस परिमाण के बढ जाने के कारण खराब जमीन का भी सहारा लिया जाने लगा । उसमे फसल खराब और कम पैदा होने लगी ।[२] इसके सिवा जमीन की उत्पादक-शक्ति भी कम हो गई ।[३] इस तरह खेती से हानेवाली किफाहत भी नष्ट होने लगी ।

किसानो को उपज का आधा लगान देना पडता है । इसके सिवा कुछ अतिरिक्त कर भी देना पडता है । इस अतिरिक्त कर का कुछ भी परिमाण नही रहता है । सरकार की इच्छानुसार वह अमर्यादित रूप मे बढा दिया जाता है । देश मे खेती के लगान की पद्धति की अनिश्चित, और लगान के दिन-प्रतिदिन लगातार बढते ही जाने के कारण रष्ट्रका खेती का धन्धा भी डूब गया । ससार के किसी भी राष्ट्र को हिन्दुस्तान की-सी स्थिति मे रक्खा जाय तो उसकी भी वही गति हुए बिना रह नही सकती । भारत के किसान थोडे मे ही गुजारा चलानेवाले, उद्योगी और शांतिप्रिय होते हुए भी उपरोक्त कारणो से दरिद्री और साधनरहित होगये है और इसलिए हमेशा ही अकाल और भुखमरी के शिकार होते रहते है ।[४]

सर्वथा खेती पर अवलम्बित रहने के कारण राष्ट्र केवल अकाल अथवा भुखमरी का ही शिकार नही होता, बल्कि साथ ही उसकी बौद्धिक और मानसिक हानि भी कितनी होती है, यह बात सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्रज्ञ फेडरिक लिस्ट के निम्नलिखित उद्धरण से प्रकट होगी—

१. होमरूल लीग की ओर से प्रकाशित गुजराती पुस्तक 'किसानो के दुःख' पृष्ठ १२–१४.

२ Director of Agriculture for Bombay डा० बालकृष्ण कृत 'Industrial Decline in India' पृष्ठ १०८ से ।

३. ना० गोखले, डा० बालकृष्ण कृत "Industrial Decline in India" पृष्ठ १० से

४. दत्त भाग २, भूमिका पृष्ठ ८

"सर्वथा कच्चे माल की खेती करनेवाले राष्ट्र मे मानसिक दुर्बलता, शारीरिक वक्रत और पुराने आचार-विचार तथा रीति-रिवाज, इन तीनो को दृढ पकड रखनेवाली हठवादिता आदि दुर्गुण पैदा हो जाते है और वह अपनी सस्कृति, वैभव और स्वतत्रता से हाथ धो बैठता है। इसके विपरीत व्यापार और उद्योग-धन्धो मे सलग्न राष्ट्र बौद्धिक और शारीरिक विकास के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते है। और साथ ही उनमे सात्त्विक स्वाभिमान पैदा होकर वे स्वतन्त्रता-प्रिय बन जाते है।"[२]

श्री हरिगणेश फाटक अपनी 'स्वदेशी की मीमासा' नामक पुस्तक मे भारतीय किसानो की वास्तविक स्थिति का चित्र खीचते हुए लिखते है—

"गाव का पटवारी, तलाटी, पुलिस का सिपाही, सर्कल इन्स्पेक्टर, रेजर, सबरजिस्ट्रार, फौजदार, तहसीलदार, आबकारी-ठेकेदार, ग्राम-पचायत का अधिकारी, परगना व जिला बोर्ड के सदस्य, स्कूल-मास्टर, काजीहौस जमादार, गाव का मुखिया, साहूकार और मारवाडी व्यापारी छोटे-बडे सभी उसके—किसान के—मालिक बन जाते है। हरेक की बरदाश्त करते-करते उसका नाक मे दम आ जाता है। अगर बैल भूल से रक्षित जगल मे चला गया तो किसान पर जुर्माना! कोई लडका-बच्चा जगल से लकडी-चारा उठा लाया कि जुर्माना! पटैल की फर्मायिश पूरी नही की गई, इसलिए भुगत सजा! पुलिस को सन्तुष्ट नही कर सका, इसलिए खा लात-घूसे! फौजदार बेगार मे गाडी-बैल ले गया तो रो बैठकर! दस्तावेज लिखानी हो तो ला दक्षिणा! कोई सस्कार कराना हो तो पकड पैर ब्राह्मण के! कोई कर भरना हो तो जोड सरकार के हाथ! लोकल फण्ड देना हो तो गिड-गिडाते फिरो अफसरो के पास! दरख्वास्त लिखानी हो तो लाओ पैसे!

"इस प्रकार बेचारे किसान की जियो या मरो की-सी स्थिति हो गई है, तिस पर अगर वर्षा नही हुई तो उसकी मुसीबतो का कोई अन्त नही।

"अकाल पडने पर सरकार की तरफ से लगान की माफी मिलना

२ **डा० बालकृष्ण कृत** "Industrial Decline in India" **पृष्ठ २४-२५ से।**

कठिन होता है, घर का गहना-गाठ अथवा बैल-बकरा बेचे बिना गति नही होती। घर मे खाने को दाना नही। अकाल मे मजदूरी के लिए बाहर जाना मरणान्तक दु:ख के समान होता है, उस समय किसी तरह साहस कर घर से बाहर निकले भी तो सुकाल मे जगली सूअर, सियार, चोर आदि का कष्ट। इन सबके परिणाम मे अगर किसान दु:ख से 'भगवान्, न तो मुझे आपकी यह खेती चाहिए, न ये सब मुसीबते ये उद्गार निकाल कर गाव छोड जाय तो इसमे क्या आश्चर्य है ?

"महाराष्ट्र मे लोग खेती छोड-छोडकर भागने लगे है। जहा ५०-५७ घर होने चाहिये थे, अच्छी पशुशाला व पुष्ट बैल होने चाहिए थे, अनाज की कोठियाँ भरी हुई, तिल्लेदार पगडी सिर पर सुशोभित दिखाई देनी चाहिए थी, वहा टूटे-फूटे मकान, दुबले-पतले पशु, नरककाल जैसे बच्चे, मिट्टी के हाडी-बर्तन, सिरपर फटी-टूटी पगडी की चिंधिया, ऐसा हृदय-द्रावक दृश्य दिखाई देता है।[1]

यहा तक हमने देखा कि देश के व्यापार और उद्योग-धन्धो की किस तरह बरबादी हुई। देश के किसानो की कैसी शोचनीय स्थिति है। यह बात भी हमारे ध्यान में आई। उसी तरह विभिन्न मार्गो से किस प्रकार देश की आर्थिक लूट चल रही है। इसकी भी कुछ कल्पना हुई।

राष्ट्र के सम्पत्तिशास्त्र का यह एक नियम है कि साधारण जनता के पास से कर के रूप मे जो द्रव्य वसूल किया जाता है, वह उसी राष्ट्र ने जनता के हितमे खर्च किया जाय तभी राष्ट्र के पास पैसा रहता है। और तभी उसका व्यापार, उद्योग-धन्धे और कृषि सब फूलते-फलते है। इसका कारण यही है कि उस दशा मे देश का पैसा किसी-न-किसी रूप मे घूम फिर कर जनता को वापस मिल जाता है। लेकिन जब कर के रूप मे वसूल किया हुआ द्रव्य एक देश से दूसरे देश को भेज दिया जाता है, तब उससे हमेशा के लिए हाथ धो लेना पडता है और इसलिए व्यापार, उद्योग-धन्धे और खेत को उत्तेजन मिल नही पाता।

१. श्री हरिगणेश फाटक कृत 'स्वदेशी की मीमांसा' पृष्ठ ८२

भारतीय राष्ट्र की सम्पत्ति के तीनो ही स्रोतो—व्यापार, उद्योग-धन्धे और खेती—के इस प्रकार सूख जाने और लगभग एक शताब्दी से उसका इसप्रकार निरन्तर द्रव्य-शोषण होते रहने पर भी अगर वह दरिद्री नही होता तो ही आश्चर्य की बात होती ![1]

हिन्दुस्तान की दरिद्रता की ऊपर जो मीमासा की गई है, वैसी ही मीमासा सन् १९०४ मे भारतीय राष्ट्रीय महासभा (काग्रेस) के अध्यक्ष सर हेनरी काटन ने की थी। उन्होने लिखा है—

"जाच के बाद मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वैसे तो हिन्दुस्तान की बढती हुई दरिद्रता के अनेक कारण है, लेकिन मुख्य कारण उसके घरेलू उद्योग-धन्धो का नाश और देश के माल की जगह विदेशी माल की प्रभुता है। खेती की बढती भी एक सबल कारण है। देश की मुख्य फसल के लिए खेती को जमीन बढाने के लिए शक्ति-भर प्रयत्न किया जाता है और यह दिखाने की कोशिश की जाती है कि देश के कच्चे माल की निकासी मे होनेवाली वृद्धि राष्ट्र की बढती हुई समृद्धि का लक्षण है। लेकिन सच बात यह है कि वह राष्ट्र की समृद्धि का लक्षण न होकर उलटे उसकी अधोगति का ही सूचक है।"[2]

अब हम हिन्दुस्तान की दरिद्रता कितनी है, इस पर नजर डाले। अनेक अर्थशास्त्रियो और अक-विशारदोने हिन्दुस्तान की दरिद्रताके सम्बन्ध मे जुदा-जुदा अनुमान निकाले है। व्यक्ति अथवा राष्ट्र की साम्पत्तिक स्थिति सदा एकसी नही रहती। इसलिए भिन्न-भिन्न समयो मे निकाले गये सब अनुमानो का भी एकसा होना सम्भव नही है।

हिन्दुस्तान की औसत वार्षिक आय का ठीक-ठीक अनुमान निकालना बडा कठिन काम है, क्योकि इसके लिए हिसाब मे कौन-कौन से विषय लेने चाहिए, इस सम्बन्ध मे कभी एकमत नही हो सका। इसके सिवा

१. दत्त, भाग २, भूमिका पृष्ठ ८–९

२ डा० बालकृष्ण कृत "Industrial Decline in India" पृ० १६६ से

जुदा-जुदा वर्षों मे जो अनुमान निकाले गये है, उनका तुलनात्मक अध्ययन करते समय उन वर्षों के वस्तुओ के भावो को ध्यान मे रखकर वे निकाले गये होगे। इतनी प्रास्ताविक सूचना के बाद, इस सम्बन्ध मे अभी तक जो प्रयत्न किये गये है वे क्रमश नीचे दिये जाते है–

क्रम संख्या	औसत निकालने वाले	औसत का वर्ष	प्रति व्यक्ति वार्षिक आय
१	दादा भाई नौरोजी	१८७०	२०—०—०
२	बेअरिंग बार्बूर	१८८२	२७—०—०
३	अटकिन्सन	१८७५	२५—०—०
		१८९५	३४—०—०
४	डिग्बी	१८९८-९९	१८—९—०
५	लार्ड कर्जन	१९००	१०—४—०
६	डिग्बी	१९००	१७—४—०
७	वाडिया और जोशी	१९१३-१४	४४—५—६
८	विश्वेश्वरैय्या	१९१९	४५—०—०
९	शाह और खबाटा	१९२१-२२	६७—०—६
१०	काले	१९२१	४०—०—०
			४८—०—०
११	फिंडले शिरास	१९२१	१०७—०—०
		१९२२	११६—०—०
१२	,,	१९२३	११७—०—०
१३	,,	१९२४	१२६—०—०
१४	,,	१९२५	११४—०—०
१५	,,	१९२६	१०८—०—०
१६	,,	१९२७	१०८—०—०
१७	,,	१९२८	१०६—०—०
१८	,,	१९२९	१०९—०—०

१९	,,	१९३०	८४—०—०
२०	,,	१९३१	६६—०—०
२१	,,	१९३२	५८—०—०

प्रो० घोष ने १७२५ मे प्रत्येक व्यक्ति की औसत वार्षिक आय रु० ४६—६—० निकाली थी। बाद मे सर विश्वेश्वरैय्या ने अपनी पुस्तक "Planned Economy for India" मे कहा है कि हिन्दुस्तान के प्रत्येक व्यक्ति की औसत वार्षिक आय ८२) रु० माननी चाहिए। अवश्य ही यह अक जिस वर्ष फसल अच्छी हुई होगी, उस वर्ष का समझना चाहिए।

इस आय से विदेशी राष्ट्रो की प्रति व्यक्ति औसत आय से तुलना करने पर यह मालूम होगा कि इस दृष्टि से ससार मे हिन्दुस्तान का कौनसा स्थान है।

क्रम सख्या	देश का नाम	सन्	वार्षिक आय
१	ब्रिटिश हिन्दुस्तान	१९३१	६७॥)
२	इग्लैड	१९३१	१८२६)
३	आस्ट्रेलिया	१९२४	११२३)
४	अमेरिका (युनाइटेड स्टेट्स)	१९३२	१२०१॥)
५	फ्रास	१३२८	५५३॥)
६	चेकोस्लोवाकिया	१९२५	४७२॥)
७	डेन्मार्क	१९२७	७४२॥)

फिडले शिरास के नियत किये हुए ५८) रु० और ऊपर उल्लिखित ६७॥) मे अन्तर है। जुदा-जुदा अर्थशास्त्रियो ने जुदा-जुदा पद्धतियो से यह औसत निकाला है, इसलिए उनमे ऐसा अन्तर होना स्वाभाविक है। फिर भी इससे वार्षिक आय का औसत किसी दो अको के बीच है, यह सहज ही दिखाई देता है।

सन् १९३८ मे एक पौड की कीमत १३॥) थी। उसी हिसाब मे उक्त अक दिये गये है। आज उसमे कुछ अन्तर पड़ेगा।

अब हम यह देखेगे कि आय के अनुपात से कर का परिमाण क्या है।

क्रम संख्या	कर का विषय	समथ लोगो पर पड़नवाले कर का बोझ (करोड़ रु०)	गरीबो पर पड़न वाले कर का बोझ (करोड़ रु०)
१	जकात	२०	२१
२	भूमिकर और जलकर	२०½	२१½
३	आयकर	२०	०
४	आबकारी	०	२०
५	नमक	१¼	७½
६	जगल और चरागाह	२	५
७	स्टाम्प	६½	६½
८	रेल्वे	३३	६८
९	पोस्ट आफिस	५	५½
१०	म्युनिसिपल कर	३	१०
११	जिला लोकल बोर्ड	०	१०
		१११¼ करोड रु०	१६७ करोड रु०

इन अको पर प्रो० शाह इस नतीजे पर पहुचे है कि आर्थिक दृष्टि से दुर्बल और कम समर्थ लोगो पर ही हिन्दुस्तान के करो का अधिकाधिक बोझ पडता है। स्थूल दृष्टि से इस बोझ का औसत धनवान लोगो पर १०० करोड और गरीबो पर १५० करोड रुपये है। हिन्दुस्तान की जन-सख्या के ५२ फीसदी से भी कम लोग कुल ६०० करोड रुपये की सम्पत्ति का उपभोग करते है। इसमे से औसत वार्षिक १०००) रु० की आय वाले कुटुम्बो से वसूल होने वाले करो से १०० करोड रु० वसूल होते है। बाकी की जन-सख्या के ९६ फीसदी लोग कुल १००० से १२०० करोड रुपयो का सम्पत्ति का उपभोग करते है। इन पर पडने वाले करो का बोझ १५० कराड रुपये होता है।

करो का यह विभाजन न्याय अथवा आर्थिक दृष्टि से उचित है, ऐसा

शायद ही कहा जा सके ।[1]

हिन्दुस्तान मे प्रति व्यक्ति करो का क्या औसत पडता है यह फिर नीचे के अको से दिखाई देगा—

वर्ष	कर का औसत रु० आ० पाई०
१९२२-२३	५—४—५
१९२५-२६	५—६—७
१९२७-२८	५—५—०
१९३२-३३	५—०—६[2]

प्रो० जथार और बेरी का मत है कि वर्तमान मन्दी के जमाने मे प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय ५५ रु० मानना चाहिए । इस हिसाब से प्रति व्यक्ति ५) रु० कर का मतलब हुआ उसकी आय का ग्यारहवा भाग ! कितना जबर्दस्त कर है यह !

ऐसे इस गरीब देश मे गवर्नर-जनरल आदि बडे-बडे अधिकारियो की तनख्वाह क्या है, वह देखिए—

अधिकारी	मासिक वेतन
गवर्नर जनरल	२१,३३३-५-८
प्रान्तीय-गवर्नर	१०,६६६-१०-८
गवर्नर-जनरल की कार्य-कारिणी का सदस्य	७,३३३-५-४
प्रान्तीय गवर्नर की ,, ,,	५,३३३-५-४

ससार के किसी भी राष्ट्र के, फिर चाहे वह कितना ही उन्नत और समृद्ध क्यो न हो, बडे-से-बडे अधिकारी को इतना वेतन नही दिया जाता । इग्लैण्ड में रहनेवाले गवर्नर-जनरल के अधिकारी भारत-सचिव की तनख्वाह ६२५०) रु० है ।

१ प्रो० जथार और बेरी कृत "Indian Economics" (१९३७) भाग २, पृ० ५६५

२. प्रो० जथार और बेरी कृत "Indian Economics" (१९३७) भाग २, पृ० ५६२

हिन्दुस्तान ससार का गरीब-से-गरीब राष्ट्र है, लेकिन उसके अधिकारी का वेतन ससार के समृद्ध-से-समृद्ध राष्ट्र के अधिकारी के वेतन से भी अधिक ! कैसी असगत बात है यह ! ऐसी स्थिति मे हिन्दुस्तान दरिद्री न बनता तो ही आश्चर्य होता ।

इस दरिद्रता का परिणाम जनता को किम प्रकार भुगतना पडता है, इस सम्बन्ध मे अनेक प्रभावशाली अग्रेज सज्जनो ने जो मत व्यक्त किये है, उनसे परिस्थिति पर अच्छा प्रकाश पडता है । सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक सर विलियम हण्टर सन् १८८० मे लिखते है—

'चार करोड हिन्दुस्तानी अपर्याप्त भोजन पर अपने दिन काटते है ।"[१]

इसी प्रकार सर चार्ल्स इलियट का अनुमान है कि "किसान वर्ग मे से आधे किसानो की भूख वर्ष के आरम्भ से लेकर अन्त तक कभी भी पेट भर भोजन करके शात नही हुई ।[१]

सन् १८९१ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट मे लिखा है—"यह निश्चित प्रतीत होता है कि करीब-करीब ७ करोड लोग यह तक नही जानते कि दोनो बार पेट-भर भोजन किसे कहते है । समृद्धिकाल मे ही वे केवल इस आनन्द का उपभाग कर सकते है ।[२] दोनो बार पेट भर भोजन को आनन्द कहना यह केवल भारतीय जनता के ही भाग्य मे बदा है ?

सन् १८९३ मे मि० ग्रियर्सन सी० आई० ई० ने अपनी पुस्तक 'गया जिले के नोट्स' मे जो कुछ लिखा है, उस पर से "पायोनियर" पत्र ने निम्नलिखित सार निकाला है—

"मजदूर वर्ग मे के सब लोग और किसान तथा कारीगरो मे के दस फीसदी अथवा कुल जनसख्या के ४५ फीसदी लोगो को पूरा अन्न अथवा वस्त्र दोनो ही चीजे नही मिलती, अगर यह मान लिया जाय कि गया की परिस्थिति अपवादात्मक नही है, तो हिन्दुस्तान के करीब १० करोड लोग

१. बालकृष्ण कृत "Industrial Decline in India" पृष्ठ १६४से
२. बालकृष्ण "Industrial Decline in India" पृष्ठ १६९

अठारह बिस्वे दरिद्रता मे ही अपने दिन काटते है।[1]

'पायोनियर' जैसे भारत-विरोधी एग्लो-इण्डियन पत्र ने जो यह सार निकाला है, वह विश्वसनीय ही समझना होगा।

ब्रिटिश मजदूर दल के सुप्रसिद्ध नेता (अब स्व०) मि० रेमजे मेकडानल्ड अपनी "हिन्दुस्तान की जाग्रति" नामक पुस्तक मे लिखते है—

"इसे लेकर ५ करोड तक कुटुम्ब (जिसका मतलब हुआ १५ से लेकर २५ करोड तक मनुष्य) साढे तीन आने की आय पर अपना गुजारा करते है। हिन्दुस्तान को दरिद्रता केवल कल्पना नही प्रत्यक्ष वस्तु स्थिति है। सर्वथा सम्पन्न काल तक मे कर्जरूपी चक्की का अच्छा-खासा मोटा पाट किसान के गले मे लटका रहता है।"[2]

उन्होने अपनी पुस्तक मे इससे भी अधिक भयकर वस्तु स्थिति का चित्र खीचा है। वह लिखने है—

"देहात मे घूमने पर ऐसे शरीर दिखाई पडते है जो दिन-रात के परिश्रम से चकनाचूर होगये है और जो भूखे पेट मन्दिर मे खिन्न बदन होकर परमेश्वर की उपासना करते है।" बेचारे धर्म-भीरु लोग! भगवान् का नही तो किसका आश्रय लेगे?

मि० आर्यविन अपनी 'Garden of India" नामक पुस्तक मे मजदूरो की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखते है—

"अनाज मे से ककर की तरह निकाले हुए अधनगे-भूखे लोग गाव-गाव मे सर्वत्र दिखाई पडते है। उनके पास मवेशी या ढोर-डगर न होने के कारण आजीविका का कोई साधन नही है। कुदाली से खोदी हुई थोडी-सी जमीन के सिवा उनकी जीविका का और कोई साधन नही है। उन्हे २ मेर के भाव का बिल्कुल हलका अनाज अथवा डेढ या दो आने रोज की

१. डा० बालकृष्ण कृत "Industrial Decline in India" पृष्ठ २६३-६४ से

२ डा० बालकृण कृत "Industrial Decline in India" पृष्ठ १६४।

दैनिक मजदूरी मिलती है और यह नगण्य मजदूरी भी पूरे वर्ष-भर नही मिलती। क्षुधा-पीडित और बहुधा वस्त्र विहीन स्थिति मे ये लोग सर्दी के दिनो मे चोरो और पशुओ से अपनी खेती की रक्षा करके किस तरह जी सकते है, यह एक सतत आश्चर्य ही है।[1]

अब दरिद्रता के परिणाम पर नजर डालिए।

कोई हिन्दुस्तानी एक बार दरिद्रता के चगुल मे फसा नही कि उसपर एक के बाद एक आपत्ति की शृखला ही शुरू हो जाती है। दीनबन्धु एण्डरूज ने इस शृखला का अत्यन्त मार्मिक विवेचन किया है। उनके इस विवेचन से उनकी निरीक्षण शक्ति कितनी सूक्ष्म है इसकी सहज ही कल्पना होती है। वह कहते है—'जब खाद्य पदार्थों की अन्तिम सीमा आ पहुचती है तब दरिद्री मनुष्य का जीवन उसके भी नीचे चला जाता है और वह ऐसे भवर के चक्कर मे जा फसता है कि उससे उसका छुटकारा होना कठिन हो जाता है। दरिद्री मनुष्य का दुःखमय जीवन ही उसे नीचे गिरने पर मजबूर करता है। वह मानो दुख के समुद्र में ही डूब जाता है। आये दिनकी कर्जदारी[2] और अपने बाल-बच्चो की चिन्ता मे वह दब जाता है। बार-बार उसे बेकारी का मुकाबिला करना पडता है अथवा पसीना-पसीना कर देने वाली कडी मजदूरी—गुलामी से भी ऐसी मजदूरी कम कष्टदायी नही होती—करनी पडती है। प्रत्येक मजदूर यह जानता है कि वह कब बीमार पड जायगा, इसका कोई नियम नही। बीमारियो के कारण उसका जीवन इतना दारिद्र्यमय हो जाता है कि उसे जो मजदूरी मिलती है वह किसी तरह पूरी नही पडती। यहा जाकर वह घातक भवर रुकता है।[3]

देश का सार्वजनिक स्वास्थ्य हलके दर्जे का और मृत्यु-सख्या बढाने

१. डा० बालकृष्ण कृत "Industrial Decline in India" पृष्ठ २२८ से

२ 'यग इंडिया'—२० जुलाई १९२८

३. 'भारतीय किसान पर १६०० करोड़ रुपया कर्ज होने का अन्दाज है, हमारा आर्थिक प्रश्न, पृष्ठ १९०

वाला हो तो देश की दरिद्रता का सूचक होता है।[1] अमेरिकन डा० बाइड एम० डी० का मत है कि सक्रामक अर्थात् छूत से फैलने वाले रोगो के प्रतिकार की शक्ति देश-निवासियो के आर्थिक दर्जे पर अवलम्बित है। जिस क्षेत्रफल के बहुसख्यक लोग अत्यन्त दरिद्री होते है, वहा रोग का प्रादुर्भाव बारम्बार होता रहता है। जिस भाग की आर्थिक स्थिति उन्नत होती है अथवा सुधर जाती है वहा रोगो का प्रादुर्भाव कम होता है। इसका कारण यही है कि वहा के निवासियो का भोजन अच्छा पुष्टिकारक होता है और वहा रोगो के प्रतिकार की अधिक सुविधा होती है।"[2]

डा०बाइड का यह मत सर्वथा ठीक है। भिन्न-भिन्न कारणो से भिन्न-भिन्न अवधि मे लाखो हिन्दुस्तानी किस तरह मृत्यु के मुह मे गये यह देखिए[3]—

अवधि	कारण	सख्या
१८७१ से १९२१ (५० वर्ष)	अकाल	२८८ लाख
१८९६ से १९२१ (२५ वर्ष)	प्लेग	१०० लाख
१९०१ से १९२१ (२० वर्ष)	शीतज्वर	१८३ ,,
१९१८ से १९१९ (९ महीने)	इन्फ्ल्युएजा	१३३ ,,

अब हिंदुस्तान और दूसरे देशो की आयु का औसत तथा वहा के मनुष्यो और बालमृत्युओ का औसत देखिए—

राष्ट्र का नाम	औसत-आयु	मनुष्यो का औसत फी हजार	शिशुओ का औसत फी हजार	जनमते ही मरने वाले शिशुओ का औसत फी सदी
हिंदुस्तान	२२ ९५	३० २	१९४	१९ ४
इगलैण्ड	५३ ४२	११ ७	७५	७ ५

१. रिचार्ड बी० ग्रेग कृत "Economics of Khaddar" पृष्ठ १५३

२ "Young India"—२५ अक्तूबर १९२८

३. प्रो० सी० एन० वकील "Yonng India" २६ जुलाई १९२८

फ्रास	४७४३	११५	८५	८५
जर्मनी	४९४	१३२	१०८	१०८[1]

उपरोक्त सारे विवेचन से पाठको को इस बात की स्पष्ट कल्पना हो जायगी कि हिन्दुस्तान की हद दर्जे की दरिद्रता का देश पर कितना भयकर परिणाम हो रहा है।

१. प्रो० जथार और बेरी कृत "Indian Economics' भाग १ (१९३७) पृष्ठ ५८

: ५ :

हिन्दुस्तान के अकाल

हिन्दुस्तान दरिद्रता की तरह अकाल का भी घर बन गया है। सन् १७५७ के पलासी के युद्ध से लेकर १९०० तक ३५ अकाल पडे, जिनमे ५ करोड लोग उनकी बलि चढे।[1] डा० अजारिया के मतानुसार यह स्पष्ट दिखाई पडता है कि सन् १८०० से १८२५ तक २ अकाल, सन् १८२५ से १८५० तक २, सन् १८५० से १८७५ तक ६, और १८७५ से १९०० तक १८, इस प्रकार सौ वर्षो मे कुल २८ और इससे पहले सन् १८५७ से १८०० तक के ४३ वर्षो मे ३ अकाल पडे। सन् १८५१ से १९०० तक के ५० वर्षो मे पडे २४ अकालो के सम्बन्ध मे डा० अजारिया कहते है—"तीन करोड लोग इन अकालो की बलि चढे और १५ करोड लोग इतने दुर्बल हो गये कि सब तरह के ससर्गजन्य अर्थात् छूत के रोगो के वे सहज ही शिकार हो जाते है।"

ये अङ्क मनन करने योग्य है। सन् १८०० से १८५० तक ८ और १८५१ से १९०० तक २४ अकालो का पडना और उनमे ३ करोड लोगो का मृत्यु के मुख मे जाना —कितनी शोचनीय और हृदयद्रावक स्थिति है यह! उन्नीसवी सदी के द्वितीयार्द्ध अर्थात् ५० वर्षो मे २४ अकाल पडे, इसका मतलब यह है कि प्रति दो वर्षो मे एक अकाल का औसत हुआ! इसके बाद सन् १९०१ और सन् १९०७ मे सयुक्तप्रान्त मे, १९१२ मे अहमदनगर मे १९१८ और १९२० और फिर १९४५ तक हिन्दुस्तान के जुदा-जुदा भागोमे और अकाल पडे है। बगाल के अकालकी कहानी जितनी करुणोत्पादक है, उतना ही वह अकाल मनुष्यकृत होने से दिल मे खीझ पैदा करने वाला है। इस साल भी यानी १९४६ मे भी अकाल पडने वाला है, ऐसा जोरो से कहा जा रहाहै।

१. "Forward" के १९२७ के नववर्षाक में श्री ज्ञानाञ्जन नियोगी

आइए, अब इन अकालो के कारणो की मीमासा करे। बगाल के प्रसिद्ध विद्वान् और अकविशेषज्ञ श्री ज्ञानाञ्जन नियोगी जोर देकर कहते है—"सरकार की तरफ से बार-बार कहा जाता है कि वर्षा का अभाव ही अकाल का कारण है, लेकिन उसका यह कथन जितना पोच है उतना ही असत्य भी है। १५० वर्ष पहले जितनी वर्षा होती थी, अब उससे कम होती है। यह सिद्ध करने के लिए उसके पास कोई प्रमाण नही है। इसके विपरीत हमारे पास ऐसे प्रमाण मौजूद है, जिनसे यह प्रतिपादन किया जा सकता है कि प्रान्त मे वर्षा का इतना अधिक अभाव कभी नही हुआ जिससे कि वह अपने लिए आवश्यक अन्न पैदा न कर सके। लोगो के पास अनाज खरीदने के लिए पैसा न रहना ही उनके मत से अकाल का असली कारण है। वह दावे के साथ कहते है कि लोगो की यह भुखमरी रेले चालू करने से मिटने वाली नही है।[1]

हिन्दुस्तान से प्रति वर्ष द्रव्य का जो अधिकाधिक शोषण होता रहता है, श्री रमेशचन्द्र दत्त के मत से, हाल के अकालो का यही प्रमुख कारण है। वह कहते है—

"शासन मे परिवर्त्तन होने के बाद—१८५७ मे शासनसूत्र ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के हाथो से निकलकर महारानी विक्टोरिया के हाथो मे आने के बाद—बारह वर्ष के अन्दर ही यह द्रव्यशोषण चौगुना होगया। इस निरन्तर और बढते जाने वाले शोषण को सहन कर हिन्दुस्तान ने उन्नी-सवी सदी के अन्तिम भाग मे बार-बार और व्यापक परिमाण मे आने वाले अकालो की भूमिका तैयार कर रखी थी? ससार का कोई भी देश इस निरन्तर द्रव्यशोषण को सहन नही कर सकता। स्वभावत ही उसका आर्थिक परिणाम अकाल होता है।[2]

अमेरिकाके सुप्रसिद्ध विद्वान् और वृद्ध लेखक डा० सण्डरलैण्डने हिन्दुस्तान के अकाल के सम्बन्ध म नीचे लिखे अनुसार अपना मत व्यक्त किया है—

१. "Forward" सन् १९२७ का नववर्षांक, पृष्ठ ९०

२ दत्त, भाग २, पृष्ठ १३८

"हिन्दुस्तान मे जो अकाल पडते है, उनके कारणो के सम्बन्ध मे अगर खुले दिल और पूरी तरह से जाच की जाय तो यही सिद्ध होगा कि जनता की दरिद्रता ही उसका फल और मुख्य कारण है। यह दरिद्रता इतनी तीव्र और भयङ्कर है कि जिस वर्ष खूब अच्छी फसल होती है उस वर्ष तक मे लोगो को भूखा रहना पडता है। इतना ही नही, आडे वक्त पर काम आने के लिए जो थोडा बहुत अनाज सग्रह करके रखना चाहिए, इस दरिद्रता के कारण वह तक नही किया जा सकता, और इसलिए जब फसल धोखा दे जाती है, उस समय उसकी स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो जाती है। उस हालत मे अगर दान-धर्म के किसी फण्ड से उनको कुछ सहायता मिल गई तब तो वे बच जाते है, नही तो मृत्यु तो अपना मुह बाये बैठी ही रहती है।"[१]

इस प्रकार पैसे का अभाव—लोगो की हद दर्जे की दरिद्रता—ही अकाल का प्रधान कारण है। अकाल अनाज का नही, पैसे का पडता है, लोग अगर सामान्यत सम्पन्न स्थिति मे हो—उनके पास काफी पैसा हो—तो पडौस के प्रान्त से भी अनाज लाकर अकाल के सकट को टाल सकते है। ऐसा करने से कम-से-कम किसी तरह की प्राण हानि तो नही होती। लेकिन जब लोगो के पास कुछ दम नही रहता—एक पाई भी पास नही रहती, तब वे पडौस के प्रदेश से अनाज खरीद नही सकते। ऐसी स्थिति मे हजारो ही क्या, लाखो को मृत्यु का शिकार होना पडता है।

पण्डित मदनमोहन मालवीय कहते है—

अनाज का अभाव कोई अकाल का कारण नही है। इस देश मे काफी अनाज पैदा होता है। अनाज खरीदने के लिए लोगो की जेब मे काफी पैसे नही होते, अकाल का यही असली कारण है।"[२]

इसी प्रकार का मत श्री मजबूर रहमान ने भी व्यक्त किया है। वह कहते है—

'अकाल का कारण अनाज का अभाव नही, बल्कि द्रव्य का अभाव ही उसका प्रधान कारण है।"[३]

१. "Forward" सन् १९२७ नव वर्षाक से—पृष्ठ ६१
२. Swadeshi Symposium पृष्ठ १२३
३. " " पृष्ठ २४१

यहा यह प्रश्न हो सकता है कि क्या पहले अकाल नही पडते थे ? ठीक है पडते थे ,[१] लेकिन यह बात सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट है कि इस तादाद मे कभी नही पडते थे ! पहले के और अब के अकालो की सख्या मे कितना अन्तर है ! पहले ८००वर्ष मे या बहुत हुआ तो १००वर्ष मे एकाध अकाल पडता था, लेकिन अब तो एक वर्ष बीता नही कि अकाल का दौरा तैयार है ! पहले जमाने मे जब अकाल पडता था तब उससे पहले वर्ष म फसल की पैदावार अच्छी होती थी और अकाल निवारण के लिए तत्कालीन नरेशो[२] की तरफ से तुरन्त ही उपाय किये जाते थे, इस कारण उसके सकट

१. सन् ६५० और १०३३ मे भयकर अकाल पड़े थे। मुगल-शासन-काल मे सिर्फ चार ही अकाल पड़ थे। (श्री रमेशचन्द्र दत्त के "Famines in India" की भूमिका पृष्ठ १९ मे वर्णित श्री दादाभाई के उद्गार)

२. मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त ने अकाल प्रतिबन्ध के उपाय के रूप मे ये नियम बना रखे थे—(१) सरकारी कोठार मे का सिर्फ आधा ही अनाज काम में लाया जाता था (पहले कर अनाज के रूप मे ही वसूल होता था) बाकी का आधा अनाज सकट-ग्रस्त लोगो के सकट-निवारण के लिए सुरक्षित रखा जाता था और (२) अकाल के समय अगली फसल बोने के मौके पर जनता को देने के लिए अच्छे बीज का सग्रह रखा जाता था, इसके सिवा, (३) अकाल-पीडितो की सहायता के विचार से कुछ नई इमारतें बनाने का काम शुरू करके उन्हे मजदूर के तौर पर उसमे लगाया जाता था, और उपरोक्त कोठार मे से उन्हे मुफ्त मे अनाज दिया जाता था; (४) धनवान लोगो से अकाल फण्ड वसूल किया जाता था, और मित्र-राष्ट्र की भी शक्ति-भर सहायता ली जाती थी।

इन उपायो से भी अगर अकाल का काम पूरा न हो तो कौटिल्य ने सुझाया है कि (१) राजा को चाहिए कि जहा अच्छी फसल पैदा हुई हो, कुछ समय क लिए अपनी प्रजा को लेकर वहा रहने के लिए चला जाय, (२) किसी तालाब, नदी या समुद्र के किनारे जाकर नया उपनिवेश बसावे। वहा अनाज, शाक तरकारी, मछली, शिकार आदि के जरिये लोगो की उप-

की अवधि अल्पकालीन और उसकी तीव्रता अत्यन्त न्यून भासित होती थी। कुछ मुगल सम्राट हृदय के उदार और हिन्दुस्तान के ही स्थायी निवासी थे, इसलिए अकाल के कारण और प्रतिबन्ध के लिए उदारतापूर्वक उपाय सोचते थे।[१] अब हर दो साल मे एक बार अकाल पडता है, और बहुत-सा अनाज विदेश को रवाना हो जाता है, इसलिए लोग उसका सग्रह कर ही नही पाते। फसल के तैयार होते ही लगान की अदायगी के लिए उसका अनाज बेच देना पडता है। ऐसी स्थिति मे अकाल का मुकाबला करना सम्भव नही रहता।[२]

अपने मुख्य अनाज का विदेश भेजा जाना भी हिन्दुस्तान के अकाल का एक कारण है। सन् १८९१ से १९२१ तक हिन्दुस्तान की जनसख्या मे ढाई करोड की वृद्धि हुई, लेकिन गेहू और चावल की पैदावार मे वृद्धि नही हुई, इसके विपरीत निर्यात काफी तादाद मे बढ गया। इस निर्यात के कारण हिन्दुस्तान मे अनाज का सग्रह बहुत कम रहता है। गत तीन वर्षो मे चावल और गेहू की पैदावार क्रमश ७६ और २४ करोड मन हुई है। इससे यह सिद्ध होता है कि जनसख्या की वृद्धि के बराबर अनाज की पैदावार मे वृद्धि नही हुई। 'यूल' साहब का मत है कि जिस राष्ट्र की ऐसी स्थिति हो उसे स्वभावत ही भुखमरी सहन करनी पडती है और धीरे-धीरे अन्तमे वह नष्ट हो जाता है।[३]

जीविका चलावे।

(**श्री एस के दास कृत** 'Economic History of Ancient India" **पृष्ठ १७७ से--राज्याधिकारी वर्ग इससे खासा सबक सीख सकते है।**

१. "Forward" **सन् १९२७ के नववर्षांक पृष्ठ९० में श्रीज्ञानाजन नियोगी।**

२. **दादाभाई कृत** "Poverty and un-British Rule in India" **पृष्ठ ६५५**

३. "Forward" **सन् १९२७ के नववर्षांक पृष्ठ९० श्रीज्ञानाञ्जन नियोगी।**

अनाज की निकासी के साथ-साथ देश का खाद भी देश के बाहर जाता रहता है, इसलिए उसकी फसल के अच्छा होने में भी उसका अनिष्टकारक परिणाम हुए बिना नही रहता।

श्री ज्ञानाञ्जन बाबू "Forward" सन् १९२७ के नववर्षांक मे लिखते है—

"भारत से प्रत्येक मिनट पर ३ मन हड्डी, ७ मन खली और १४ मन तिलहन विदेश को रवाना होता है।"

इसके सिवा दादाभाई ने हिन्दुस्तान के अकालो का एक और भी कारण बताया है। वह अत्यन्त मार्मिक है और साधारण लोगो के ध्यान मे आने योग्य नही है। वह कहते है—

"साम्राज्यातर्गत युद्धो का और उनके लिए रक्खी जाने वाली अपार सेना का खर्च हिन्दुस्तान पर डाला जाता है। उसे यह खर्च बरदाश्त नही करना चाहिए। वह बरदाश्त कर नही सकता, फिर भी वह लादा जाता है, इसीसे उसपर बहुताश म अकाल का सकट आता रहता है।[२]

यह है हिन्दुस्तान के अकालो की मीमासा।

अब अकाल ग्रस्त लोगो की स्थिति पर नजर डालिए। मि० डब्ल्यू० एस० लिली, आई० सी० एस० अकाल-ग्रस्त भाग का अपना अनुभव लिखते हुए कहते है—

"मै अकाल सम्बन्धी अपने अनुभव कभी भी नही भूलूगा। प्रति दिन शामके वक्त जब मै घोडे पर चढकर घूमता था तो कुछ हाड-मास सूखे हुये मनुष्यो के झुण्ड-के-झुण्डो इधर-उधर भटकते हुए दिखाई देते थे। इसी तरह रास्ते के एक ओर कुत्तो और गिद्धो की खाई हुई अरक्षित और दाहसस्कार न की गई मनुष्यो की लाशे पडी नजर आती थी। इससे भी भयकर दृश्य मैने देखा—माताओ ने अपने नन्हे बच्चो को छोड दिया था। ग्रीक लोग बच्चो को ससार का आनन्द मानते है, परन्तु उन्ही

२. दत्तकृत 'Famine in India' की भूमिका पृष्ठ १९में दादाभाई का उद्धरण।

कोमल बच्चो की चमकती हुई आँखे बुखार के कारण अन्दर धँस गई थी। शरीर मे थोडी हलचल बाकी थी। सिर की हड्डी निकल आई थी। फाके-कशी मे ही वे गर्भ मे आये, जन्मे और परवरिश पाये। इससे तरह-तरह की बीमारियो से ग्रस्त हुए। यह उनका हाल था। वह दृश्य और उसके विचार अबतक मेरा पीछा नही छोडते है।[1]

सन् १९०७ के अकाल के सम्बन्ध मे फरीदपुर के तत्कालीन कलक्टर मि० जेकसन ने अत्यन्त आश्चर्यजनक बात कही है। वह लिखते है—

"अभी वृक्षो मे पत्ते बाकी है और स्त्रिया अभी तक वेश्याये नही बनी है, इससे मालूम होता है कि इस भाग मे अभी अकाल नही है।"[2]

इसमे सन्देह नही कि अकाल की भयकर स्थिति की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करने की मि० जेकसन की यह कसौटी सचमुच अद्वितीय है।

१९४३ के बगाल के अकाल की कहानी बिलकुल ताजी है। उस सम्बन्ध मे लिखकर यह मजमून बढाना उचित नही है।

१. "Forward" का नववर्षांक, पृष्ठ ९०
२. ,, ,, पृष्ठ ९१

: ६ :

बेकारी और आलस्य

पिछले अध्याय मे हम देख ही चुके है कि हिन्दुस्तान किस तरह औद्योगिक राष्ट्र के पद से गिरकर कृषिप्रधान राष्ट्र बन गया और दरिद्रता और अकालो ने उसे किस तरह घेर रक्खा है। अब इस अध्याय मे हमे यह विचार करना है कि इस कृषिप्रधान राष्ट्र को खेती भी पर्याप्त काम देती है या नही।

खद्दर का सम्पत्ति शास्त्र (Economics of Khaddar) के लेखक मि० ग्रेग ने इसका हिसाब लगाया है। वह लिखते है—"सन् १९२१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार सिर्फ ब्रिटिश इलाके मे १० करोड ७० लाख लोग 'चराई और खेती' के काम पर अपनी उपजीविका चलाते है। पिछले अध्याय मे हम यह देख ही चुके है कि प्रति व्यक्ति भूमि का औसत बहुत कम होने से इन १०,७०,००,००० लोगो को भी लगातार बारह महीने बराबर काम नही मिलता—कम-से-कम वर्ष के तीन महीने तक वे बिलकुल बेकार रहते है। उक्त १० करोड ७० लाख मनुष्य हिन्दुस्तान की कुल आबादी का करीब-करीब एक तिहाई भाग है।

हिन्दुस्तान की बढती हुई दरिद्रता और खेती की विशेष परिस्थिति के कारण इन १० करोड ७० लाख लोगो को, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, वर्ष में से कुछ महीने बेकार रहना पडता है। इस कारण उनकी स्थिति 'दुबले को दो असाढ' अथवा 'मरे को मारे शाहमदार' की सी हो जाती है। सारे धन्धे पहले ही डूब गये, बचते-बचते बचा था खेती का धन्धा, वह करने गये तो उससे भी पूरा नही पडता, तब मजबूर होकर कर्ज और भुखमरी के शिकार बनकर दिन काटने पडते है।

हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न प्रान्तो मे खेती पर निर्वाह करने वालो को

कितने महीने काम मिलता है और कितने महीने उन्हे बेकार रहना पडता है। इस सम्बन्ध मे सन् १९६१ की मर्दुमशुमारी के प्रान्तीय अधिकारियो ने जो विवरण दिये थे, वे महत्त्वपूर्ण है। उन सबके सुर एक ही है।

बगाल की मर्दुमशुमारा की रिपोर्ट मे मि० थॉमसन लिखते है—

"हरेक किसान के हिस्से मे २ २१५ एकड भूमि का औसत पडता है। इस स्थिति के कारण ही किसान गरीब है। जमीन का औसत २ १/४ एकड से भी कम पडने के कारण उन्हे वर्ष मे बहुत कम दिन काम मिलता है। किसान जब अपनी जमीन जोतता है तब उसे बहुत कडी मेहनत करनी पडती है, लेकिन वर्ष के अधिकाश दिनो मे उसके पास बहुत कम या कुछ भी काम नही रहता।"[1]

चौथे अध्याय मे हम यह देख चुके है कि सारे हिन्दुस्तान मे जमीन का औसत प्रति व्यक्ति ३/४ एकड पडता है। ऐसी हालत मे बगाल मे २ १/४ एकड औसत होना यह उसकी अपनी खुद की विशेषता है। वहा दायमी बन्दोबस्त की प्रथा है, इसलिए वहा का यह औसत बढा हुआ है। लेकिन दूसरे प्रान्तो की अपेक्षा वहा जमीन का औसत अधिक होते हुए भी, मि० थॉमसन के कथनानुसार वहा के किसानो के पास अधिकाश दिन काम नहीं रहता। इससे दूसरे प्रान्तो की क्या स्थिति होती होगी इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

'बिहार और उडीसा प्रान्त मे प्रति व्यक्ति जमीन का औसत ३/४ एकड है।'[2] इस प्रान्त के मर्दुमशुमारी अफसर मि० टेलेण्ट्स लिखते है—

"कुल वर्ष-भर मे कुछ समय तो ऐसा होता है कि किसानके कुटुम्बके सब मनुष्यो के लिए खेत पर काम रहता है, लेकिन कुछ समय ऐसा भी होता है जब उनके पास काम न होने की वजह से उन्हे हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहना पडता है। ऐसे समय मे उनकी काफी शक्ति बेकार जाती है,

१ श्री ग्रेग कृत "Economics of Khaddar" पृष्ठ १९३
२. बाबू राजेन्द्रप्रसाद कृत "Economics of Khadi" पृष्ठ ३

इसलिए उनके लिए किसी दूसरे सहायक धन्धे की जरूरत है ।[१]

यह बात ध्यान मे रखने योग्य है कि मि० टेलण्ट्स व्यर्थ जाने वाली शक्ति का और सहायक धन्धे का उल्लेख करते है ।

सयुक्त प्रान्त के मर्दुमशुमारी-अफसर मि० एडाई का विवरण इससे भी अधिक स्पष्ट है । वह कहते है—

आबादी का घना भाग तो खेतिहर है और यहा खेती का अर्थ साधारण रीति से साल मे दो फसल जोतना, बोना, काटना और रखना है । विलायत की-सी मिली-जुली खेती यहा नही है । इस तरह की खेती मे कभी-कभी थोडी मुद्दत के लिए बडी-कडी मेहनत रहती है—साधारण रीति से दो बोवाई, कटाई, बरसात मे कभी-कभी निराई और सर्दी मे तीन बार की सिचाई—और बाकी साल भर प्राय कोई काम नही रहता । ऐसे भागो मे जहा खेती की दशा अनिश्चित रहती है, कभी-कभी मौसम भर और कभी साल भर भी बेकार रह जाना पडता है । ये बेकारी के दिन अधिकाश अवस्था मे सुस्ती मे ही बीतते है । जहा किसान कोई ऐसा काम कर सकता है, जो खेती से बचे हुए समय मे सहज ही हो सके और जिसमे बार-बार लगे रहने की जरूरत न हो, तो उस काम की जो मजदूरी मिले, वह बचाये हुए समय के दाम है, उससे बरबादी बचती है और वह साफ मुनाफा है । इनमे सबसे अच्छा नमूने का काम और जिसका सबसे अधिक प्रचार भी है, हाथ से कते सूत का कपडा तैयार करना है ।"

मि० एडाई के उक्त विवरण पर से ये तीन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मुद्दे निकलते है—(१) विलायत की-सी मिली-जुली खेती यहा सम्भव नही है; (२) सहायक धन्धे का रूप कैसा होना चाहिए और (३) सूत कातना विशेष प्रकार का सहायक धन्धा है ।

किसी भी विचारशील व्यक्ति के मन मे स्वभावत ही ये प्रश्न उठे बिना रह नही सकते कि आखिर हिन्दुस्तान के किसान कुछ अर्से तक बेकार क्यो रहते है ? उन्हे वर्ष-भर काम क्यो नही करना चाहिए ?

१. ग्रेग कृत "Economics of Khaddar" पृष्ठ १९४

मि०एडाई का जो उद्धरण ऊपर दिया गया है उसमें अज्ञात रूप मे इन प्रश्नो का उत्तर दिया गया है। एक तो यह कि हिन्दुस्तान के किसानो के पास उनकी गरीबी के कारण, जमीन थोडी होती है, जिससे उनकी खेती का काम जल्दी ही पूरा हो जाता है। दूसरे, वर्षा का परिमाण अनिश्चित रहता है, इसलिए कुछ अर्से तक निठल्लापन अनिवार्य हो जाता है। यहा इग्लैण्ड की तरह किसानो के पास न तो जमीन के मोटे-मोटे टुकडे है, न नियमित वर्षा ही होती है, इसलिए उनको बडी दिक्कत होती है।

ऐसे किसानो के लिए सहायक धन्धे की अत्यन्त आवश्यकता है। इस धन्धे का कैसा स्वरूप होना चाहिए, मि० एडाई ने यह अच्छी तरह स्पष्ट करके दिखा दिया है। उनका यह कहना है कि "जिसमे बराबर लगे रहने की जरूरत न हो" ऐसा धन्धा चाहिए। यह ठीक ही है। अगर सहायक धन्धे मे ही सारा समय लगने लगे तो वह सहायक न रहकर मुख्य धन्धा हो जायगा। जब मन मे आवे तभी किया जा सके और करना सम्भव हो सके ऐसा ही सहायक धन्धा उपयुक्त हो सकता है, दूसरा नही।

मि० एडाई ने जो यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि उपर्युक्त दृष्टि से विचार करने पर सूत कातना ही एसा विशेष सहायक धन्धा है, यह उनके लिए अत्यन्त प्रशसा की बात है।

अब हम, कुछ अग्रेज लेखको और अधिकारियो ने किसानो की बेकारी की अवधि के सम्बन्ध मे जो मत व्यक्त किये है, उन पर कुछ नजर डालेगे।

पजाब सरकार के सहयोग विभाग के रजिस्ट्रार मि० एच० केलबर्ट किसानो के काम का हिसाब लगाकर अपनी Wealth and Welfare of the Punjab नामक पुस्तक मे लिखते है—

"पजाब का औसत किसान जो कुछ काम करता है,वह बारहो मासकी पूरी मेहनत मे डेढ सौ दिनो से अधिक का नही ठहरता और इन हरेक दिनो मे भी काम का औसत कुछ उन्नत पाश्चात्य देशो की अपेक्षा

काफी कम होता है ।[1]

बारह महीने मे डेढसौ दिन काम का मतलब हुआ वर्ष मे पाच महीने काम और सात महीने बेकारी ।

बगाल सरकार के भूतपूर्व सेटलमेन्ट अफसर मि० जे० सी० जेक अपनी "Economic Life of a Bengal District" नामक पुस्तक में लिखते है—

"जब किसान की जमीन सन बोने लायक नही रह जाती, तब उसका साल भर का समय तीन महीने की कडी मेहनत और नौ महीने की बेकारी मे बीतता है । और अगर वह जूट के साथ ही चावल की भी खेती करे तो जुलाई-अगस्त के महीनो मे उसे छ हफ्ते का काम और मिल जाता है ।"[2]

इसका अर्थ हुआ वर्ष भर मे साढे चार महीने काम और साढे सात महीने बेकारी ।

मध्यप्रान्त की स्थिति यह है कि साल भर मे सिर्फ बरसात के चार महीने काम रहता है और बाकी के करीब-करीब आठ महीने बेकारी मे बिताने पडते है । इस प्रान्त के मर्दुमशुमारी अफसर मि० शेटन लिखते है—

"बहुसख्यक लोग जिस खेती पर अवलम्बित रहकर अपनी जीविका चलाते है, वह खेती लोगो को पूरे साल भर काम नही देती । प्रान्त मे अधिकाश भाग ऐसा है जहा बरसात के अन्त मे काटी जानेवाली खरीफ की फसल ही महत्त्व की चीज है । इस फसल का अनाज काटकर इकट्ठा करने के बाद दूसरी बरसात शुरू हाने तक बीच के समय मे किसानो के पास शायद ही कोई काम रहता है ।"[3]

१. पृ० २४५ : ग्रेग "Economics of Khaddar" पृष्ठ १९४ से

२. पृष्ठ ३९ : " पृष्ठ १९५ से

३. ग्रेग "Economics of Khaddar" पृष्ठ १९५ ।

मद्रास प्रान्त मे काम के दिन कुछ अधिक प्रतीत होते है। मद्रास यूनिवर्सिटी के प्रो० गिल्बर्ट स्लेटर अपनी "Some Months in Indian Villages" नामक पुस्तक मे लिखते है—

"मद्रास प्रान्त की एक फसलवाली जमीन पर किसान को साल भर मे सिर्फ पाच महीने काम मिलता है और जहा की जमीन मे दो फसले होती है वहा किसान को आठ महीने काम रहता है।"[1]

उसके लिखने के मुताबिक यही दशा मैसूर की और शेष समस्त दक्षिण भारत की भी है।

लेकिन आगे यह भी कहते है—

"इस समय दक्षिण भारत मे ऐसी स्थिति पैदा हो गई है कि किसानों को काम बहुत कम मिलता है, जिसके कारण उन्हे कई महीने बहुत ही कम वेतन पर काम करना पडता है।"[2]

हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न प्रान्तो की साधारणतया यह स्थिति है। कम-से-कम १० करोड़ ७० लाख आदमियो को साल भर मे कम-से-कम चार महीने बेकार रहना पड़ता है, इससे राष्ट्र की कितनी प्रचण्ड शक्ति व्यर्थ जाती है इसकी सहज ही कल्पना हो सकती है। हमारे यहा एक कहावत है—"उद्योगी के घर ऋद्धि-सिद्धि पानी भरती है।" इस कहावत के अनुसार अगर उपरोक्त बेकार लोगो के फुरसत के समय का किसी उपयुक्त धन्धे मे उपयोग किया जाय तो उससे उनकी आर्थिक स्थिति मे कम-से-कम आशिक उन्नति तो अवश्य हुए बिना नही रहेगी। अगर उनका वह समय आलस्य मे बीता तो यह अनुभव सिद्ध बात है कि अग्रेज़ी कहावत के अनुसार शैतान अपनी शैतानी से बाज़ नही आयेगा।

१९४१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार उपर्युक्त हिसाब मे कुछ इज़ाफा ही हुआ है। क्योकि अन्य परिस्थिति जैसी थी वैसी ही है।

१. पृष्ठ १६ : ग्रेग Economics of Khaddar पृ० १९६ से
२. पृष्ठ २३४ ग्रेग की ,, ,, पृ० १९६ से

: ७ :

चरखा-संजीवनी

"वास्तव में गाधीजी एक महान् औद्योगिक इञ्जीनियर प्रतीत होते है ।"[1]

"हिन्दुस्तान में आजकल बेकारो की सख्या बहुत अधिक है । वास्तव मे ये बेकार वे एजिन है जिनमे अन्न-जल रूपी थोडा बहुत कोयला-पानी तो दिया जाता है, लेकिन जिन्हे माल उत्पन्न करनेवाले यन्त्र या मशीन आदि से जोडा नही जाता । गांधीजी उन्हे चरखे के साथ जोड़कर उनसे काम लेना चाहते है, अर्थात् इस समय जो अपार सूर्य-शक्ति बेकार जा रही है उसे काम में लाना चाहते है ।"[2]

जो भारतवर्ष अनेक बार वैभव के उच्चतम शिखर पर आरूढ रहा, आज उसकी कैसी दयनीय स्थिति हो गई है ! उसके सारे उद्योग-धन्धे डूब गये है, लगभग डेढसौ वर्ष से उसकी सम्पत्ति का स्रोत कल-कल करता हुआ निरन्तर विदेश की ओर प्रवाहित हो रहा है, ६७ प्रतिशत लोगो के पास खेती के सिवा जीविका का और कोई साधन न रहने के कारण वे सोलहो आने दरिद्रता के चगुल मे फसे हुए है, अकालो का ताता बध गया है और आबादी का कम-से-कम एक तिहाई हिस्सा सालो-साल चली आने वाली बेकारी से त्रस्त और बेदम हो गया है । इस प्रकार हमारी मातृभूमि —भारतवर्ष—लगभग मरणासन्न स्थिति तक पहुच चुकी है ! !

ऐसे समय मे उसके लिए सजीवनी मात्रा की अत्यन्त आवश्यकता थी, उसके सपूत—महात्मा गाधी—ने वही आज उसे दी । इस दृष्टि से देखने पर महात्मा गाधी राष्ट्रीय धन्वन्तरी ठहरते है ।

१. ग्रेग Economics of Khaddar पृ० ३३

२. ,, ,, पृष्ठ १९ (खद्दर का सम्पत्ति-शास्त्र पृ० ३१)

लेकिन वह केवल धन्वन्तरी ही नही, एञ्जीनियर भी है। Economics of Khaddar—खद्दर का सम्पत्ति-शास्त्र—के लेखक श्री रिचर्ड बी० ग्रेग ने उनका नाम 'राष्ट्र के महान् औद्योगिक एञ्जीनियर' रखकर उनकी दूरदर्शिता का सम्मान किया है।

मि०ग्रेग ने 'खद्दर का सम्पत्ति-शास्त्र' लिखकर उसमे खादी के आन्दोलन की वैज्ञानिक और मार्मिक मीमासा कर हिन्दुस्तान की बडी सेवा की है। इसके लिए इसमे कोई शक नही है कि भारतीय जनता सदैव उनकी ऋणी रहेगी।

इस अध्याय मे जिस विषय का प्रतिपादन किया गया है, वह उन्ही की पुस्तक के आधार पर किया गया है। मि० ग्रेग अमेरिकन है और वकील होने के साथ-साथ एञ्जीनियर भी है। वे प्रत्येक वस्तु को एञ्जीनियर की दृष्टि से देखते है उनके ग्रन्थ मे यह बात पग-पग पर दिखाई देगी। उनका दृष्टिकोण यह है—

"ससार मे दो तरह की शक्तिया है—आध्यात्मिक(spiritual) और आधिभौतिक (Physical) इनमे की आधिभौतिक शक्ति सूर्य से मिलती है। यह शक्ति भी दो तरह की है—सङ्कलित और प्रवाही अथवा तरल। कोयला और पेट्रोलियम—ये गत युग के सूर्य-शक्ति के प्रवाह के रूपान्तरित सग्रह और तालाब ही है। समुद्र के पानी का वाष्पी-करण सूर्य ही करता है। इसलिए पानी हमे प्रकारान्तर से बादल और बारिश के रूप मे सूर्य से ही मिलता है। ये सारे सकलित शक्ति के उदाहरण है। घोडे, मवेशी, और मनुष्य की शक्ति का भी उद्गमस्थान सूर्य ही है। ये प्रवाही सूर्य-शक्ति के उदाहरण है। इन सब प्राणियो का जीवन वनस्पतियो पर अवलबित है। वनस्पतिया, सूर्य-शक्ति इकट्ठा करती है, क्योकि वनस्पतिया सूर्य से ऑक्सीजन ग्रहण करके कारबन छोडती है। फसलो की वृद्धि भी सूर्यकिरणो से ही होती है। इस फसल से, धान्य से, अन्न से ही ये सब प्राणी-जीवित रह सकते है, तब प्रकारान्तर से सूर्य ही—सूर्य-किरण ही सारी जडशक्ति का उत्पादक है। ऐसी हालत मे इस सूर्यशक्ति का, सूर्य-किरण का, अन्न का,

अन्न खानेवाले मानव की शक्ति का, पहले जितना उपयोग होता था उससे अधिक उपयोग करके उसे व्यवस्थित और कार्य-स्वरूप देनेवाली कोई भी योजना एजीनियर की दृष्टि से और आर्थिक दृष्टि से भी हितकारक ही सिद्ध होगी।

मानव-प्राणी जो अन्न खाता है उससे ही उसे शक्ति प्राप्त होती है। और अन्न सूर्य-किरणो की सहायता से तैयार होता है, इसलिए इसका अर्थ यह हुआ कि वह प्रकारान्तर से सूर्य-किरणो पर—सूर्य की शक्ति पर—जीवित रहता है। पिछले अध्याय मे हम यह देख ही चुके है कि हिन्दुस्तान मे १० करोड से अधिक लोग बेकार है। इन सबको अन्नरूपी ईंधन से काम करने का शक्ति मिलती है; लेकिन क्योकि उनके पास काम नही है, इसलिए उनका वह शक्ति—सूर्य-शक्ति व्यर्थ जाती है। दस करोड से अधिक बेकार लोगो की शक्ति को इस तरह व्यर्थ जाने देने का अर्थ हुआ इतनी सूर्य-शक्ति को बेकार जाने देना। इस प्रकार इस शक्ति के व्यर्थ जाने से राष्ट्र की अपार हानि होती है। ऐसी दशा में महात्माजी जैसे व्यवहार कुशल वैश्य के दिमाग मे जो यह बात समाई कि उस शक्ति को व्यर्थ न जाने देकर किसी भी काम के जरिये उसका उपयोग कर लेना चाहिए, इसी मे उनकी दूरदर्शिता और व्यवहार-कुशलता दिखाई देती है।

महात्माजी अपना एक मिनट भी व्यर्थ नही गवाते और अपनी शक्ति भी बेकार नही जाने देते। ऐसी दशा मे उन्हे अपने करोडो देशवासियो के समय और शक्ति को स्वय अपनी आखो के सामने बेकार जाते हुए देखना कैसे सहन हो सकता है? बेकार लोगो को काम देकर उनकी व्यर्थ जाने वाली शक्ति का उपयोग कर लेना, इसीमे महात्माजी का एजीनियरिंग-कौशल है। दूसरे एजिनियरो और महात्माजी मे केवल उतना अन्तर है कि दूसरे एञ्जी-नियर तैल, भाफ, वायु (Gas) और विद्युत अथवा बिजली की सहायता से चलने वाले यन्त्रो एव मशीनरी का उपयोग करते है और महात्माजी उसके बजाय चलते-फिरते, बोलते-चालते मनुष्यरूपी एजिन का उपयोग करते है। दोनो ही तरफ के एजिनो की शक्ति का उद्गम-स्थान सूर्य ही है। जिस तरह

दूसरे प्रकार के एजिनो को किसी मशीन आदि एकाधिक यन्त्रसे सलग्न होना पडता है, उसी तरह महात्माजी ने मनुष्यरूपी एजिनो को चरखे तथा करघे से सलग्न किया है। दूसरे एजिनो को किसी-न-किसी तरह काईधन देना पडता है, उसी तरह मनुष्यो के लिए अन्न ईधन का काम दे सकता है। नीचे दिए हुए विवरण से यह कल्पना विशेषरूप से स्पष्ट होगी।
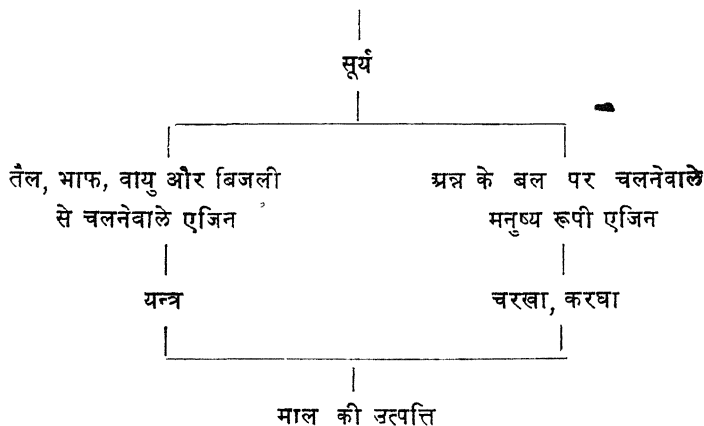
मि० लिप्सन अपनी (Increased Production) बढी हुई उत्पत्ति—नामक पुस्तिका मे लिखते है—

"देश की सम्पत्ति मुख्यत उसके निवासियो की कार्य-क्षमता पर ही निहित होती है। जिस देश मे प्राकृतिक साधनो की तो बहुतायत है, किन्तु निवासी आलसी और पिछडे हुए है, दूसरी ओर देश मे नैसर्गिक साधनों की तो इतनी विपुलता नही है, लेकिन निवासी पूरे अध्यवसायी और परिश्रमी है, इन दो तरह के राष्ट्रो की तुलना करने पर पहली तरह का राष्ट्र ही दरिद्री ठहरेगा। काम करने वाले लोगो की कार्य शक्ति को बढानेवाली कोई भी बात हो, उससे राष्ट्र की सम्पत्ति मे वृद्धि ही होगी, इसके विपरीत उसकी कार्य क्षमता मे कमी करनेवाली कोई भी बात राष्ट्र की सम्पत्ति को

धक्का पहुचानेवाली होगी। इससे यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि किसी भी समाज को अपनी किसी भी इकाई की द्रव्योपार्जन शक्ति का ह्रास न होने देना चाहिए। बेकारी की केवल चिन्ता अथवा भय उत्पादक कार्य के सहयोग मे विघ्नरूप हो बैठता है। हमे भूतदया की इस दृष्टि से भी यह बात—बेकारी का यह प्रश्न—भूलना नही चाहिए।'[1]

मि० लिप्सन का यह विवेचन हिन्दुस्तान की स्थिति पर सर्वथा लागू होता है। महात्माजी ने बेकारी के इस प्रश्न को हाथ मे लेकर करोडो मानव प्राणियो के जीवन को सुखी बनाने और साथ ही राष्ट्र की सम्पत्ति मे भी वृद्धि करने का कैसा प्रयत्न आरम्भ किया है यह इस पर से सहज ही मालूम पड जाता है।

पहले हम यह देखेगे कि हिन्दुस्तान के बेकारो की कितनी शक्ति व्यर्थ जाती है। हिन्दुस्तान पर पडनेवाली सूर्य-किरणो की शक्ति का माप लेने पर उसका औसत प्रतिवर्ष ४९,९६,००,००,००,००,००,००,००० अश्व शक्ति[2] (हॉर्स पॉवर) होता है। मनुष्य साधारणत एक मिनट मे १/६ अथवा १/१० अश्व शक्ति काम कर सकता है।

पिछले अध्याय मे हम यह देख ही चुके है कि हिन्दुस्तान मे १० करोड ७० लाख मनुष्य केवल खेती का काम करते है, इससे उनके पास वर्ष भर मे पाच से लेकर सात महीने तक कोई काम नही रहता। मनुष्य १/१० अश्व-शक्ति काम करता है। अगर १० करोड ७० लाख आदमी इस औसत से काम करने लगे तो उनका काम १ करोड ७० लाख अश्व-शक्ति होगा। अगर यह मान लिया जाय कि चरखे पर कातने के लिए १/१०० शक्ति की आवश्यकता होती है तो उससे १ अरब ७० करोड चरखे चलाने के लिए आवश्यक शक्ति का निर्माण होगा।

सन् १९१९ मे बम्बई की मिलो और कारखानो मे मिलाकर कुल

१. ग्रेग "Economics of Khaddar" पृष्ठ ६१

२. ५०० पौंड वजन एक सेकन्ड में एक फुट ऊंचा उठाने में जितनी शक्ति की दरकार होती है उतनी को १ अश्वशक्ति (हॉर्स पॉवर) कहते हैं।

१लाख अश्व शक्ति ही काम होता था। हिन्दुस्तान के सब कारखाने १०लाख अश्वशक्ति से कुछ ही अधिक काम देते है। इस दृष्टि से हिसाब लगाने पर बम्बई की मिलों और कारखानो की अपेक्षा हिन्दुस्तान के अकेले बेकारकिसानो की काम करने की शक्ति अधिक है। यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि इसमे देश के दूसरे बेकारो की शक्ति का समावेश नही किया गया है। यह हुआ देश के बेकार किसानो की शक्ति का कामचलाऊ औसत हिसाब। अब हम यह देखेगे कि इस बेकारी के कारण आर्थिक दृष्टि से राष्ट्र की कितनी हानि होती है और बेकारो को काम दिया जाने पर उस हानि की किस तरह पूर्ति हो सकती है।

हम यह मानकर चले कि किसानो की दैनिक मजदूरी तीन आने है। वास्तव मे तो उनकी दैनिक मजदूरी इससे अधिक ही है, फिर भी हम कम-से-कम औसत लगाकर हिसाब करेगे।

१० करोड ७० लाख आदमियो को तीन महीने अर्थात् नव्वे दिन—इन तीन महीनो मे ये सर्वथा बेकार रहते है—काम मिले तो तीन आने रोज के हिसाब से वे १,८०,५६,२५,००० रुपये कमा सकेगे। भारत सरकार की सन् १९२४-२५ के एक वर्ष की कुल आय—१,३८,०३,९२,२४४ रु० से भी यह रकम अधिक है। मान लीजिए कि इन बेकारो ने तीन महीने तक पूरे दिन काम न कर साधारण कातनेवालो की तरह दिन के कुछ हिस्से मे काम करके एक आना रोज कमाया तो भी वे वर्ष के अन्त मे ६०,१८,७५,००० कमा सकेगे। यह रकम भी कोई मामूली रकम नही है।

यह हिसाब सिर्फ तीन महीने लायक ही है। पिछले अध्याय मे हम यह देख ही चुके है कि बेकारी की मियाद असल मे इसकी अपेक्षा कही अधिक होती है। उसी तरह यह हिसाब तो केवल किसान बेकारो से चरखा चलवाने पर उससे राष्ट्र की सम्पत्ति मे कितनी वृद्धि होगी उसका हुआ। किसानो के सिवा देश मे दूसरे बेकारो की सख्या भी काफी है, उन्हे काम पर लगाया जाय तो उससे उक्त सम्पत्ति मे और भी अधिक वृद्धि होगी, यह अत्यन्त स्पष्ट है।

ग्रेग साहब का कहना है कि सूर्य-शक्ति के सम्पूर्ण उपयोग की दृष्टि से विचार करने पर मिल की अपेक्षा चरखे की काम करने की शक्ति अधिक है, क्योकि चरखे अथवा मिल के तकुओ के उपयोग मे आने के पहले उनके बनाने मे कितनी शक्ति खर्च होती है यह बात विचारणीय है।[१] शुरू से लेकर अन्त तक पूरी मिल की सारी मशीने बनाने मे लकडी के चरखे की अपेक्षा कई गुना अधिक सूर्य-शक्ति खर्च होती है। उसी तरह इन मशीनो के उपयोग मे भी उतनी ही अधिक प्रचण्ड शक्ति खर्च होती है। जबकि चरखे पर कातने मे बहुत ही कम सिर्फ $\frac{1}{100}$ अश्वशक्ति ही खर्च होती है।

शिल्पी (एञ्जीनियरिंग) की दृष्टि से, जितना माल बाजार मे खप जाने की उचित आशा की जा सकती है, और आगे खपत मे जितनी बढती की सम्भावना हो, उतने ही माल की तैयारी मे जितनी मशीनो की जरूरत हो उसी अन्दाज से वे तैयार की जानी चाहिए। आवश्यकता से अधिक बडी अथवा प्रचण्ड शक्ति की मशीनो को काम मे लाने से शक्ति का अपव्यय होता है। मशीनो की अनावश्यक वृद्धि का अर्थ निरर्थक रहने वाले यन्त्रो की चिन्ता करना-सा है। उससे जरूरत से कही ज्यादा खर्च और नुकसान होता है।[२]

यह बात बिलकुल साफ है कि चरखे के बनाने और उसके चलाने मे शक्ति कम लगती है। उसी तरह यह भी हमारे प्रत्यक्ष अनुभव की बात है कि लोहे की मशीनो के मुकाबले मे उसकी कीमत भी बहुत ही कम अथवा क्षुद्र होती है। इसके सिवा चरखे की दुरुस्ती मे मशीन की दुरुस्ती के मुकाबले मे बहुत ही मामूली-सी रकम खर्च पडती है। कुल मिलाकर सब बातो का विचार कर वैज्ञानिक भाषा मे कहा जाय तो उसका मतलब यह होगा कि मिलो की अपेक्षा चरखे विद्यमान सूर्यशक्ति का अधिक सस्तेपन से उपयोग कर सकते है।

मि० ग्रेग का कहना है कि शिल्पी और आर्थिक दृष्टि से चरखो और करघो की उपयोगिता कीमत मे मिलो से ज्यादा ठहरती है। आगे वह यह

१. ग्रेग "Economics of Khaddar" पृष्ठ २७
२. ग्रेग "Economics of Khaddar" पृष्ठ २८

भी कहते है—"मिलो से थोडे से मनुष्यो के एक समाज को अधिक मुनाफा होता है। इसे एक तरफ रखकर हमे यह भी देखना चाहिए कि जो मनुष्य-बल और सूर्य-बल इस समय राष्ट्र को उपलब्ध है, उसका ऐसी दशा मे बेकार नष्ट होना इतनी भारी हानि है कि, उसके मुकाबले मे मुट्ठी भर पूजी वालो का उक्त भारी मुनाफा कुछ भी नही ठहरता।"[1]

मि० ग्रेग का यह सिद्धान्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होने के सिवा विचार-क्रान्ति पैदा करने वाला भी है।

अब तक के विवेचन से पाठको के ध्यान मे यह बात अच्छी तरह आ गई होगी कि हिन्दुस्तान के १० करोड से अधिक किसानो के बरस वर्ष मे कम-से-कम तीन महीने खेती का कोई काम नही रहता, इसलिए उनकी प्रचण्ड शक्ति और समय व्यर्थ ही जाता है अथवा उसका दुरुपयोग होता है। ऐसी दशा में उन्हे अगर चरखे और करघे देकर उन पर काम लिया जाय तो उनका व्यर्थ जानेवाली शक्ति और समय का सदुपयोग होकर राष्ट्र की सम्पत्ति मे कितनी वृद्धि हो सकती है। ऊपर हम देख ही चुके है कि कम-से-कम एक आना रोज मजदूरी के हिसाब से वर्ष के अन्त मे वे ६०,१२,७५,००० रु० कमा लेगे। दाने-दाने अन्न के लिए तरसनेवालो की दृष्टि मे यह रकम कितनी भारी है। हद दर्जे की दरिद्रता मे फसे हुए और बार-बार पडने वाले अकालो से त्रस्त हुए इन दीन-हीन लोगो द्वारा अवकाश के समय मे काम करके कमाई हुई यह थोडी-सी रकम भी उसके लिए सजीवनी मात्रा के समान हितकर हुई है, और आगे भी होगी।[2]

१. ग्रेग "Economics of Khaddar" पृ० २९

२. बरसात के तीन-चार महीनों में जिस तरह किसान बेकार रहते है, उसी तरह उनके बैल भी निकम्मे रहते है। ऐसी दशा मे जिस तरह किसानो को चरखे और करघे पर लगाकर उनकी व्यर्थ जानेवाली शक्ति का उपयोग कर लेने की कल्पना सूझी, उसी तरह इन बैलो के लिए भी माल ढुलाई का काम मिलते रहना चाहिए। माल की यातायात के लिए माल मोटरें इस्तेमाल करने की प्रथा बढ़ रही है; यह अन्तमें भयावह है। हमारा पशुधन कसाई के घर भेजने वाली है।

: ८ :

चरखा ही क्यों ?

"चाहे और दृष्टि से गांधीजी उचित मार्ग से भटक ही गय हो लेकिन उन्होंने चरखे का जो पक्ष लिया है उसमें वह भारत की दरिद्रता के असली रहस्य के भीतर पैठ गए है"—डा० मैन

हिन्दुस्तान जैसे कृषिप्रधान राष्ट्र के ८६ फीसदी लोग गावो मे निवास करते है और इनमे ६० फीसदी लोग खेती पर अपनी जीविका चलाते है। वर्ष मे कम-से-कम तीन-चार महीने उनके पास काम नही रहता, ऐसी दशा मे उनके हाथ मे चरखा ही क्यो दिया जाय, अब हमे इसी विषय पर चर्चा करनी है।

दूसरे सब धन्धो को एक तरफ छोडकर सिर्फ चरखे को ही क्यो अपनाया जाय, इस प्रश्न पर सब दृष्टियो से विचार करने के लिए नीचे लिखे चार मुद्दो पर विस्तारपूर्वक चर्चा करना आवश्यक होगा—

(१) पिछले जमाने मे चरखे की कारगुजारी,

(२) चरखे की उपयुक्तता,

(३) दूसरे धन्धो से चरखे की तुलना, और

(४) चरखे के सम्बन्ध मे फैली हुई गलतफहमियो का निराकरण।

आइये, इनमे से एक-एक मुद्दे पर क्रमश विचार करे।

(१) अतीत काल में चरखे की कारगुजारी

पिछले अध्याय मे यह बताया ही जा चुका है कि वेदकाल से लेकर अंग्रेजी शासन के आरम्भ तक किस प्रकार चरखा वस्त्र-स्वावलम्बन और उपजीविका का सहायक साधन था। बहुत पुराने जमाने की चर्चा क्यो करे? अगर हम यह जान ले कि सौ-सवा सौ वर्ष पहले भारतीय जीवन मे चरखे ने

कौन-सा स्थान प्राप्त कर लिया था और उसने भारतीय जगत की कैसी सहायता की, तो आज चरखे का जो मजाक उडाया जाता है उसका रहस्य आसानी से समझ मे आ जायगा ।

श्रीरमेशचन्द्र दत्त अपनी "Indian Trade Manufactures and Finance" नामक पुस्तक मे कहते है—

"उन्नीसवी सदी के आरम्भ तक कातना और बुनना हिन्दुस्तान का राष्ट्रीय धन्धा था । चरखे और हाथ के करघे का सब जगह उपयोग होता था । यह कहने मे शायद ही अतिशयोक्ति हो कि औसत प्रौढ स्त्रियो मे की करीब-करीब आधी स्त्रिया खुद अपनी मेहनत की कमाई से अपने पति अथवा पिता की आय मे वृद्धि करती थी । ये धन्धे भारतीय ग्राम्य-जीवन के खासतौर पर अनुकूल है । उस समय बडी-बडी मिलें अथवा कारखाने नही थे । प्रत्येक स्त्री आस-पास के गाव के बाजार से रुई लाती थी और उसे कातकर गाव के जुलाहे उसका कपडा बुनकर व्यापारियो अथवा कपडे का व्यवसाय करनेवालो को देतेथे । इस तरह तैयार हुआ कपडा अरब, डच और पुर्तगालवासी लोग अपने देशो को भेजते थे ।"[1]

इस विवेचन से और वर्तमान समय मे चलनेवाले ५० लाख[2] चरखो की सख्या और परम्परा देखने पर इस बात का स्पष्ट अनुमान किया जा सकता है कि सौ-सवा सौ वर्ष पहले सारे हिन्दुस्तान भर मे चरखे ने प्रत्येक घर मे कौन-सा स्थान प्राप्त कर रखा था और उसने भारतीय समाज को कितना सहारा पहुचाया था ।

इस विवेचन से यह बात भी समझ मे आ सकती है कि और दूसरे बहुत से सहायक धन्धो के होते हुए भी महात्माजी ने चरखे और हाथ के करघे पर ही इतना जोर क्यो दिया । सैकडो ही नही हजारो वर्षों से चरखे और करघे की परिपाटी चली आ रही है । उसने अतीत काल मे

१. दत्त, भाग १ पृष्ठ १८०

२. Fact Finding Committee report appendix XXVI

राष्ट्र की सम्पत्ति मे काफी वृद्धि की है। हिन्दुस्तान जैसे कृषिप्रधान और भारी तादाद मे रुई पैदा करनेवाले राष्ट्र के ग्रामीण-जीवन के लिए ये धन्धे विशेष रूप से अनुकूल थे। ऐसी दशा मे महात्माजी ने जो यह रहस्य खोज निकाला कि दरिद्रता अकाल और बेकारी द्वारा पछडे हुए हिन्दुस्तान मे अगर चरखे और हाथ के करघे का पुनरुद्धार किया जाय तो वह फिर सम्पन्न हो जायगा, इसीमे उनका—महात्माजी का—बुद्धि-कौशल दिखाई देता है।

(२) चरखे की उपयुक्तता

अब हम चरखे की उपयुक्तता पर विचार करेगे। किसानो के लिए कोई ऐसा सहायक धन्धा तलाश किया जाय जिसमे उन्हे अपनी खेती अथवा घरबार न छोडना पडे और जिसे वे जब चाहे तब एक तरफ रखकर जिस समय चाहे दिन अथवा रात मे और सब ऋतुओ मे घर-के-घर मे ही कर सके तो वह चरखा कातना ही हो सकता है। दूसरी बहुत-सी दृष्टियो से भी किसानो के लिए चरखा बहुत ही अत्यन्त अनुकूल है। ता० २१ अक्तूबर १९२६ के 'यगइण्डिया' मे 'एकमात्र गृहोद्योग—चरखा' इस शीर्षक से एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसके अन्त में चरखे के सब गुण अत्यत मार्मिक रूप से सकलित किये गये है। वे इस प्रकार है—

(१) यह धन्धा तुरत किया जा सकने योग्य है क्योकि

(अ) इस धन्धे के शुरू करने के लिए न तो किसी खास पूजी की जरूरत होती है, न खास औजारो की। कच्चा माल (रुई) और औजार—(चरखा) दोनो ही सस्ते मूल्य पर अपनी जगह पर ही मिल सकते है।

(आ) हिन्दुस्तान के अज्ञान और दरिद्रता-ग्रसित लोगो के पास जितनी बुद्धि अथवा कौशल है, उससे अधिक बुद्धि अथवा कौशल की इस धन्धे मे कोई खास आवश्यकता नही होती।

(इ) इस धन्धे मे शारीरिक श्रम इतना कम पडता है कि छोटा बच्चा और वृद्ध पुरुष भी उसे कर सकता है और पारिवारिक

सम्पत्ति मे अपना भाग दे सकता है।

(ई) कातने की परिपाटी अभी तक जीवित है, इसलिए उसके फिर से जारी करने के लिए किसी नई भूमिका की आवश्यकता नही होती।

(२) कातनेवालो के पास सूत तैयार होते ही उसके लेनेवाले असख्य लोग हमेशा ही तैयार रहते है। अन्न के बाद केवल सूत ही ऐसी चीज है, जिसकी तुरन्त खपत होती है, इसलिए वह सब जगह और हमेशा काम देनेवाला है। इस प्रकार इससे दरिद्रता से ग्रसित किसानों के लिए सतत और नियमित आमदनी का मानो बीमा होजाता है।

(३) बरसात पर अवलम्बित न होने के कारण अकाल मे भी यह धन्धा किया जा सकता है।

(४) वह लोगो की धार्मिक अथवा सामाजिक भावनाओ के विरुद्ध नही है।

(५) अकाल का मुकाबला करने का यह अत्यन्त परिपूर्ण और तैयार साधन है।

(६) किसान अपनी निजी झोपडी तक मे यह धन्धा कर सकता है, इसलिए आर्थिक सकट उपस्थित होने पर इसके जरिये कुटुम्ब की फाकाकशी—भुखमरी टाली जा सकती है।

(७) हिन्दुस्तान की ग्रामपचायतो से—जो अब लगभग नष्टप्राय होचुकी है—गावो को जो लाभ मिलता था, इस धन्धे के जारी होने पर वह लाभ उन्हे फिर मिलनेवाला है।

(८) किसानो की तरह ही हाथ-करघे पर काम करनेवाले जुलाहो का भी यह—चरखा कातने का—धन्धा मुख्य आधार है। देश मे इस समय २० लाख करघे मौजूद है उसमे १८ लाख करघे चालू है और उस पर इस समय १ करोड आदमी अपना पेट भरते है, और ये ही हिन्दुस्तान के लिए आवश्यक कुल कपडे का एक चौथाई कपडा तैयार करते है।[१] ऐसी

१. एम. पी. गांधीकृत Indian Cotton Textile Industry Annual (१९४४) पृष्ठ ६४

स्थिति में हाथ-कते सूत का धन्धा ही इन जुलाहो के धन्धो को स्थायी और ठोस आधार पर कायम कर सकता है ।

(९) हाथ से सूत कातने के धन्धे का पुनरुद्धार होने से ग्राम्य-जीवन से सलग्न और तत्सम धन्धो को भी गति मिलेगी और इससे अधो-गति को पहुचे हुए गावो का बचाव होगा ।

(१०) हाथ मे सूत कातने का यह अकेला धन्धा ही हिन्दुस्तान के करोडो लोगो मे सम्पत्ति का न्यायपूर्ण बटवारा कर सकेगा ।

(११) किसानो की कुछ महीनो की बेकारी का ही नही, बल्कि रोजगार की तलाश मे इधर-उधर भटकते फिरनेवाले सुशिक्षित नौजवानो की बेकारी के प्रश्न को भी हाथ से सूत कातने का यह धन्धा ही हल कर सकेगा । यह काम इतना जबर्दस्त है कि इस आन्दोलन का सूत्र-सचालन अच्छी तरह होने के लिए देश के सब बुद्धिमान लोगो की शक्ति सघटित करनी होगी ।"

ये सब स्थूल लाभ हुए । इनके सिवा कुछ सूक्ष्म और मानसिक लाभ भी होते थे । श्रद्धा से और वस्त्र-स्वावलम्बन के उद्देश्य से सूत कातने की आदत डाल लेने के कारण स्वय अपने से दृढ निश्चय, एकाग्रता और कष्ट-सहिष्णुता आदि सद्गुण पैदा हो जाते है । इससे भी अधिक महत्त्व की बात यह है कि समय का महत्त्व अधिकाधिक प्रतीत होने लगता है । जिसे घण्टो चरखे पर सूत कातने की आदत पड गई है वह मनुष्य सहसा अपना समय व्यर्थ नही गवायेगा । किसी-न-किसी उपयुक्त व्यवसाय मे वह हमेशा सलग्न रहेगा । इसके सिवा अगर वह धार्मिक वृत्ति का मनुष्य हुआ तो कातते समय हमेशा आत्मनिरीक्षण करता रहेगा और इस तरह मन के विकार दूर कर सात्विक गुणो का विकास करने के लिए अहर्निश प्रयत्न करता रहेगा । सद्गुणो की वृद्धि और आत्मोन्नति की दृष्टि से चरखे से होनेवाले ये लाभ आर्थिक लाभ की अपेक्षा कुछ कम महत्त्व के नही है ।

३ दूसरे धन्धों से चरखे की तुलना

यहा यह आपत्ति की जा सकती है कि क्या चरखे के सिवा कोई और

दूसरा गृहोद्योग नही है, इसलिए अब इस पर विचार करना जरूरी है ।

चरखे के सिवा दूसरे बहुत से उद्योग-धन्धे है । गृह-उद्योगो मे (१) रेशम के कीड़े पालना, (२) मुर्गे, बतख और मछलियो की परवरिश (३) फल-फूल लगाना, (४) सिलाई, (५) टोकरिया बनाना, (६) बढईगिरी अथवा सुतारी (७) डेयरी अथवा दुग्धालय, और (८) हाथ के करघे आदि धन्धे बताये जाते है । इन धन्धो के होते हुए भी सिर्फ चरखा चलाने पर ही इतना जोर क्यो दिया जाता है ? क्या ये धन्धे चरखे की अपेक्षा अधिक लाभदायक नही है ?

इसपर हमारा साधारणतया यह उत्तर है

(१) ऊपर, सहायक धन्धे के रूप मे अनेक दृष्टियो से चरखे की जो उपयुक्तता और विशेषता बताई गई है, वह इन आठ धन्धो मे से एक मे भी नही है ।

(२) अन्न के बाद मनुष्य की दूसरी आवश्यकता वस्त्र की है, इस दृष्टि से देखने पर कातने का धन्धा सहायक धन्धा होते हुए भी आवश्यक है । क्योकि वह आज मरणासन्न स्थिति को पहुच गया है, इसलिए उसके पुनरुद्धार के लिए प्रयत्न किया जारहा है। उपरोक्त आठो धन्धो की ऐसी स्थिति नही है । ये सब धन्धे अभी तक जीवित है, उनका ह्रास नही हुआ है, इसलिए उनके पुनरुद्धार का प्रश्न ही उपस्थित नही होता ।

(३) ये सब धन्धे ऐसे नही है, जिन्हे सब कोई कर सके ।

इन सब धन्धो मे प्रत्येक मे क्या दोष है अब उस पर विचार करेगे ।

(१) रेशम के कीड़े पैदा करना

(१) जल-वायु की कुछ विशेष अनुकूलताओ मे ही ये कीडे पैदा होते है, इसलिए यह धन्धा सारे हिन्दुस्तान मे व्यापक होने योग्य नही है।

(२) रेशमी कपडा महगा होने से आम लोग उसे नही ले सकेगे।

(३) इस धन्धे मे हिंसा होने के कारण पापभीरु लोगो को वह त्याज्य लगेगा ।

(२) मुर्गे, बतख और मछलियों को पालना

(१) यह धन्धा भी ऐसा नही है, जिसे सब तरह के लोग कर सके। इसमे भी हिंसा है, इसलिए अहिंसक लोगो को यह त्याज्य लगेगा।

(२) हिन्दुस्तान मे बहुत से लोग केवल शाकाहारी है, इसलिए माग और खपत का नियम भी यहा लागू होता है। इसलिए सबके लिए यह ग्राह्य नही है। लोग शाकाहारी न हो तो भी इसके लिए आवश्यक माग नही रहेगी।

(३) मुर्गो और बतको मे छूत का रोग पैदा होनेपर आठ नौ घण्टे के अन्दर-अन्दर ही—उपचार करते-करते ही सब मर जाते है। ऐसी स्थिति मे इस धन्धे का विशेष लाभदायक हो सकना सम्भव नही है।

(३) फल-फूल पैदा करना

यह धन्धा भी ऐसा नही है जिसे सब लोग सब परिस्थितियो मे कर सके। इन फल-फूलो के बोने के लिए हरेक को जो थोडी बहुत जमीन और पानी की आवश्यकता होगी, वह कहा से लायगा ? यह सब मानकर चल सकते है कि फल खाद्य पदार्थ है, इसलिए उनका थोडा बहुत उपयोग अवश्य होगा। लेकिन फूल अगर आवश्यकता से अधिक पैदा हो तो उनका क्या खास उपयोग होगा, और इसमे लाभ भी कितना रहेगा ? इसके सिवा उनकी माग कहा से होगी ? गावो मे इन फूलो का ग्राहक कौन होगा ?

(४) सिलाई और (५) टोकरी बनाना

माग और खपत का नियम यहा भी लागू होने के कारण ये दोनो धन्धे भी ऐसे नही है, जिन्हे हर कोई कर सके। ऐसा अनुभव है कि एक बसोड़ दो गावो की टोकरियो की आवश्यकता पूरी कर सकता है।

(६) बढ़ईगिरी या सुतारी

(१) आबालवृद्ध सब स्त्री-पुरुषो से हो सकने योग्य यह धन्धा नहीं है।

(२) इसके सिवा सब लोग मेज-कुर्सी बनाकर बेचेगे कहा? इस्तैमाल कौन करेगा ? हिन्दुस्तान के गरीब-निर्धन लोगो के लिए उनका क्या उपयोग

होगा ? गाव की आबादी के लिहाज से साधारणतया एक ही बढई अपना पेट भर सकता है। अनुभव यह है कि इससे अधिक को वहा काम नही मिलता ।

(७) डेयरी या दुग्धालय

(१) यह धन्धा भी ऐसा नही है जिसे सब लोग कर सके । आबाल-वृद्ध स्त्री-पुरुषो के लिए इसमे स्थान नही है ।

(२) उत्पत्ति और खपत का नियम यहा भी लागू होता है। शहरो के सिवा गावो मे दूध के ग्राहक कहा से मिलेगे ?

इसके सिवा यह बात ध्यान मे रखनी चाहिये कि यद्यपि टोकरी बनाने का धन्धा बहुत थोडी पूजी पर चल सकता है, फिर भी दूसरे सब धन्धो के लिए तो कम-ज्यादा तादाद मे— कम-से-कम चरखे के लिए आवश्यक पूजी से अधिक तादाद मे—पूजी की आवश्यकता होगी ही,वह सब कहा से आयेगी ? साथ ही इन धन्धो के लिए जो कौशल की आवश्यकता होगी वह सब स्थिति के लोग कहा से पैदा कर सकेगे ? इन सब धन्धो मे कुछ समय तक उम्मेदवारी किये बिना प्रवेश हो सकना कठिन है । सब परिस्थिति के लोगो को यह तालीम कैसे मिल सकेगी ? एक बात यह और विचारने योग्य है कि इन धन्धो मे जितना श्रम पडता है उतनी मेहनत कातने के धन्धे मे नही पडती ।

इन सब दृष्टियो से उपरोक्त सात धन्धे सहायक धन्धे के रूप मे ग्राह्य नही ठहरते ।

(८) हाथ का करघा

अब रहा हाथ के करघे का धन्धा । हमेशा यह सवाल किया जाता है कि चरखे की अपेक्षा करघे पर मजदूरी अधिक मिलती है, ऐसी दशा मे महात्माजी चरखे के बजाय करघे की हिमायत क्यो नही करते ? इसलिए इस प्रश्न का उत्तर देना जरूरी है ।

पहली बात तो यह है कि करघे का धन्धा हमेशा मुख्य धन्धा ही समझा जाता है, क्योकि अकेले मनुष्य से यह धन्धा सधता नही है । उसके

लिए आदमियो की मदद की जरूरत होती है । अगर मदद करने वाले दूसरे आदमी नही तो जुलाहा अपनी इच्छानुसार जब चाहे तब करघे पर बैठकर बुन नही सकेगा । इसके सिवा इस धन्धे मे कला-कौशल की भी काफी आवश्यकता है, इसलिए आबालवृद्ध स्त्री-पुरुष वह कर नही सकते। साथ ही थोडी-बहुत पूजी की भी आवश्यकता होती ही है । सस्ते-से-सस्ता करघा बिठाने मे भी कम-से-कम पचास रुपये तो लग ही जायगे ।

कातने के धन्धे की तरह इस धन्धे का सार्वत्रिक हो सकना सम्भव नही है । हिन्दुस्तान मे आज २० लाख करघे है । अगर वे एक घण्टे मे कम से-कम आधा गज के हिसाब से एक दिन मे चार गज कपडा बुने, तब वर्ष मे काम करने के ३०० दिन गिनने पर भी वे हिन्दुस्तान के लिए आवश्यकता मे से २४० करोड गज कपडा तैयार कर सकेगे । आज के भाव से हिसाब करने पर उन्हे अधिक-से-अधिक बारह आने से एक रुपया रोज तक मजदूरी पडेगी । अवश्य ही इस मजदूरी मे जुलाहे के परिवार के लोगो का भी हिस्सा होगा, क्योकि वे लोग उसके काम मे मदद करते है । इस हिसाब से उपरोक्त आमदनी को परिवार के सब लोगो पर बांटा जाय तो वह और भी कम ठहरती है, इसके सिवा यह हिसाब लगाते समय यह मानकर चला गया है कि विदेशी कपडे का बहिष्कार पूर्णत सफल हो गया है और देशी मिले अपनी उत्पत्ति अधिक नही बढावेगी । मतलब यह कि मौजूदा जुलाहे ही सारे हिन्दुस्तान के लिए फी आदमी २८ गज के हिसाब से मिलो की उत्पत्ति के अतिरिक्त लगने वाला आवश्यक कपडा बुन सकते है । ऐसी दशा मे सब लोगो से इस धन्धे को करने के लिए कहा जाय तो आवश्यकता की अपेक्षा उत्पत्ति अधिक होगी और राष्ट्र के सामने उस को ठिकाने लगाने का एक जबर्दस्त प्रश्न खडा हो जायगा । दूसरे शब्दो मे यो कहना होगा कि उत्पत्ति के अधिक होने पर बेकारी फिर बढ जायगी, और इस तरह जिस बात को हम टाल सकते थे, वही हमारे सिर चढ बैठेगी !

मिल का सूत और हाथ के करघे की बुनाई

अगर बुनकर या जुलाहे का धन्धा सार्वत्रिक हो गया तो उसकी सूत

को आवश्यकता की पूर्ति कहा से होगी ? अगर मिलो से यह आवश्यकता-पूर्ति की जाय तो बुनकरो को सर्वथा उन्ही पर अवलम्बित रहना पडेगा और मैदान मे अपना कोई प्रतिस्पर्धी न देखकर मिले अपनी मर्जी के मुताबिक सूत का भाव बढाकर जुलाहो को जितना भी सम्भव हो सकेगा महगा बेचेगी । इसके सिवा, जुलाहे जिस नमूने का कपडा बुनेगे खुद मिले भी उसी नमूने का कपडा बुनने लगेगी,—बुनने लगी भी है । उदाहरणार्थ महाराष्ट्र की ओर सूती जनानी साडिया बुनने मे उन्होने सफलता प्राप्त की है । इन हाथबुनी साडियो की माग दिन-पर-दिन अधिक बढती जाती है। इन के बुनने वाले जुलाहे इधर-उधर मिल के सूत पर अवलम्बित रहने लगे थे। नतीजा यह हुआ कि उन्हे वह सूत अब बहुत महगा मिलने लगा, जिससे अब उस धन्धे मे कोई खास मुनाफा नही रहा ।इस सङ्कट के कारण हजारो जुलाहो को अपना वह धन्धा छोडना पडा है। सूत के सम्बन्ध मे मिलोपर अवलम्बित रहने के कारण उन पर यह आपत्ति आई ।

चरखा और हाथ-करघा, ये धन्धे परस्पर पूरक है, जबकि मिल के सूत और हाथ के करघे मे परस्पर स्पर्धा है। सूत की आवश्यकता पूर्ति के लिए मिलो पर अवलम्बित रहकर सिर्फ बुनाई के काम मे मिलो को मात देना स्वभावत. ही असम्भव है । मिल का सूत लेकर हाथ-करघे पर उसका कपडा बुनना और उसको उसी नम्बर के सूत के मिल के कपडे की अपेक्षा सस्ते भाव मे बेचने का प्रयत्न करना ऐसा ही है जैसा कि दूसरे के कधे पर चढकर उससे आगे दौडने का प्रयत्न करना ।

मिल का सूत और हाथ-करघे की बुनाई के हिमायती लोग यह समझते है कि—

(१) मिलो को अपने सूत का कपडा बुनकर बेचने की अपेक्षा सूत बेचने मे अधिक मुनाफा रहता है ।

(२) मिले हाथ के करघो की सुविधा के लिए ही सूत तैयार करती है । सन १९०० मे १९३ मिले थी और उनमे ५ लाख तकुवे थे । मशीन करघे सिर्फ ४० हजार ही थे । अब १९४४ मे मिलें ४०५ तक बढ गई है।

उनमे तकुवो की सख्या १० लाख याने पहले से दुगुनी है । लेकिन करघो का सख्या २ लाख तक बढी है । यानी पाच गुनी बढी । ऐसी हालत मे बुनकरो को मिल का सूत कैसे मिलता रहेगा।

(३) हाथ-करघो के बुनकर जिस तरह का कपडा बुनेगे, मिले उस तरह का कपडा नही बुनेगी ।

लेकिन उनके ये तीनो ही मुद्दे कमजोर है ।

(१) अपना सूत बेचने की अपेक्षा मिलों का उसका कपडा तैयार कर बेचना अधिक लाभप्रद होता है ।

(२) अपने खुद के स्वार्थ के लिए मिले खडी की जाती है । हाथ-करघे की सुविधा अथवा लाभ का खयाल उनके विचार-क्षेत्र मे नही आता ।

(३) अनुभव से यह बात गलत सिद्ध हुई है कि मिले, कुछ थोड़े से खास नमूनो को छोडकर, हाथ-करघो के बुनकर जिस तरह का कपडा बुनते है वैसा कपडा नही बुनेगी ।'

साराश यह कि इस बात को खुद जुलाहे स्वीकार करते है कि मौजूदा जुलाहो को अगर जीवित रहना हो तो उन्हे हाथ के कते सूत का पल्ला पकडना चाहिए । उसीमे उन्हे लाभ है और इस दृष्टि से देखने पर हाथ से सूत कातने के धन्धे ही सार्वत्रिक हो सकना सम्भव है,क्योकि एक जुलाहे को दस कतवारियो के सूत की आवश्यकता होता है । मिल का सूत और हाथ-करघे की बुनाई की हिमायत करनेवालो को यह बात खास तौर पर ध्यान मे रखनी चाहिए कि जुलाहे अगर मिलो के सूत पर अवलम्बित रहे तो वे खुद तो बेकार होगे ही, साथ-ही उनका यह कार्य देश की करोडो कत्तिनो के पेट पर लात मारने के समान होगा ।

(४) कुछ गलतफहमी का निराकरण

कुछ लोग यह पूछते है कि महात्माजी बार-बार जो यह कहते है कि सूत कातो, सूत कातो, तब क्या इसका मतलब यह है आजीविका का

१. Indian Cotton Textile Industry annual, 1944 पृ० १०४-५

धन्धा छोडकर चरखा कातने बैठे ? इसका सहज उत्तर यह है कि महात्माजी ने कभी प्रतिपादित नही किया कि लोग दूसरे धन्धे छोडकर चरखा कातने बैठे। सूत कातने को सहायक धन्धा[1] मानकर ही महात्माजी ने उसकी हिमायत की है।

अगर हिन्दुस्तान कृषि-प्रधान देश न होता, यहा रुई पैदा न होती, कपडे के लिए प्रतिवर्ष करोडो रुपये विदेश को न जाते होते, देश को अधिक कपडे की जरूरत न रहती किसानो के वर्ष मे कम-से-कम तीन-चार महीने बेकारी और आलस्य मे न बीतते होते, चरखा चलाने की परिपाटी न होती, चरखे की ऐसी बनावट न होती जिससे कि बालक से लेकर बूढे तक स्त्री-पुरुषो के लिए उसपर काम करना सुलभ और सुसाध्य होता, और शरीर-सरक्षण के लिए कपडे की अनिवार्य आवश्यकता न होती तो 'चरखे और खादी' पर महात्माजी ने इतना तूमार न बाधा होता। कल्पना कीजिए कि हिन्दुस्तान मे प्रतिवर्ष बाहर से जो माल आता है, उसमे बिस्कुटो पर राष्ट्र का अधिक से-अधिक पैसा विलायत को जाता, हिन्दुस्तान के लोग घर पर भोजन बनाना छोड़कर बाजार से विलायती बिस्कुट लाकर खाने पर टूट पडे होते तो उस दशा मे महात्माजी ने इसी बातपर जोर दिया होता कि हिन्दुस्तानियो को घर-घर चूल्हे की प्राण-प्रतिष्ठा कर अपने खेत अथवा तहसील, जिला, प्रान्त एव देश मे उत्पन्न हुए गेहू के ही बिस्कुट तैयार करके खाने चाहिए। देश की विशेष परिस्थिति का सब दृष्टियो से विचार करने के बाद ही गाधीजी ने चरखे और खादी की हिमायत की है।

गाधीजी की विचार-सरणी स्पष्ट है। राष्ट्र की वर्तमान परिस्थिति मे खादी का पुनरुद्धार करने के बजाय कोई दूसरी बात करना आवश्यक होता तो महात्माजी ने उसके लिए भी उतना ही भगीरथ प्रयत्न किया होता। उदाहरणार्थ अगर राष्ट्र ने ज्वार-बाजरा खाना छोडकर स्काटलेण्ड से 'ओट' अथवा रूस से 'राय' नामक अनाज मगाना शुरू कर दिया होता तो महात्माजी कहते—"मै राष्ट्र के—जनता के—रसोईघरो मे घुसकर उसकी (राष्ट्र की)

१. देखिए 'यंग इण्डिया' भाग १ पृष्ठ ५२३

शक्तिभर भर्त्सना करूगा, वहा धरना लगाकर बैठ जाऊगा और लोगो को अपने हृदय की वेदना सुनने के लिए बाध्य करूगा।" अभी हाल के जमाने मे इस तरह बाते हुई है। गत महायुद्ध के समय राष्ट्रो ने अपनी जनता पर यह पाबन्दी लगाकर कि उसे अमुक प्रकार की ही फसल बोना चाहिए, उसके खान पान पर नियन्त्रण लगाया था।[1]

प्रत्येक राष्ट्र को अपनी-अपनी स्थिति देखकर कार्य करना पडता है। "महायुद्ध के समय इग्लैण्ड और अमेरिका के राष्ट्रो को जितने भी आदमी मिलना सम्भव था उन सबको जहाज बनाने के काम मे लगा दिया गया और लोगो ने अत्यन्त आश्चर्यजनक गति से वह काम पूरा करके दिखा दिया।" महात्माजी कहते है—"मुझे अपनी इच्छानुसार काम करने की सुविधा हो तो जो कोई भी भारतीय सज्जन मुझे मिले मै हरेक को कातना अथवा बुनना सीखने पर मजबूर करूगा और दिन के कुछ विशेष समय तक राष्ट्र के लिए काम करने मे लगाऊगा। स्कूल-कालेज बनी बनाई सुसगठित इकाइया है, इसलिए मै वही से शुरुआत करता।"[2]

इस सारे विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि गाधीजी ने हिन्दुस्तान की गरीबी, अकाल और बेकारी की हालत मे क्यो चरखे को ही सहायक धन्धे के रूप मे ढूढ निकाला और किस तरह बालक से लेकर बूढे तक सब स्त्री-पुरुष अपने फुरसत के समय मे उसे कर सकते है।

१. 'यग इण्डिया' भाग २ पृष्ठ ४७६

२ 'यंग इण्डिया' भाग १, पृष्ठ ४८६। इसी विचारसरणी पर 'वर्धा-शिक्षण-पद्धति' का निर्माण हुआ है।

: ६ :

खादी और मिलें

"मिलों की काफी वृद्धि होने पर भी वे भारत की दरिद्रता के प्रश्न को हल कर नही सकतीं"[१]—गाधीजी

इस अध्याय मे हमे इस बात पर विचार करना है कि राष्ट्र के आत्यन्तिक कल्याण की दृष्टि से किस प्रकार मिलो की अपेक्षा चरखा ही अधिक श्रेष्ठ है।

मिल और चरखे का विचार करते समय नीचे लिखी बातो को पहले ध्यान मे रखकर फिर आगे बढना चाहिए

(१) हिन्दुस्तान ससारभर मे सबसे अधिक निर्धन राष्ट्र है,

(२) हिन्दुस्तान कृषिप्रधान राष्ट्र है और उसकी ८९ फीसदी जनता गाव मे रहनेवाली है, और

(३) गावो मे रहनेवाली इस खेतिहर—किसान—जनता को वर्ष मे कम-से-कम चार महीने कुछ काम नही मिलता।

पहले आर्थिक दृष्टि से मिलो का विचार करे। एक मिल जारी करना हो तो लगभग १८ से २० लाख तक रुपये खर्च पडता है। बारह-तेरह लाख रुपये तो सिर्फ मशीनो के भारतीय तट पर उतारते ही लग जाते है। इमारतो का खर्च इससे अलग है। हिन्दुस्तान मे यद्यपि पहली मिल सन् १८१८ मे स्थापित हुई थी, फिर भी इस सम्बन्ध मे असली शुरुआत सन् १८५१ मे ही हुई। तब से लेकर सन् १९४४ के अगस्त के अन्त तक ९३ वर्ष की अवधि मे हिन्दुस्तान मे कपडे की कुल ४०५ मिले काम करने लगी है।

इन मिलो की उत्क्रान्ति का इतिहास मनोरञ्जक और बोधप्रद है। नीचे के अको से यह स्पष्ट दिखाई देगा कि इन मिलो के जारी करने में

१ 'यग इंडिया' भाग १, पृष्ठ ४८६

अपने देश के पूजीपतियो का साहस जिनता कारणीभूत हुआ है उससे कही अधिक लोगो की बढती हुई स्वदेशी की भावना किस प्रकार सहायक रूप हुई है :

सन्	नई मिले	सन्	नई मिले
१८७६ से १८८०	९	१९११ से १९१५	६
१८८१ से १८८५	३१	१९१६ से १९२०	१६
१८८६ से १८९०	५०	१९२१ से १९२५	८४
१८९१ से १८९५	११	१९२६ से १९३०	३
१८९६ से १९००	२५	१९३१ से १९३५	१७
१९०१ से १९०५	२४	१९३६ से १९४०	२३
१९०६ से १९१०	६६	१९४१ से १९४४	१७

इन अङ्को से चतुर पाठको के ध्यान मे यह बात तुरन्त ही आ जायगी कि जब राष्ट्रीय आन्दोलन का पारा ऊचा चढता था तभी मिलो मे वृद्धि हुई है । सन् १८८५ मे काग्रेस स्थापित हुई, १८९६ मे लोकमान्य तिलक आदि राष्ट्रीय नेताओ पर राजद्रोह के मुकदमे चले, १९०५ मे बङ्ग-भग का, १९२१ मे असहयोग का और १९३०-३१ मे सविनय कानून भग का आदोलन चला । पाठक देखेगे कि जब-जब ये जोरदार आदोलन चले,तब-तब पूजीपतियो को मिलो की वृद्धि करने का पूरा मौका मिला है ।[१]

इन मिलो मे अगस्त सन् १९४४ के आखिर तक ५२,७२,००,००० रु० की पूजी लगाई गई, जिससे इनमे १०,१९,७०० तकुवे और २,०२,००० करघे चलते है और सिर्फ ५०४,००० मजदूरो को काम मिलता है ।[२]

इस पर से हम यह देख सकते है कि—

(१) कपडे की मिले स्थापित करने मे भारी पूजी की आवश्यकता होती है,

१. Indian Cotton Textile Industry Annual १९३७ पृ० १००

२. ,, ,, ,, ,, १९३८ पृ० २४

(२) हिन्दुस्तान की जनसख्या को ध्यान मे रखते हुए, इस धन्धे मे बहुत कम मजदूरो को काम मिल सका है, और

(३) इन मजदूरो को जो मजदूरी मिलती है उसका अगर कुल मिला कर विचार किया जाय तो वह बहुत कम ठहरती है; मजदूरो की अपेक्षा पूजी लगाने वाले, सयोजक और दलालो की सख्या बहुत कम होते हुए भी उनकी आय कई गुना अधिक होती है।

इसके विपरीत, नीचे दिये हुए विवरण से प्रतीत होगा कि चरखे और खादी मे पूजी कम लगती है, यह धन्धा करोडो लोगो को काम दे सकता है और इस मे दी जाने वाली कुल मजदूरी की तादाद बहुत है और पूजीपतियो और दलालो को रक्त-शोषण का मौका नही मिलता।

हिन्दुस्तान की मिलो के युद्ध-पूर्व काम का दस वर्ष का औसत निकाला जाय तो हम यह देखेगे कि कपडे की कीमत पर करीब छ फीसदी 'ब्याज' के तौर पर दिया जाता है। हिस्सेदार (शेअर-होल्डर्स) और मैनेजिग एजेण्ट्स आदि दूसरे लोगों को 'नफे' के नाम से जो रकम दी जाती है, वह करीब आठ रु० सैकडा होती है। खादी के काम पर देख-रेख रखने के लिए जितने आदमियो की जरूरत होती है, उनकी अपेक्षा मिलो के काम की देख-रेख रखने के लिए आदमियो की सख्या तादाद मे कही ज्यादा होती है। व्यवस्था का नाम लेकर सिर्फ व्यवस्थापक को ही करीब पाच फीसदी रकम दी जाती है। मिलो के मजदूरो को मजदूरी के नाम पर कपडे की कीमत का करीब बीस सैकडा दिया जाता है। कोयला और दूसरी वस्तुओ का किराया, ब्याज और मुनाफे आदि मे बारह फीसदी और मशीनो की घिसाई आदि के नाम पर चार फीसदी खर्च होता है।

इसके विपरीत खादी के काम मे ब्याज तो सर्वथा उपेक्षणीय होता है। नफे के लिए बहुत कम मौका मिलता है, क्योकि खादी जहा तैयार होती है वही उसे खपाना पडता है और जैसे-जैसे तैयार होती है, वैसे-वैसे ही खपानी पडती है, इसलिए बहुत कर भाव मे चढाव का मौका नही रहता और इसलिए नुकसान का धोखा भी कदाचित ही रहता है। उत्पत्ति-केन्द्र की व्यवस्था

पर खर्च बहुत कम होने के कारण मजदूरी के रूप मे ७० फीसदी रकम कारीगरो के हिस्से मे आ जाती है। खादी के उपकरण चरखे आदि की मामूली दुरुस्ती तो उस पर काम करने वाले लोग खुद ही कर लेते है। उसमे कोई खास बिगाड हो जाय तो गाव के सुतार-लुहार से वह ठीक कराया जा सकता है। उसके लिए जो मजदूरी देनी पडती है वह कुछ आनो से ज्यादा नही होती।

अभी हिन्दुस्तान की मिले करीब १२५ करोड रुपये का कपडा तैयार करने लगी है। इसमे से मजदूरी के रूप मे सिर्फ पचीस करोड रुपये ही जाते है। इसके विपरीत अगर १२५ करोड रुपये की खादी तैयार की जाय तो उसमे से ८५ करोड रुपये मजदूरी के रूप मे बाटे जायगे। १२५ करोड रुपये का कपडा तैयार करने के लिए जितनी रुई काम मे लाई जाती है, उतनी रुई की खादी तैयार की जाय तो खादी का मौजूदा भाव ही कायम रहेगा यह मानकर चलने पर वह २७५ करोड रुपयो मे बिकेगी और इन २७५ करोड मे से १९० करोड रुपये मजदूरो को मजदूरी के रूप मे चुकाये जायगे।

फिर मिलो के मजदूरो को जो २५ करोड रुपये बाटे जायगे वे सिर्फ पाच लाख लोगो मे ही बाटे जायगे। हरेक मजदूर को डेढ रुपया रोज मिलेगा। लेकिन खादी के मजदूरो को मजदूरी के रूप मे जो १९० करोड रुपये बाटे जायगे। वे उन लोगो मे बाटे जा सकते है, जिनको वर्ष मे चार महीने काम नही मिलता। शहरो मे मिल के मजदूरो को मिलने वाली मजदूरी मकान-किराया, ब्याज, मुनाफा आदि के रूप मे फिर शहरी लोगो मे ही बट जायगी, लेकिन खादी के कारीगरों को मिलने वाली मजदूरी गाव-की-गाव मे ही रह कर उसके जरिये वहा के जुदा-जुदा धधे वाले लोगो का पोषण होता रहेगा।

मिले हिन्दुस्तान के सिर्फ ५ लाख लोगो को ही काम देती है। मान लीजिए कि मिलो के व्यवसाय मे लगे हुए मजदूरो के सिवा हिन्दुस्तान मे जितने मजदूर है, उन सबको मिलो मे काम दिया जाय तो हिन्दुस्तान मे

एक वर्ष म इतना कपडा तैयार होगा कि वह सारे ससार के लिए कई वर्षों के लिए काफी होगा। अगर हिन्दुस्तान इम अतिरिक्त कपडे को दूसरे राष्ट्रो पर लादने मे सफल हुआ तो दूसरे राष्ट्रो के करोडो लोग बेकार हो जायगे और उन्हे अन्न तक के लाले पडने लगेगे। बलवान राष्ट्र, दूसरे राष्ट्रो पर अपना माल लादने के इस अधिकार का प्रयोग अपने हाथ मे रखने के लिए दौड-धूप करते है। दूसरे देशो पर अधिकार, उपनिवेशो का विस्तार, अन्तर्राष्ट्रीय चढा-ऊपरी, युद्ध और उपरोक्त दौड-धूप इनमे कभी भी अन्तर नही किया जा सकेगा। मिलो द्वारा की गई कपडे की उत्पत्ति एक राष्ट्र के कुछ प्रान्त और कुछ व्यक्तियो के जीवन को ही खतरे मे नही डालती, बल्कि वह अनेक राष्ट्रो के सुख, स्वातन्त्र्य, सुरक्षितता और प्रामाणिकता को भी कम कर देती है।[1]

मिलो से आज जो सूत निकलता है वह औसत १८-२० नवम्बर का होता है। अगर इसी नम्बर का सूत चरखे पर काता जाय और प्रत्येक चरखा प्रतिदिन आठ घण्टे जारी रखा जाय तो प्रत्येक चरखे पर प्रतिदिन कम-से कम आठ तोले सूत निकलेगा। और वर्ष मे काम के सिर्फ ३०० दिन गिने जाय तो इस हिसाब से वर्ष के अन्त मे ६० पौण्ड सूत तैयार होगा। अगर सूत १०-१२ नम्बर का काता जाय तो १०० पौण्ड निकलेगा। लेकिन अगर मिल के सूत से तुलना करनी हो तब उस मिल के सूत को २८ नम्बर का मानकर चलने पर अभी हिन्दुस्तान की ४०५ मिलो मे करीब-करीब ९३ करोड रुपये खर्च करके जो १,६८,०४,६३,०००पौण्ड सूत निकलता है,उसका सूत आठ घण्टे के दिन के औसत से वर्ष के ३०० दिन काम करने पर २ करोड ८० लाख ७ हजार ७१७ चरखे निकाल सकेगे। अगर यह मानकर चले कि सब चरखे नये ही चलाने पडेगे—वास्तव मे ऐसा मानने का कोई कारण नही है, क्योकि आज भी देश मे जगह-जगह पर चरखे मौजूद है—तो भी मिलो पर अभी तक जो ५३ करोड रुपये खर्च हुए उसका दसवा भाग अर्थात् ५⅓ करोड रुपये भी इसमे नही लगेगे।

१ गुलजारीलाल नदा कृत 'खादी के कुछ पहलू' अध्याय २

मि० एर्नो पियर्स का मत है कि इस समय देश मे ५ करोड चरखे मौजूद है।[१] लेकिन श्री एम० पी० गाधी का मत है कि उक्त सख्या अतिशयोक्तिपूर्ण है। उनके अनुमान मे देश मे चरखो की तादाद ५० लाख है। अगर यह मानकर भी चले कि यह दूसरी सख्या ठीक है तो भी ऊपर जो यह अनुमान किया गया है कि चरखे जारी करने मे ५। करोड रुपये लगगे, उसमे परिवर्तन करना जरूरी नही दीखता।

ऊपर के हिसाब मे हम यह कह आये है कि प्रतिदिन आठ घण्टे के हिसाब से दो करोड ८० लाख चरखे चलने चाहिए। ऊपर यह भी दिखाया जा चुका है कि अपने देश मे खेती पर काम करनेवाले लोगो के पास वर्ष मे औसत ४ महीने कुछ काम नही रहता। इनमे से अगर हरेक प्रतिदिन ४ घण्टे काम करे तो भी सिर्फ चार महीने मे ही देश के लिए आवश्यक सारा सूत सहज ही तैयार हो जायगा।

इस विवेचन से कोई यह न समझ बैठे कि इस समय मिलो का हम विरोध करते है। हम तो सिर्फ इतना कहना है कि—

"खादी और मिलो मे स्पर्धा नही होना चाहिए और शुद्ध दृष्टि से विचार किया जाय तो स्पर्धा है भी नही।

"चरखा करोडो लोगो का गृह-उद्योग—घरेलू धन्धा—और जीवन का आधार है। अगर मिलो का धन्धा इस तरह चला अथवा चलने दिया गया जिससे कि उसके चरखे का नाश हो जाय तो यह मानना होगा कि मिलो का यह धन्धा करनेवाले और उसे चलने देनेवाले लोकहित का विचार नही करते।

"इस विचार-सरणी का ध्यान मे रखने पर अगर मिले कायम रहनी है तो उनका क्षेत्र चरखे के क्षेत्र के बाहर रहना चाहिए। अर्थात करोडो लोग जिस तरह का सूत कात और बुन सकते है, मिलो को वैसा सूत और कपडा तैयार करने की मनाई होनी चाहिए।"[२]

१. Tariff Board 1932

२. किशोरलाल मशरूवाला कृत 'गाधी-विचार-दोहन' द्वितीय सस्करण पृ० १५८

महात्माजी कहते हैं—"मिलों की संख्या में कितनी ही वृद्धि क्यों न हो, वे हमारी दरिद्रता की समस्या को हल नहीं कर सकतीं, हमारा जो रक्त-शोषण हो रहा है, उसे रोक नहीं सकतीं और हमारी झोपड़ियों में १२५ करोड़ रुपये नहीं बाँट सकतीं। वे केवल सम्पत्ति का और मजदूरों का केन्द्रीकरण करती हैं और इससे 'एक तो बन्दर स्वभाव से ही चंचल और ऊपर से उसे पिला दी शराब' ऐसी स्थिति हो जाती है।"[1]

अब सामाजिक और नैतिक दृष्टि से इन मिलों पर नजर डालिए—

"गति बढ़ानेवाली, बड़े परिमाण में काम करनेवाली, श्रम बचानेवाली, श्रम का विशेषवर्गीकरण करनेवाली पाश्चात्य आर्थिक पद्धति ने—मशीनों ने—व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन का बहुत नुकसान किया है; क्योंकि शहरों में घनी बस्तियों में, चालों में रहने और मिलों में कई घण्टे काम करने से स्वास्थ्य पर बुरा असर होता है। शहर में इस तरह का जीवन बिताना पड़ता है, इस कारण गाँव में बिताये गये जीवन में खण्ड पड़ता है। इसके सिवा बेकारी, हड़ताल, पूँजीपति और मजदूरों के बीच बढ़ते जाने वाला खिंचाव और व्यापार के सम्बन्ध में एक दूसरे राष्ट्र के बीच बढ़ती जानेवाली प्रतिस्पर्धा और युद्धों के कारण व्यक्तियों और समाज की अत्यन्त हानि हुई है।"[2]

लंकाशायर और यॉर्कशायर के स्त्री-पुरुषों को मशीनें राक्षस के समान प्रतीत होती हैं। मशीनों ने उनकी सारी कल्पना-शक्ति और कुशाग्र-बुद्धि को नष्ट कर दिया है। जबसे इस प्रचण्ड शक्ति ने उनके जीवन में प्रवेश किया है, तभी से उनके प्रचलित व्यवहार, उनकी स्वतन्त्रता और उनके कौटुम्बिक एवं गार्हस्थिक सम्बन्ध नष्ट हो गये हैं और पुरुष और स्त्री के नाते उनका वैभव और शील भ्रष्ट हो गया है।"[3]

१. "यंग इण्डिया" भाग १ पृ० ५८६

२. ग्रेग "Economics of Khaddar" पृ० २५५

३. तालचेरकृत "Charkha Yarn" पृ० ६०–६१ में श्रीमान् और श्रीमती हेमण्ड

श्री विपिनचन्द्र पाल पश्चिमी देशो मे घूमे हुए सुप्रसिद्ध भारतीय थे, उन्होने पश्चिमी देशो की प्रत्यक्ष स्थिति खुद अपनी आखो से देखी थी। वह लिखते है—

"युनाइटेड किंगडम (इग्लैण्ड, स्काटलैण्ड, वेल्स और आयलण्ड) और अमेरिका के औद्योगिक केन्द्रो क निरीक्षण करने पर मन पर यह दुखदायक छाप पडे बिना नही रहती कि आधुनिक औद्योगिक पद्धति के कारण मानव शरीर, मन और आत्मा का नाश हो गया।"[1]

विपिन बाबू उपरोक्त एक ही निर्णय करके चुप नही रह गये। वह एक भय की सूचना भी देते है—

"अपनी सस्कृति और शील मे नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से जो उत्तमोत्तम वस्तु है अगर हमे उसकी रक्षा करनी है तो आधुनिक पूजीपतियो के औद्योगिक हमलो का जोरो से प्रतिकार करना चाहिए।"[2]

ऊपर के सारे विवेचन से यह स्पष्ट दिखाई देता है कि—

(१) चरखे के जरिये हिन्दुस्तान के बेकारो को काम मिलकर उनकी व्यर्थ जानेवाली शक्ति का उपयोग होता है, और

(२) चरखा और मिलो के लिए आवश्यक मशीनो के उपयोग मे आने के पहले और उनके तैयार होने पर उनके ढोने, उन्हे ठिकाने पर बैठाने अथवा फिट करने, चलाने और दुरुस्त करने आदि मे कितनी सूर्य-शक्ति खर्च होती है, इस एजीनियरी की दृष्टि से,

(३) मिलो के मजदूरो को मजदूरी के रूप मे कपडे की कीमत मे से सिर्फ २० फीसदी मिलता है, लेकिन खादी की कीमत मे से मजदूरो के हिस्से मे ७० फीसदी आता है, इस आर्थिक दृष्टि से,

(४) चरखे से आरोग्य और शील की रक्षा होती है, इस नैतिक दृष्टि से,

१ "New Economic menace to India" पृ० २१३
२ ,, ,, पृ० २१८

(५) चरखा वस्त्र-स्वावलम्ब का साधन है, इस दृष्टि से,

(६) चरखे के कारण पैसे का समान बटवारा होकर समाज मे सर्वत्रसन्तोष फैलता है और समाज की अस्त-व्यस्त हुई स्थिति सुधरती है, इस सामाजिक दृष्टि से, और

(७) चरखे में सन्निहित तत्व और परम्परा का समष्टि रूप से विचार करते हुए भारतीय सस्कृति की दृष्टि से मिलो की अपेक्षा चरखा ही अधिक श्रेष्ठ सिद्ध होता है।

पश्चिमवासी और उनका अन्धानुकरण करने वाले दूसरे लोग मशीनो की सिर्फ बाहरी और ऊपर-ऊपर दीखनेवाली उपयोगिता की तरफ ही ध्यान देते है, लेकिन पूर्वीय लोग किसी वस्तु का समाज, राष्ट्र और संस्कृति पर क्या परिणाम होता है, और समाज का स्वास्थ्य तथा स्थैर्य किस बात मे है, इसका दीर्घ दृष्टि से विचारकर उसकी उपयोगिता—अनुपयोगिता का निश्चय करते है। पूर्वीय लोग प्रत्यक्ष लाभ की तरह अप्रत्यक्ष लाभ और हानि पर ध्यान देते है। यह बात नही है कि हमारे पुर्वजो को मशीने बनाना न आता हो। महात्माजी कहते है—

"सब लोग अपना-अपना व्यवसाय करते थे और प्रचलित पद्धति के अनुसार मजदूरी लेते थे। यह बात नही है कि हमारे पूर्वज यत्रो का आविष्कार नही कर सकते थे, बल्कि उन्होने देखा कि यत्रो आदि के जाल मे फसकर लोग गुलाम ही बनेगे, और नीति-धर्म को छोड देगे। विचार करके उन्होने यह कहा कि अपने हाथ-पैरो से जो किया जा सके वही किया जाय। हाथ-पैरो का उद्योग करने मे ही सच्चा सुख है। उसी मे आरोग्य है।"[1]

यहा तक मिलों और चरखो का विचार कर हमने देखा कि राष्ट्र के आत्यन्तिक कल्याण की दृष्टि से किस प्रकार चरखा मिल की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है। इसके सिवा यह भी दिखाई देता है कि "कला-कौशल की दृष्टि से भी चरखे और हाथ के करघे का स्थान श्रेष्ठतर है।

दूसरे अध्याय मे यह हम देख ही चुके है कि कला-कौशल की दृष्टि

१ हिन्द स्वराज्य

से विचार करने पर चरखे पर कितना बारीक सूत निकलता है। आज भी एकाध कारीगर चरखे पर ५०० नम्बर का सूत निकाल सकता है। लेकिन उसी अध्याय मे हम यह भी देख चुके है कि क्लेअर आदि अग्रेज यन्त्र-कला-विशारदो ने स्वीकार किया है कि चाहे जैसी मशीन की योजना करने पर भी उसपर ५०० नम्बर का सूत नही निकलेगा।

"चरखे और हाथ के करघे पर काम करने पर कारीगरो को अपना हस्त और बुद्धि-कौशल दिखाने का जैसा मौका मिलता है, वैसा मशीनो पर काम करते हुए नही मिलता।"[1] "कुछ तरह के और दरजे के कपडे ऐसे भी है जिनके लिए हाथ के करघे की होड मिल का करघा न तो करता है, न सफलता-पूर्वक कर सकता है।"[2] मद्रास-सरकार के बुनाई-कला के विशेषज्ञ श्री अलमसाद कहते है—"विवाह और दूसरे मागलिक कामो के समय उच्च वर्ण की हिन्दू-स्त्रिया विशेष रूप से अत्यन्त सुन्दर नयन-मनोहर, जरी के बेल-बूटे और भाति-भाति के जरी के किनारेवाली उत्तम साडिया भी पहनती है। ये कपडे साधारण यन्त्र-बल (मशीनो) से चलनेवाले करघो मे बन ही नही सकते।"[3]

छोटे-छोटे उद्योग-धन्धो मे लगे हुए कारीगरो का कौशल नष्ट न होने देने के सम्बन्ध मे प्रिन्स क्रोपाटकिन ने जो चिन्ता प्रकट की है वह प्रशसनीय है। वह कहते है—छोटे-छोटे उद्योग-धन्धो की विचित्रता और उनमे लगे हुए कारीगर लोगो का कौशल और शोधक-बुद्धि देखकर कुतूहल-सा मालूम होता है। लेकिन यहा यह प्रश्न बरबस उत्पन्न होता है कि उत्पत्ति की अधिक कार्यक्षम योजना मे इस सारी बुद्धिमत्ता और कलाकुशलता का उपयोग करके उन्हे प्रगति का नूतन और सजीव उद्गम स्थान बनाया जाय अथवा मिलो की रगडपट्टी मे उन्हे कुचल दिया जाय ? क्या कारीगरो की

१ वी० ए० तालचेर कृत, "Charkha Yarn"; साथ ही ग्रेग कृत "Economics of Khaddar" पृ० ३९

२. ग्रेग "Economic of Khaddar" पृ० ३८

३. " " " " पृ० ३९—४०

स्वतन्त्रता और शोधक-बुद्धि मिलो के सपाटे मे नष्ट करनी ही चाहिए ? वह नष्ट होगई तो मानव-प्राणियो का अध्ययन करनेवाले अर्थ-शास्त्रज्ञों के मतानुसार क्या उस स्थिति मे वह देश की प्रगति का सूचक होगा।"[१]

क्या प्रिन्स क्रोपाटकिन का यह प्रश्न अर्थ-शास्त्रज्ञो की विचार-शक्ति को गति देने वाला नही है ? अस्तु।

अब टिकाऊपन की दृष्टि से विचार करेगे। 'ससार मे हाथ के व्यवसायो का स्थान' शीर्षक परिशिष्ट नम्बर २ मे हमे दिखाई देगा कि स्काटलैण्ड की हैरिसट्वीड कम्पनी के हाथ के करघे के माल की जो इतनी ससारव्यापी प्रसिद्धि हुई है इसका कारण उसका टिकाऊपन है। लेकिन यह तो हुई स्काटलैण्ड की बात। स्वय हिन्दुस्तान का भी अनुभव ऐसा ही है। मध्यप्रान्त के मि० रिवेटकरनेक ने सन् १८७० मे स्वीकार किया है कि "मिलो का माल देशी माल को निर्मूल कर नही सका। क्योकि देशी माल अत्यन्त मजबूत होने के कारण उससे गर्मी,बरसात और सर्दी का निवारण होता है और धोबी से कितनी ही बार धुलाने पर भी उसकी उपयुक्तता मे कमी नही आती।"[२] श्री अमलसाद कहते है—"अनेक वर्षो से सर्वथा गरीब लोगो की यह निश्चित धारणा चली आरही है कि मिलो के कपडे की अपेक्षा हाथ से बुने हुए कपडे अधिक टिकाऊ होते है। उनकी इस धारणा में जरा भी अन्तर पडा दिखाई नही देता।"[३]

"मिल अथवा मशीनो के माल की अपेक्षा हाथ के कते सूत और हाथ के करघे पर बुनी खादी अधिक टिकाऊ होती है, इसमे आश्चर्यजनक कोई बात नही है; क्योकि मशीनो मे लोढनो से लेकर उसके बुने जाने तक की

१ Prince Kropotkin's "Fields, Factories and Workshops"

२ 'Essay on Handspinning and Handweaving' पृ० १०६

३. श्रेग Economics of Khaddar" पृ० ३६

क्रिया करने मे रुई की शक्ति जितनी अधिक कम होती है वैसी हाथ के कते सूत की खादी की नही होती। इसलिए पोत, मजबूती और टिकाऊपन की दृष्टि से मिल का कोई-सा भी माल उस खादी की बराबरी कर नही सकेगा"।[१] श्री तालचेरकर ने अपनी इस बात की पुष्टि के लिए मिलो की लोढने से लेकर कपडा बुनने तक की प्रत्येक क्रिया के विशेषज्ञ की हैसियत से वैज्ञानिक दृष्टि से अत्यन्त सूक्ष्म विवेचन किया है, और ऐसा करते हुए इस बात का अत्यन्त मार्मिक दिग्दर्शन किया है कि यान्त्रिक क्रियाओ मे कैसे-कैसे दोष रहते है, यन्त्रो—मशीनो -मे कितना ही सुधार करने पर भी किस तरह उनमे से इन दोषो का निकलना सम्भव नही है और किस तरह हाथ के चरखे और हाथ के करघे (खड्डी) पर मनुष्य की बुद्धि और हस्त-कौशल का उपयोग होने के कारण ये सब दोष टाले जा सकते है।

१. श्री तालचेरकर कृत "Charkha Yarn" पृष्ठ ५

: १० :

खादी और अर्थशास्त्र

"जो अर्थशास्त्र व्यक्ति के अथवा राष्ट्र के नैतिक कल्याण का विघातक है, वह अनीति-मूलक अतएव पापयुक्त अर्थात् 'आसुरी' अर्थशास्त्र है।"[१]

—महात्मा गाधी

पश्चिमी अर्थशास्त्र का एक सिद्धान्त है कि "बाजार मे जो सस्ता और सुन्दर अथवा मुलायम माल हो वही लिया जाय।" इस सिद्धान्त का अनुसरण कर कुछ लोग यह प्रश्न करते है कि "हम मोटी-झोटी महगी खादी क्यो खरीदे ? क्या अर्थशास्त्र की दृष्टि से खादी काम मे लाना श्रेयस्कर है ? पश्चिमी अर्थशास्त्र, उस अर्थशास्त्र का उपरोक्त सिद्धान्त और उसका अनुसरण कर किये गये प्रश्न ही इस अध्याय के प्रतिपाद्य विषय है, अत. इन पृष्ठो मे अब हम इन्ही पर विचार करेगे।

हिन्दुस्तान मे अग्रेजी शासन कायम होने के बाद अग्रेजी शिक्षा का आरम्भ हुआ, और इस शिक्षा के परिणाम के बारे मे इसके प्रथम प्रवर्त्तक लार्ड मेकाले ने जो सकेत किया था वही हुआ। ऐसा प्रतीत होने लगा कि हमारी सस्कृति, हमारा तत्वज्ञान और हमारा रहन-सहन यह सब त्याज्य और उपेक्षणीय और अग्रेजी सस्कृति, अग्रेजी तत्वज्ञान और अग्रेजी रहन-सहन यही सब प्रशसनीय अनुकरणीय है।

इसके साथ-ही साथ लोग यह भी कहने लगे कि अग्रेजी अर्थशास्त्र ही सच्चा अर्थशास्त्र है, और इसलिए हिन्दुस्तान मे उसी अर्थशास्त्र के सिद्धान्त लागू किये जाने चाहिए। जिस तरह इग्लैण्ड मे पूजी खड़ी की जाती है, उस तरह यहा भी पूजी खडी की जाय, वहा जिस तरह के बडे-बडे कल-कारखाने है, उस तरह के यहा भी स्थापित किये जाय, जिस

१. 'यग इण्डिया" भाग १ पृष्ठ ८७२

तरह वहा पूजीवालो और मजदूरो का सगठन है, यहा भी वैसा ही सगठन किया जाय, जिस तरह वहा पूजीवालो की नस ढीली करने के लिए हडताल आदि की जाती है, उस तरह यहा भी किया जाय, वहा जिस तरह 'साम्यवादी' आदि आन्दोलन पैदा हुए, वैसे यहा भी किये जाय, और जिस तरह वहा 'खुला व्यापार' है, वैसा हमे भी करना चाहिए इत्यादि, इत्यादि।

महात्माजी कहते है—"सरकारी कालेजो मे जो अर्थशास्त्र सिखाया जाता है वह गलत होता है। अगर हम जिज्ञासु होगे तो हमे दिखाई देगा कि जर्मन, अमेरिका और फ्रास आदि देशो मे जो अर्थशास्त्र सिखाये जाते है व[illegible]र-भिन्न होते है। मेरे पास एक हगरियन सज्जन आये थे। उनकी बातचीत से मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि उनका अर्थशास्त्र कुछ दूसरा ही होना चाहिए। प्रत्येक देश की स्थिति के अनुसार ही वहा का अर्थशास्त्र बनाया जाता है। यह समझ बैठना ठीक नही है कि एक देश का अर्थशास्त्र सारे ससार पर ही लागू होजायगा। हिन्दुस्तान मे आज जो अर्थशास्त्र बनाया जाता है वह इस देश को तबाह करता है। हमे हिन्दुस्तान का अर्थशास्त्र मालूम ही नही है, हमे उसकी खोज करनी है।"[१]

हमारे यहा के कालेजो मे सिखाये जानेवाले अर्थशास्त्र के सम्बन्ध मे सिर्फ महात्माजी ही ऐसा करते हो सो बात नही है। प्रो० काले का भी कहना है कि—"अभी परसो तक सिर्फ यही समझा जाता था कि डिग्री की परीक्षा की तैयारी करनेवाले विद्यार्थियो को पढाना सिर्फ यही कालेज के प्रोफेसरो का काम है। सिखानेवाले जो सिखाते और सीखनेवाले जो सीखते वह अत्यन्त हलके दरजे का होता था। कालेज मे (अध्ययन करने का) सुभीता बहुत कम होता था। विश्वविद्यालय अथवा यूनिवर्सिटी पाठ्यक्रम निश्चित करने और परीक्षा लेने मे ही अपना साधन मान लेती थी। देश की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति मे क्रमश जैसे-जैसे विकास होता गया, वैसे-वैसे कालेज और विश्वविद्यालय

१. 'नवजीवन' १७ जून १९२८

की कक्षा से बाहर के लोगो मे इनका सशोधन और चर्चा करने की स्फूर्ति पैदा हुई। देश के लोगो की सोलह आने दरिद्रता, देश मे अकालो की परम्परा, सरकार की अबाधित अर्थात् खुले व्यापार की नीति, उसकी लगान और विनिमय----पद्धति, किसानो का बढता हुआ कर्जा और बेकारी, शासन-कार्य मे हुआ केन्दीभवन, प्रान्तीय सरकार का खाली खजाना, रुई की आयात और देश-के-देश मे चलनेवाले व्यापार पर जकात, नमक-कर तथा उद्योग-धन्धो का नाश आदि बातो ने मुख्यत (कालेज से बाहर के) लोगो का ध्यान अपनी ओर आर्कषित किया और उनपर चर्चा हुई। दादाभाई, रानाडे, रमेशचन्द्रदत्त तथा गोखले ने इन बातो के सम्बन्ध मे स्वतन्त्र विचार की दिशा दिखाई।"[1]

महर्षि दादाभाई नौरोजी, न्यायमूर्त्ति रानाडे, श्री रमेशचन्द्रदत्त तथा माननीय गोखले आदि ने यह प्रतिपादन करके कि अग्रेजी अर्थशास्त्र हिन्दुस्तान की परिस्थिति के अनुकूल नही है, इसलिए भारतीय अर्थशास्त्र का स्वतंत्र रूप से विचार करना चाहिए, हिन्दुस्तान मे अग्रेजी अर्थशास्त्र लागू करने की हिमायत करनेवालो के कान ऐठे है। यह उन्होने बहुत बडा काम किया है जिसके लिए वे प्रशसा के पात्र है।

प्रो० काले ने उपरोक्त सज्जनो के साथ महात्मा गाधी का नाम क्यो नही लिया, यह समझ मे नही आता। श्री ग्रेग कहते है—"गाधीजी की नम्रता और मानव-जाति पर उनके प्रेम के सद्गुणो के कारण ही हिन्दुस्तान की आर्थिक स्थिति का विचार करनेवाले दूसरे किसी भी व्यक्ति की अपेक्षा उन्हे सूक्ष्मतर और अत्यन्त मार्मिक विवेचन करने की दृष्टि प्राप्त हुई है।"[2] यह ठीक ही है। हम पश्चिमी अर्थशास्त्र सीखकर और पश्चिमी चश्मा लगाकर अपने देश की ओर देखते है, इसीलिए हमे अपनी परिस्थिति का सम्यग्दर्शन नही होता। सम्यग्दर्शन होने के लिए जनता के साथ समरस होना चाहिए।

१ मैसूर आर्थिक परिषद् (२ जनवरी १९२९) के सभापति का भाषण

२. "Economics of Khaddar" पृ० १५९

प्रो० काले भी यही कहते है—"यह बात कदाचित् ही किसी के ध्यान मे आई मालूम होती है कि "अपनी-अपनी दृष्टि से मूल्यवान फसले, खेत और बीज आदि का कितना ही सशोधन करने पर भी जबतक हम ग्रामीण जनता के जीवन का भिन्न-भिन्न दृष्टियो से और सम्पूर्णत अध्ययन नही करेगे, तबतक किसानो की स्थिति नही सुधार सकेगे। ग्रामीण जनता के जीवन और हालचाल का, भिन्न-भिन्न अङ्गो का सूक्ष्म अध्ययन करना सच-मुच अत्यन्त आवश्यक है। इस दिशा मे अभी बहुत काम होना बाकी है।"[१]

ग्रामीण जनता के जीवन का अध्ययन महात्माजी की अपेक्षा किसने अधिक किया है? भारत के सब भागो के हजारो गावो मे जाकर गरीब भारतीय जनता की परिस्थिति का प्रत्यक्ष अवलोकन अगर किसी ने किया है तो वह महात्मा गाधी ने ही किया है। भारतीय ग्रामीण-जनता के साथ महात्माजी जैसे एक-रस होगये है, वैसा कोई दूसरा हुआ दिखाई नही देता। महात्माजी उसके साथ इतने एक-रस होगये है, इसलिए उन्हे चरख का अर्थशास्त्र सुझाई पडा है। जनता के साथ एक-रस होने के कारण, उसके दुख का—रोग का ठीक निदान हुआ, इसलिए उस रोग का उपचार भी ठीक सुझाया जा सका है। भारतीय अर्थशास्त्र पर बोलने अथवा लिखने के लिए वर्तमान भारत मे उनके जितना अधिकारी पुरुष आज दूसरा और कौन है? अस्तु,

अभी कालेजो मे जो अर्थशास्त्र सिखाया जाता है, उस पर से महात्मा जी ने 'नीति-मूलक' और 'अनीति-मूलक' ये दो भेद किये है। "जो अर्थशास्त्र व्यक्ति के अथवा राष्ट्र के नैतिक कल्याण का विघातक है, वह अनीति-मूलक अतएव पापयुक्त अर्थात् 'आसुरी' अर्थशास्त्र है।[२] इसके विपरीत जो अर्थशास्त्र व्यक्ति के अथवा राष्ट्र के सम्पूर्ण विकास मे सहायक होता है उसे दैवी अर्थशास्त्र समझना चाहिए। अपना आशय स्पष्ट करने के लिए महात्माजी ने आसुरी अर्थशास्त्र के नीचे लिखे कुछ उदाहरण दिये है—

१. मैसूर आर्थिक परिषद् (२ जनवरी १९२९) के सभापति का भाषण।

२. 'यंग इण्डिया' भाग १ पृ० ६७२।

"जो अर्थशास्त्र एक देश को दूसरे देश के भक्ष्य स्थान मे पडने देता है वह अनीतिमूलक अर्थशास्त्र है ।[१]

(१) यह जानते हुए भी कि अपने पडोस का अनाज का व्यापारी सिर्फ ग्राहक न मिलने के कारण ही भूखो मरता है। उसे भूखो मरता छोड-कर स्वय अमेरिकन गेहू खाना पापमूलक है ।[२]

(२) यह जानते हुए भी कि अपने पडोस की मा-बहिनो के काते और बुने वस्त्र काम मे लाने से अपनी आवश्यकता की पूर्ति के साथ-ही-साथ उनका भी पोषण होता है। मैने अगर "रीजण्ट स्ट्रीट" का सर्वथा नये-से-नया फैशन ग्रहण कर लिया तो मै पापी समझा जाऊगा ।[३]

अर्थशास्त्र के सिद्धान्त त्रिकालवाधित अथवा सार्वत्रिक सिद्धात नही है ।[४]

"सजातीय वस्तु का ही जोड हो सकता है, इस प्रकार गणित के अचूक और निरपवाद सिद्धात पर देश, काल, इतिहास, सस्कृति, रहन-सहन और शासन-पद्धति आदि इन सब बातो का थोडा-बहुत असर पडता है, इस-लिए उसके — अर्थशास्त्र के—जो नियम इग्लैण्ड के लिए गुणकारक होते है, वही नियम फ्रास और अमेरिका के लिए लागू नही होते। ऐसी दशा मे हिन्दुस्तान जैसे भिन्न तत्त्वज्ञान और धार्मिक कल्पना पर प्रस्तावित और हजारो वर्ष उसी पर कायम रहनेवाले देश की तो बात ही क्या है। स्वय इग्लैण्ड मे भी ऐसे मौके आये है जब उसे अपनी अर्थशास्त्र विषयक कल्पना को तिलाजलि देनी पडी है। उसके सामने ऐसे मौके आये है जिनमे उसे अपने 'अवाधित अर्थात् खुले व्यापार' का वावेला कम करके और जोड-तोड

१. यह राष्ट्र को दिया हुआ उदाहरण है। यग इण्डिया, भाग १ पृ० ६२२

२. यह व्यक्ति को उद्देश्य करके दिया हुआ उदाहरण है। यग इडिया भाग १, पृ० ६२२

३. " " " "

४. महात्मा गाधी 'यंग इण्डिया' भाग १ पृष्ठ ५४९

मिलाकर अपने उद्योग-धन्धो के सरक्षण के लिए जकात के अतिरिक्त कर लडाने पडे है।"[1]

यह सम्भव नही है कि अर्थशास्त्र के जो सिद्धान्त स्वतन्त्र देश के लिए उपयोगी पडते हो वही भारत जैसे पराधीन देश के लिए उपयुक्त हो।

प्रत्येक राष्ट्र के अर्थशास्त्र के सिद्धान्त किस प्रकार भिन्न होते है यह बात महात्माजी ने भिन्न-भिन्न राष्ट्रो के उदाहरण देकर सिद्ध कर दिखाई है। सक्षेप मे वह इस प्रकार है—

इंग्लैण्ड और जर्मनी—जर्मनी के अर्थशास्त्र से इग्लैण्ड का अर्थ-~~शास्त्र~~ भिन्न है। जर्मनी ने अपने देश मे 'चुकन्दर' से शक्कर तैयार करने के कारखानो को सरक्षक सहायताये देकर, अपने को सम्पन्न बना लिया। दूसरे देशो के व्यापार पर कब्जा करके इग्लैड ने अपनी तौद भरली है। यह छोटा-सा देश जो कुछ कर सका वह १९०० मील लम्बे और १५०० मील चौडे हिन्दुस्तान मे हो सकना सम्भव नही है।

इंग्लैड और हिन्दुस्तान—जल, वायु, भूस्तर-रचना एव राष्ट्र-स्वभाव इन तीनो बातो मे इग्लैण्ड से हिन्दुस्तान की स्थिति जुदा होने के कारण इग्लैण्ड के लिए हितकर बहुत-सी बाते हिन्दुस्तान के लिए विष के समान है। गोमास मिश्रित चाय भले ही इग्लैण्ड की वायु के अनुकूल हो, लेकिन धर्मनिष्ठ हिन्दुस्तान की उष्ण वायु के लिए वह विष जैसी है, ब्रिटिश प्रायद्वीप के उत्तरीय भाग मे तो शराब पीना आवश्यक हो सकता है, किन्तु हिन्दुस्तान की वायु मे उसका सेवन करना अथवा सेवन कर समाज मे व्यवहार करना सम्भव नही है।

स्काटलैड और हिन्दुस्तान—स्कॉटलैड की हवा मे वहा का ऊनी कोट अनिवार्य वस्तु होगी, लेकिन हिन्दुस्तान की हवा मे वह बोझ रूप होकर असह्य हो जायगा।[2]

यहा तक तो अर्थ-शास्त्र का सामान्य विवेचन हुआ। अभी तक

१ हरिभाऊ फाटक—'स्वदेशी की मीमासा' पृष्ठ १००-१०१

२ 'यंग इण्डिया' भाग १ पृष्ठ ५४९-५५०

अनीति-मूलक अथवा 'आसुरी' अर्थशास्त्र के तीन सिद्धान्तो का उल्लेख हुआ है। ये तीन सिद्धान्त इस प्रकार है—

(१) श्रम-विभाजन के सिद्धान्त के अनुसार एक देश को दूसरे देश के कच्चे माल की आवश्यकता-पूर्ति करना और दूसरे को उसका पक्का माल तैयार करना,

(२) राष्ट्र-राष्ट्र के बीच अबाधित अथवा खुला व्यापार होना, और

(३) बाजार मे जो सस्ता और सुन्दर अथवा मुलायम माल हो वही लेना।

आइये, क्रमशः प्रत्येक पर सक्षेप मे कुछ विचार करे।

पहला सिद्धान्त देश की स्वतन्त्रता पर कुठाराघात करनेवाला है। यह सिद्धान्त एक देश को दूसरे देश का भोज्य पदार्थ बनानेवाला है।[1] एक देश के यावच्चन्द्र दिवाकरौ दूसरे देश के कच्चे माल की आवश्यकता पूरी करता रहने और पक्के माल के लिए उस पर अवलम्बित बने रहने का अर्थ है। खुद के हाथ-पाव होते हुए दूसरे की चुल्लू से पानी अथवा घर मे आटा-दाल आदि सब सामग्री मौजूद होतेहुए भी होटलम भोजन करना। प्रत्येक देश को अपनी सर्वागीण उन्नति करने का पूरा मौका मिलना चाहिए। प्रत्येक देश को सब बातो मे स्वावलम्बी होने का प्रयत्न करना चाहिए। यह अत्यन्त सीधी-सादी-सी बात है कि कम-से-कम अन्न-वस्त्र के मामलो मे तो उसे स्वावलम्बी होना ही चाहिए। इधर पश्चिमी देश 'श्रम-विभाजन' के लुभावने नाम के आधार पर कमजोर देशो को राजनैतिक और आर्थिक गुलामी मे जकड़े रहते है। किसी भी स्वाभिमानी व्यक्ति को यह बात सह्य नही होगी कि हिन्दुस्तान सिर्फ कच्चा माल पैदा करता रहे और इग्लैण्ड उसका पक्का माल तैयार कर फिर उसी को हिन्दुस्तान के गले बाधता रहे। विजित और दुर्बल राष्ट्र होने के कारण ही भारत को यह अपमान और यह परावलम्बन सहन करना पड रहा है, किन्तु वास्तव मे यह सिद्धान्त बहुत ही घातक होने के कारण अत्यन्त निन्दनीय और त्याज्य है।

१. ग्रेग "Economics of Khaddar" पृष्ठ १०१

दूसरा सिद्धान्त 'अबाधित अथवा खुले व्यापार' का है। इग्लैण्ड ने खुले व्यापार का बहुत शोर मचाया था, लेकिन उसके पिछले इतिहास पर नजर डालने से यह स्पष्ट दिखाई देगा कि उसने कितनी बार सरक्षक जकात का सहारा लिया था। वास्तव मे इग्लैण्ड का, सरक्षक जकात का अवलम्बन कर खुद मोटा-ताजा हो जाने के बाद, खुले व्यापार की हिमायत करना ऐसा ही हे जैसा कि सोढी से शिखर पर पहुचकर सीढी को लात मारकर नीचे गिरा देना। इग्लैण्ड ही क्या, ससार के प्रत्येक देश ने अपने छोटी अवस्था के धन्धो की वृद्धि अथवा मरणासन्न स्थिति को पहुँचते हुए धन्धो के पुनरुज्जीवन के लिए सरक्षण पद्धति का अवलम्बन किया था, और आज अपने उद्योग-धन्धो की वृद्धि होजाने पर भी इग्लैण्ड और दूसरे राष्ट्रो ने खुले व्यापार के सिद्धान्त को उठाकर एक तरफ रख दिया है और अपने चारो ओर आर्थिक सरक्षण की दीवारें खडी करदी है। ससार-भर मे आज खुले व्यापार का समर्थन करनेवाला एक भी देश बाकी नही रहा है।

'इग्लैण्ड जिस समय खुले व्यापार का समर्थन करता था उस समय वास्तव मे वह सच्चे अर्थो म खुला व्यापार नही था, क्योकि अपन उद्योग-धन्धे चलाने और दूसरे देशो क उद्योग-धन्धो का नष्ट करने क लिए वह सिर्फ जकात का ही नही, बल्कि अपन सैनिक बल, राजकीय सत्ता और कुटिल राजनीति इन सबका उपयोग करता था।"[१]

यह खुला व्यापार हिन्दुस्तान क लिए शापरूप सिद्ध हुआ हे और इसी ने उसे गुलामी म जकड दिया है।

समान स्थिति क राष्ट्रा मे खुले व्यापार की हिमायत करना कदाचित् ठीक हो, परन्तु एक सम्पन्न और दूसरे दरिद्रो,--एक विजेता और दूसरे गुलाम देश म खुल व्यापार की बात करना राष्ट्रनीति के विरुद्ध होगा। किसी समय के दरिद्री, किन्तु आज के सम्पन्न बने हुए राष्ट्र का दूसरे दरिद्री राष्ट्र पर खुले व्यापार का सिद्धान्त लादने का अर्थ ऐसा ही है जैसा कि

१ किशोरलाल मशरूवाला 'गाधी विचार दोहन' चौथा सस्करण पृष्ठ ९२

बचपन मे गडूलने का सहारा लेकर चलना सीखने वाले किसी तरुण का अपने छोटे भाई के हाथ से उसका गडूलना छीनकर उससे 'मेरी तरह बिना सहारे के चलना सीख' यह कहना।[1]

ऊपर हम देख ही चुके है कि सब देशो ने अपने उद्योग-धन्धो की रक्षा के लिए 'सरक्षक जकात की दीवारे' खडी की है। ऐसी स्थिति मे पाश्चात्य अर्थशास्त्र का 'बाजार मे सस्ते-से-सस्ता हो वही लो' का यह अनीतिमूलक तीसरा सिद्धान्त टिक ही नही सकता।

अर्थशास्त्र का धातु अर्थ है—वह शास्त्र जो व्यक्ति के अर्थ—स्वार्थ—की ओर न देखकर राष्ट्र की सम्पत्ति बढाता है। इसका आशय ~~यह है~~ कि व्यक्तिगत दृष्टि से एकाध वस्तु महगी भी पडती हो, तो भी राष्ट्र के आत्यन्तिक कल्याण की दृष्टि से उस व्यक्ति के लिए उस वस्तु का खरीदना एक पवित्र कर्तव्य होता है। इसके अलावा 'अन्न और वस्त्र' मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताए है। इन विषयो मे प्रत्येक राष्ट्र को अवश्य स्वावलम्बी होना चाहिये। कोई मनुष्य या राष्ट्र यदि इस विषय मे परावलम्बी हुआ तो उसका जीवित रहना कठिन हो जाता है, इसका प्रमाण हमे इस वर्तमान युद्ध मे अच्छी तरह मिल ही गया है। हिन्दुस्तान जैसे किसी समय मे समृद्ध रहने वाले देश के 'सुजल' और 'सुफल' से समृद्ध बगाल मे ३५ लाख मनुष्यो का मृत्यु के मुह मे पड जाना अनाज के विषय मे हमारे स्वतन्त्र रूप से हलचल न कर सकने की स्थिति का ही परिणाम है। उसी प्रकार डेढ सौ वर्ष पहिले जिस हिन्दुस्तान से करोडो रुपयो का कपडा इग्लैण्ड जैसे विदेश मे जाता था उसी हिन्दुस्तान मे इस महायुद्ध के समय "पाच आदमी को एक धोती" की कैद लगाने से बढकर कौनसी लज्जास्पद बात हो सकती है? यह परिस्थिति असह्य है। जिस हिन्दुस्तान मे कपास खूब पैदा होती है, जिसमे सैकडो वर्षों से चरखे की परम्परा चली आरही है, जहा अंग्रेजी सरकार की दुष्टतापूर्ण औद्योगिक नीति के कारण करोडो लोग बेकार हो गये है वहा के लोगो का कपडो के बारे मे परावलम्बी रहना मानो घर मे

१. 'महाराष्ट्र खादी पत्रिका' १९३४ अंक १२

सुस्वादु-भोजन की तैयारी होने पर भी किसी रद्दी-सद्दी भोजनालय मे भोजन करने जैसा है। घर के लोगो को भूखो मारकर दूसरो के पोसने जैसा है। इस घातक नीति के कारण हम अपने देश के लोगो को बेकार बनाने का पाप कमाते है और हम अपने ऊपर जुल्म करने वाले शासको के भाई-बन्दोका पोषण करके अपनी गुलामी की जजीर और मजबूत करते है। इन सब आपत्तियो को दूर करने के लिए हमे 'अन्न' और 'वस्त्र' के मामले मे स्वावलम्बी होना बिलकुल आवश्यक है।

'अन्न और वस्त्र' के मामले मे यदि किसी का मुह देखने का कारण न रहा तो फिर हमे यह अनुभव होने लगेगा कि जीवन के दूसरे क्षेत्रो मे भी हम परावलम्बी क्यो रहे ? जीवन के इन दूसरे क्षेत्रो मे भी हम अपने पैरो पर खडे रह सकते है—रहना चाहिए ऐसा आत्म-विश्वास अनुभव होने लगेगा। आत्म-विश्वास मानो हमारे कार्य की सफलता का अग्रदूत ही है। जब किसी काम मे मनुष्य को आत्म-विश्वास होने लगा तो समझिये कि अब विजय लक्ष्मी उसके गले मे माला डालने ही वाली है। 'आत्म-विश्वास' और 'स्वावलम्बन' इन दो सद्गुणो के बल पर ही मनुष्य अथवा राष्ट्र उन्नति के शिखर पर पहुच सकते है।

इसलिए, एक बारगी देखने से खादी व्यक्तिगत दृष्टि से महंगी प्रतीत हाने पर भी वास्तविक अर्थात् नीतिमूलक अर्थशास्त्र की दृष्टि से उसमें राष्ट्र का कल्याण ही है। महात्माजी कहते है—

"खादी के सिवा, अपने उद्धार का और कोई उपाय नही है। यह कहा जाता है कि खादी महगी पडती है, लेकिन अपने बाल-बच्चो का पालन-पोषण करना खर्चीला होने पर भी उन्हे हम मार नही डालते। यह बात ठीक है कि अगर हम अपने बच्चो को मार डाले तो हम कम खर्च मे अपना काम चला सकेंगे, लेकिन ऐसा करना हम अधर्म मानते है और इसलिए ऐसा करते नही है। इसी तरह करोडो लोगो को अन्न-जल देने वाली खादी छोडकर कदाचित् हम कम खर्च मे काम चला सके, लेकिन ऐसा करना

ठीक नही है।"[१]

प्रत्येक सुसगठित राष्ट्र का यह अलिखित नियम होता है कि वहा की सरकार या तो अपने देश के सब लोगो को काम दे, नही तो उनके पोषण के लिए धर्मादाय—दान—की व्यवस्था करे। अवश्य ही यह दान जनता के पास से कर के रूप मे वसूल किये जानेवाले पैसे मे से ही निकाला जाता है। इसका अर्थ यही हुआ कि बेकार लोगो के पोषण का बोझ देश के कमाई करनेवाले दूसरे लोगो पर किसी-न-किसी रूप मे पडता ही है। यह भी एक प्रकार का अप्रत्यक्ष कर ही है।

यह ठीक है कि खादी महगी होने के कारण व्यक्ति को उसके लिए अधिक पैसे देने पडते है। लेकिन इसके लिए हमे यह समझ लेना चाहिए कि इस खादी के जरिये हम गरीबो के पेट मे दो दाने डालते है, उन्हे एक तरह का 'दान' देते है, और इस प्रकार राष्ट्रीय कल्याण की दृष्टि से यह एक प्रकार से जनता का स्वय स्फूर्ति से राष्ट्र को दिया हुआ एक प्रत्यक्ष कर ही है।

नीचे दी हुई तुलना से यह विचार-सरणी और अधिक स्पष्ट होगी—

खादी द्वारा दिया हुआ दान	बेकारी का दान
(१) प्रत्यक्ष कर	(१) अप्रत्यक्ष कर
(२) काम देकर जनता को सहायता देना	(२) बेकार जनता को बिना काम दिये मदद देना
(३) कार्य-शक्ति और कौशल के विकास को सहायता	(३) कार्य-शक्ति और कौशल का अभाव
(४) नैतिक दृष्टि से श्रेयस्कर	(४) नैतिक दृष्टि से हानिकर

विलायती कपडा इतना सस्ता और सुन्दर लगता है इसका कारण यहा है कि करीब १५० वर्ष हुए विलायत के पूजीपतियो ने हमारे धधो को चौपटकर अपनी तोद फुला ली है। उन्होने अभी तक इतना नफा कमाया है कि सस्ता ही क्या वे चाहे तो आज अपना कपडा मुफ्त मे भी

१. 'यंग इण्डिया,' भाग १ पृ० ५४६

दे सकते है। हम यह कपडा लेते है, इससे हमारा पैसा सात समुद्र पार चला जाता है, उसके फिर दर्शन होना सम्भव नही होता। इससे हमारे लोग बेकार होते है, लेकिन विदेशी पूजीवालो और मजदूरो का अच्छा पोषण होता है। जितना ही हम विलायती माल अधिक लेते है, उतनी ही अधिक हमारी बेकारी बढती है और हमारे लोग अधिकाधिक आलसी तथा दारिद्री बनते है। बेकारी और दरिद्रता बढने से देश मे पैसे का अभाव हो जाता है। इससे दूसरे उद्योग-धन्धे भी चौपट होजाते है। इस प्रकार अन्त मे देश की हानि होती है। केवल सामाजिक दृष्टि से ही हानि होती हो सो बात नही, राजनैतिक दृष्टि से भी भयकर अधःपतन होता है। विलायती पूजीवालो मे कुछ लोग पार्लमेण्ट के सदस्य होते है, वे दूसरे सदस्यो से साठ-गाठ जोडकर भारत की पराधीनता की शृखला को और अधिक मजबूत करते रहते है, क्योकि इस पराधीनता पर ही उनका सारा व्यापार निर्भर है।

तुलनात्मक दृष्टि से उक्तविवेचन का सार सक्षेप मे नीचे लिखे अनुसार होगा—

खादी	विलायती वस्त्र
(१) व्यक्तिगत रूप से महगी (कारण—पूजी की न्यूनता)	(१) व्यक्तिगत रूप से सस्ता (कारण—पिछले १५० वर्ष से विलायती पूजीवाले हिन्दुस्तान के प्राणो पर मोटे होगये है)
(२) पैसा देश-का-देश मे रहता है।	(२) पैसा सात समुद्र पार चला जाता है।
(३) देश के लोगो को काम मिला है।	(३) विलायती पूजीवाले और मजदूरो का पोषण होता है। देश के लोग बेकार होते है।

(४) खादी का खपत मे अधिकाधिक वृद्धि होने पर—	(४) विलायती कपड की खपत अधिक होने पर—
(अ) पूजी की लौटापलटी अधिक होती है।	(अ) देश का द्रव्य-शाषण अधिक होता है।
(आ) अधिक लोगो को काम मिलता है।	(आ) अधिकाधिक लोग बेकार हाते है और इस कारण दरिद्री बनते हैं।
(इ) दूसरे धन्धे बढते है।	(इ) दरिद्रता के कारण दूसरे धन्धे भी बन्द होने लगते है।
(५) अन्त मे राष्ट्र सुखी और सम्पन्न बनता ह।	(५) अन्त मे देश दरिद्री और दुखी बनता है। विलायती पूजी-वाले पराधीनता की श्रृखला को अधिक मजबूत करते है।

एक यह प्रश्न हमेशा पूछा जाता है कि विलायती माल की जगह हम देशी माल काम म लाते है। ये मिले तो स्वदेशी ही है न ? ऐसी दशा में खादी के बजाय इन देशी मिलो का माल काम मे ले तो इसमे क्या हर्ज है ? अत स्वभावत ही अब हमे इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए।

विलायती मिलो के बजाय हिन्दुस्तानी मिलो का माल खरीदने पर देश की आर्थिक स्थिति मे कितना सुधार होगा उसपर नजर डालिए—

विलायती और हिन्दुस्तानी दोनो ही तरह की मिलो के लिए जिन यन्त्रो अथवा मशीनो की जरूरत होगी वे निश्चय ही एक-सी ही होगी। उनके लिए खर्च किया जानेवाला पैसा एक बार देश से बाहर गया कि हमेशा के लिए गया। उसमे से एक कौड़ी भी वापस आना सम्भव नही होता।

फिलहाल मिलो मे १२०करोड रुपये की पूजी लगी है। उसमे से ७०करोड रुपये तो विलायती यन्त्रो पर ही खर्च हुए है। इसके अलावा टूट-फूट तथा छीजन होती ही रहती है। उसके लिए भी खर्च लगता ही है। दुरुस्तीके लिए आवश्यक सामान भी विलायती ही होता है। इसलिए यह पैसा भी बाहर ही चला जाता है। जो ४० करोड रुपये बचे, उनमे से कुछ रकम मिल के लिए जमीन और उसपर खडी की जाने वाली इमारतो पर खर्च होजाती है। इमारतो पर जो खर्च होता है उसमे भी विलायती माल काफी रहता है। कच्चे माल की खरीदमे भी विलायती रुई तथा सूत का अन्तर्भाव होता ही है। १९४३-४४ मे परदेसी रुई खरीद मे पौने दो करोड रुपये बाहर गये और सूत मे ३॥ करोड रुपये।

"मिलो मे आज ५ लाख मजदूर काम करते है। माल की कीमत का सिर्फ बीस फीसदी इन्हे मिलता है। बाकी का ८० फीसदी एजेण्ट, डाइरेक्टर्स-शेअर-होल्डर्स तथा मिल ओनर्स के कमाशन व मुनाफे आदि मे और कच्चे माल की खरीद मे जाता है।"

ये एजेण्ट, डाइरेक्टर्स आदि लोग शाही बगलो, मोटरो, बहुमूल्य विलायती कपडो, बिल्लोरी सामान और आमोद-प्रमोद की विदेशी वस्तुओ मे अपना पैसा फसाकर इस रूप मे विदेशवालो की सहायता करते है।

इन सब दृष्टियो से विचार करने पर देशी मिलो का माल लेना भी कोई श्रेष्ठ मार्ग नही है। विलायती माल की अपेक्षा देशी मिलो का माल लेने का मतलब सिर्फ 'पत्थर के बजाय ईंट' लेना है।

सब मिलाकर खादी, देशी मिलो का कपडा और विलायती अथवा विदेशी वस्त्र मे तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर—

(१) खादी खरीदना ही सर्वोत्कृष्ट मार्ग ठहरता है, क्योकि इसपर खर्च होनेवाली एक-एक पाई, सौ-का-सौ फीसदी रुपया देश-का-देश मे ही रहता है। आर्थिक दृष्टि से खादी ही आज देश का अधिक कल्याण करने वाली है। इसलिए खादी ही "स्वदेश का शुद्ध और परिणत स्वरूप" मानी जाती है।

(२) देशी मिलो पर लगने वाली कुल पूजी मे से दो तिहाई पूजी

सिर्फ विदेशी मशीनरी पर ही खर्च होजाती है। देशी मिलो का माल लेने से मजदूरो को माल की कीमत का सिर्फ २० फीसदी ही हिस्सा मजदूरी मिलती है। मिल-मालिक आदि अपनी आमदनी का काफी हिस्सा विलासिता के विलायती माल पर ही खर्च कर देते है। इन और ऐसी ही दूसरी सब बातो को ध्यान मे रखकर देखा जाय तो देशी मिलो का माल खरीदने पर फी सैकडा ३० रु० भी देश मे बचता है या नही, यह सन्देहास्पद है।

इस पर से यह स्पष्ट दिखाई देजाता है कि देश की आर्थिक स्थिति सुधारने मे खादी और देशी मिलो का माल इन दोनो मे से कौन कितनी मदद करता है।

(३) विलायती अथवा विदेशी माल लेने मे तो सब-का-सब—सौ फीसदी पैसा विदेश को जाता है। ऐसी दशा मे वह माल लेना सर्वथा निन्दनीय एव त्याज्य है। इस सम्बन्ध मे अलग विवेचन करने की कुछ आवश्यकता नही है।

जिस प्रकार देश को आज राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त नही है, उसी तरह आर्थिक दृष्टि से भी वह स्वतन्त्र नही है। इसलिए भारतीय बन्दरगाह पर विदेशी वस्त्र की आयात पर प्रतिबन्ध लगाया नही जासकता— हम देशी वस्त्र पर जकात लगा नही सकते।[1] ऐसी दशा मे स्वय जनता को ही महगी खादी खरीदकर उसका—खादी का—'सरक्षण' करना चाहिए। दूसरे किसी भी उन्नत राष्ट्र के इतिहास का अध्ययन करने पर हम देखेगे कि अर्थशास्त्र का दृष्टि से राष्ट्र का सरक्षण करने के लिए लोगो ने स्वय अपनी राजी-खुशी से अथबा कानून के बलपर खराब और महगी वस्तुये काम मे ली है। इसी तरह हिन्दुस्तान मे भी जो लोग अर्थशास्त्र को समझते है, अथवा जिनमे सहृदयता और स्वदेशाभिमान है, उन्हे आर्थिक दृष्टि से अपने हिन्दुस्तान का सरक्षण करने लिए महगी, मोटी-झोटी अथवा अन्य दोषयक्त खादी का

१. यह ठीक है कि भारत सरकार ने इस समय विदेशी वस्त्र पर जकात लगा दी है; लेकिन वह लगाई गई है सरकारी आमदनी बढाने की दृष्टि से। उससे हिन्दुस्तानी मिलों के कपड़े को थोड़ा-सा सरक्षण मिल जाता है; लेकिन खादी का उससे कुछ खास भला नहीं होता।

व्यवहार प्रिय हुआ है, और प्रिय हुए बिना नही रह सकता ।

महात्माजी से यह प्रश्न किया गया था कि अर्थशास्त्र का जो यह सिद्धान्त है कि बाजार मे जो सस्ता और सुन्दर माल हो वही लिया जाय, क्या वह गलत है ?' महात्माजी ने इसका जो उत्तर दिया था वह इस प्रकार है—

"आधुनिक अर्थशास्त्रकारो ने जो अमानुषिक सिद्धान्त प्रस्थापित किये है उन्ही मे का एक यह सिद्धान्त है । समाज मे व्यवहार करते समय हम अपने मन मे इस प्रकार के क्षुद्र विचार कभी नही लाते । कोयले की खान मे काम करने के लिए अग्रेज और इटालियन दो भिन्न-भिन्न देशो के दो मजदूर आये । इनमे इटालियन मजदूर की मजदूरी की दर थोडी सस्ती थी, फिर भी अग्रेजी खानवालो ने अग्रेज मजदूर को ही पसदकर उसे अधिक मजदूरी देकर रक्खा । यही करना उचित था । इग्लैण्ड मे अगर मजदूरी सस्ती करने का प्रयत्न किया गया, तो राज्य-क्रान्ति उठखडी होगी । दूसरा अधिक क्रियाशील और उतना ही विश्वस्त नौकर मिलता है, इसलिए मै, इस समय मेरे पास जो अधिक वेतन पानेवाला विश्वस्त नौकर है, उसे अलग करदू तो वह पाप होगा । जो अर्थशास्त्र 'नीति और भावना' की अवहेलना करता है वह मोम की पुतली-सा है । वह बिल्कुल जीवित मनुष्य की तरह प्रतीत होता है, किन्तु उसमे चैतन्य नही होता । ठीक आनवान के प्रत्येक प्रसग पर अर्थशास्त्र के ये नूतन सिद्धान्त तोडे जाते है । जो व्यक्ति अथवा राष्ट्र इन सिद्धान्तो पर चलता है उसका नाश अवश्यम्भावी है । जब से हम इग्लैड और जापान का सस्ता माल लेने लगे तभी से हमारा नाश हुआ ।"[१]

सक्षेप मे कहा जाय तो मनुष्य को ससार मे हमेशा रुपये, आने, पाई के हिसाब की वृत्ति रखकर व्यवहार नही करना चाहिए । उसे रुपये, आने, पाई की अपेक्षा अपना धर्म और देश अधिक प्रिय होना चाहिए । ऊपर यह कहा ही जा चुका है कि राज्याश्रय के अभाव मे जनता का महगी खादी

१. 'यग इण्डिया' भाग १ पृष्ठ ६५७

लेना एक प्रकार से उसका 'सरक्षण' करना है। अगर करोडो की पूजीवाले ताता के लोहे के कारखाने का सरक्षण के बिना जीवित रह सकना सम्भव नही है—उसे जीवित रखने के लिए दिल्ली की असेम्बली मे प्रस्ताव पास करन पडते है—तब क्या मूक गरीबो का पोषण करने वाली, थोडी पूजी से चलनेवाली खादी के लिए जनता को इतना स्वार्थ-त्याग नही करना चाहिए ?

केवल राजनैतिक शस्त्र के ही रूप मे नही, बल्कि धार्मिक और कला की दृष्टि से भी 'स्वदेशी' हमारा ध्येय होना चाहिए।" फिर खादी तो स्वदेशी का शुद्ध और परिणत स्वरूप है।

'हम जिससे सेवा लेते है उसीकी सेवा करना' यह स्वदेशी धर्म का मूलमन्त्र है। जिन माता-पिता ने हमे छोटे से बडा किया उनकी सेवा करना 'स्वदेशी-धर्म' है। उसी प्रकार जिस गाव, जिस तहसील, जिस जिले, जिस प्रान्त और जिस देश मे हम पैदा हुए, जहा के अन्न, पानी और हवा से हमारा शरीर बना,जहा के लोगो से अनेकविध हमने सेवा ली है, उस गाव की, उस तहसील की, उस जिले की, उस प्रान्त की और देश की सेवा करना, स्वदेशी धर्म के अनुसार ही हमारा परम कर्तव्य होता है। इस सारे प्रदेश मे रहनेवाल लागो के द्वारा तैयार किया हुआ माल खरीदना मानो एक प्रकार से उनके उपकारो का बदला चुकाना ही है। ऐसा बदला चुकाना मानो स्वदेशी धर्म का आचरण करना है।

जो-जो पूर्वी और पश्चिमी राष्ट्र आज सम्पन्न और समृद्ध दिखाई देते है उसका कारण है उनके द्वारा 'स्वदेशी-धम' का उत्कट आचरण या पालन ही। अग्रेज बच्चा ससार मे कही भी चला जाय उसके शरीर पर और घर मे इग्लैण्ड की बनी हुई वस्तुए ही मिलेगी। यही बात अमेरिकन लोगो की भी है। अमेरिकन मिशनरी—पादरी—हिन्दुस्तान के किसी भी जगला प्रदेश मे, आदिवासियो की बस्ती म, क्यो न रहते हो वे हमे अमेरिकन वस्तु का हो उपयोग करते हुए दिखाई देगे। यही बात जापानियो की भी है। हिन्दुस्तान मे कपास आदि वस्तुए खरीदने के लिए वे आय तो भा उनकी बैठक मे जापान मे बनी चीज ही सब जगह मिलेगी। इन सब लोगो

के काम मे भूल से भी हिन्दुस्तान की बनी कोई चीज नही आती। कारण यह है कि स्वदेशी की जन्म घुट्टी उन्हे पैदा होते ही मिलती है और स्कूल व कालिज मे उस भावना का पोषण होता रहता है।

खादी व्रत लेने का अर्थ है अपनी मनोवृति को सोलहो आना स्वदेशी करलेना है। कपडे की ही तरह अपने जीवन की अन्य आवश्यक वस्तुए भी अपने ही गाव मे बनाना और उन्हे इस्तेमाल करना चाहिए। 'स्वदेशी-धर्म' का पूरा ज्ञान न होने से कुछ खादीधारी लाग वस्त्रो के अतिरिक्त अन्य सब वस्तुए—साबुन, पेन्सिल आदि-आदि धडाके से विदेशी ही काम मे लाते है। ऐसा करके वे स्वदेशी को लजाते है। ऐसे व्यवहार से खादी की प्रतिष्ठा कम होती है और स्वदेशी-धर्म का डके की चोट भग होता है। अत खादी-धारियो को यह समझलेना चाहिए कि खादी मे कौन-कौन सी मनोवृत्तियो और भावनाओ का समावेश होता है और उसीके अनुसार आचरण करना चाहिए।

महायुद्ध के बाद 'विजेता' राष्ट्रो के द्वारा जो विश्व का पुनर्निर्माण होनेवाला है उस योजना के द्वारा हिन्दुस्तान मे विदेशी माल की भरमार करके हिन्दुस्तान का जितना रक्त-शोषण आजतक नही हुआ है उतना करने का सगठित प्रयत्न होनेवाला है। इस आयात से हिन्दुस्तान के छोटे-बडे उद्योगो पर बहुत बडी आपत्ति आनेवाली है और उसमे हिन्दुस्तान के व्यापारी विदेशी माल के एजेन्ट बनने के लिए परस्पर स्पर्धा करेगे। ऐसे समय मे हिन्दुस्तान को खतरे की सूचना दे देना हम अपना कर्तव्य समझते है। ऐसी स्थिति मे हिन्दुस्तान को आखो मे तेल डालकर जागृत रहना चाहिए। उसे यह प्रतिज्ञा लेलेनी चाहिए कि किसी भी परिस्थिति मे वह अपना 'स्वावलम्बन का सिद्धान्त' और 'स्वदेशी-व्रत' को नही छोडेगा। विदेशी माल कितना ही सुन्दर, मनोमोहक और सस्ता मिले, बल्कि मुफ्त मिले और प्रत्येक वस्तु के साथ ४-४ रुपये इनाम मिले तो भी यह समझकर कि वह जहर है, हमे उसे कभी भी अपनाना नही चाहिए। ऐसे समय यदि हम इस मोहजाल मे पडगये तो समझिये हमारी गुलामी की बेडिया और १५० वर्षो के लिए

मजबूत होगई। अपना बच्चा चाहे कितना ही घिनौना, काला-कलूटा और बदसूरत हो, लेकिन मा जिसप्रकार उसे प्रेम करती है उसी प्रकार अपने देश मे बना माल कितना ही मोटा-खुरदरा टेढा-मेढा या महगा हो तो भी उसी को खरीदने से स्वदेशी-धर्म का पालन होगा। कितने ही नासमझ लोग खादी की यह शिकायत करते है कि वह मोटी और खुरदरी होने से शरीर को चुभती है, लेकिन डेढ सौ वर्षों की यह गुलामी तो खादी से भी ज्यादा मोटी व खुरदरी है। वह उन्हे क्यो नही चुभती ? यह प्रश्न गाधीजी का उन लोगो से है। थोडे मे यही है कि यदि लोगो ने 'खादी' और 'स्वदेशी' वस्तु की प्रतिज्ञा करली तो फिर सुन्दर बढिया और सस्ते विदेशी माल का हिमालय भी हमारे देश मे आजाय तो भी लोग उसकी ओर फूटी आख भी नही देखेगे। खादी, स्वदेशी और राष्ट्र-सवर्धक कार्यक्रम—इन सबका रहस्य समझकर यदि हम उनके अनुसार चले तो 'विदेशी माल का आयात'[1] 'मुनाफेखोरी' 'चोरबाजार' आदि सब अनिष्टो की गति बिलकुल रुक जायगी। हम सबको यह मान-लेना चाहिये कि युद्धोत्तर विदेशी माल की जो बाढ हमारे देश मे आनेवाली है उसे खादी और स्वदेशी की प्रतिज्ञा के द्वारा जहा-का-तहा रोकदेना ही हमारा परम पवित्र कर्तव्य है।

हमारा कपडा महगा होगा, किन्तु यह बात ध्यान मे रखिए कि इग्लैण्ड ने हिन्दुस्तान के सफाईदार और सस्ते माल का अपने देश मे आना रोककर, उसकी बिक्री बन्द की और अपना खुदका महगा माल बिक्री के लिए बाजार मे रखकर अपने कपडे के धन्धे का सरक्षण किया। तब क्या हम अपने बुभुक्षित देश के लिए आना दो आना अधिक खर्च नही कर सकेगे ? जिसमे जरा भी बुद्धि है—फिर चाहे वह हिन्दू हो अथवा मुसलमान—उसे अपने देश-बन्धुओ के मरणोन्मुख स्थिति मे पडेहुए धन्धो के सरक्षण के लिए विदेशी माल का लेना बन्द करके स्वदेशी माल ही बरतना चाहिए।"[2]

१. डा० कुमारस्वामी कृत 'Art and Swadeshi' पृष्ठ ७

२. श्री एम. ए. चौधरी 'Swadeshi Movement' पृ० १०७-१०८

"तुलनात्मक दृष्टि से खादी मोटी-झोटी एव खुरदरी होगी, लेकिन वह अगर सचमुच इतने परिमाण मे और इसतरह बुभुक्षितो को अन्न देने मे सहायक होती है, जितना कि और कोई दूसरा गृह-उद्योग नही होरहा है, और साथ ही अगर वह ब्रिटिश माल के बहिष्कार को सफल बनाने मे सहायक होती है तो उस खादी के लिए कितनी ही कीमत देनी पडनेपर भी वह महगी नही पडेगी और उसके मोटे-झोटे अथवा खुरदरेपन पर किसी को शिकायत नही करनी चाहिए ।"[१]

विदेशी राष्ट्र हमारे उद्योग धन्धो को चौपट करने के लिए हमे अपना माल सस्ता ही क्या मुफ्त तक दे तो क्या हम उस मोह के शिकार होकर अपने बाल्यावस्था के उद्योग-धन्धो को जहा-का-तहा मार देगे ?

"एक देश का दूसरे देश की जनता के जीवन का—जीविका का—भाग परोपकार बुद्धि तक से अपनाना प्रतिष्ठायुक्त, वाच्छनीय और हित-कारक नही होगा । जिस प्रकार जिससमय हमने जन्म लिया उस समय के समाज की सेवा करना हमारे लिए अनिवार्य है, उसी तरह जिस देश मे हमारा जन्म हुआ उसी देश की सेवा करना और उसी देश से अपनी सेवा लेना, यही विश्वनियन्ता—परमेश्वर—की इच्छा है ।"

"प्रत्येक विषय मे इस स्वदेशी धर्म के पालन करने की आवश्यकता है । धर्म, सस्कृति, सामाजिक रीति-रिवाज, पारिवारिक व्यवस्था, व्यापार, उद्यम, भाषा, अर्थशास्त्र, राजनीति, पोशाक और कला-कौशल आदि सब बातो मे इस स्वदेशी-धर्म का पालन होना चाहिये ।"

"भिन्न-भिन्न समय मे और जनता के जीवन के भिन्न-भिन्न विषयो मे इस स्वदेशी-धर्म का पालन करते हुए उसपर आक्रमण होने की सम्भावना रहता है, अत उस-उस समय मे, उस-उस स्वदेशी धर्म की रक्षा करने के लिए भगीरथ प्रयत्न करना युग-धर्म है ।"[२]

१ 'बम्बई क्रानिकल' ६ दिसम्बर १९२८ का मुख्य लेख

२. काका कालेलकर 'स्वदेशी धर्म' (गुजराती) पृष्ठ ११

: ११ :

खादी और समाजवाद

"मै मानता हू कि कुछ समय के लिए खादी ने बहुत फायदा पहुचाया और भविष्य मे भी कुछ समय के लिए और लाभदायक हो सकती है, उस वक्त तक के लिए जबतक कि सरकार व्यापक रूप से देश-भर के लिए कृषि और उद्योग-धन्धो से सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्नो को ठीक तरह से हल करने के काम को खुद अपने हाथ मे नही ले लेती। हिन्दुस्तान मे इतनी ज्यादा बेकारी है कि जिसका कही कोई हिसाब ही नही है, और देहाती क्षेत्रो म तो आशिक बेकारी इससे भी कही ज्यादा है। सरकार की तरफ से इस बेकारी का मुकाबला करने के लिए कोई कोशिश नही कीगई है, न उसने बेकारो को किसी तरह की मदद देने की ही कोशिश की है। आर्थिक दृष्टि से खादी ने उन लोगो की थोडी-सी मदद जरूर की है, जो बिलकुल या कुछ हदतक बेकार थे, और क्योकि उनको जो कुछ मदद मिली वह उनको अपनी-अपनी कोशिश से मिली, इसलिए उसने उनके आत्म-विश्वासका भाव बढाया है और उनमे स्वाभिमान का भाव जाग्रत करदिया है। सच बात यह है कि खादी का सबसे अच्छा परिणाम मानसिक हुआ है। खादी ने शहरवालो और गाववालो के बीच की खाई को पाटने की कोशिश मे कुछ कामयाबी हासिल की है। उसने मध्यमवर्ग के पढे-लिखे लोगो और किसानो को एक-दूसरे के नजदीक पहुचाया है, दोनो के ही मन पर बहुत असर पडता है। इसलिए जब मध्यमवर्ग के लोगो ने सफेद खादी की पोशाक पहनना शुरू किया तो उसका नतीजा यह हुआ कि सादगी बढी, पोशाक की दिखावट और उसका गवारूपन कम होगया, और अब लोगो के साथ एकता का भाव बढा। इसके बाद जो लोग मध्यम वर्ग में ही नीची श्रेणी के थे उन्होंने कपडो के मामले मे अमीर लोगो की नकल करना छोडदिया और खुद सादी पोशाक पहनने

मे किमी तरह बेइज्जती समझना भी छोड दिया । सच बात तो यह है कि जो लोग अब भी रेशम और मलमल दिखाते फिरते थे, खादी पहनने-वाले उनसे अपने को ज्यादा प्रतिष्ठित और ऊचा समझनेलगे । गरीब-से-गरीब आदमी भी खादी पहनकर आत्मप्रधान और प्रतिष्ठा अनुभव करने लगा । जहा बहुत से खादी-धारी जमा होजाते थे, वहा यह पहचानना मुश्किल होजाता था कि इनमे कौन अमीर है और कौन गरीब और इन लोगो मे साथीपन का भाव पैदा होजाता था । इसमे कोई शक नही कि खादी ने जनता को काग्रेस के पास पहुचने में मदद की । वह कौमी आजादी की वर्दी होगई ।

"इसके अलावा, हिन्दुस्तान की कपडे की मिलो के मालिको मे अपनी मिलो के कपडे की कीमते बढाते जाने की जो प्रवृत्ति हमेशा पाई जाती थी उसको भी खादी ने रोका । पुराने जमाने मे तो हिन्दुस्तान की इन मिलो के मालिको को सिर्फ एक ही डर कीमते बढाने से रोकता था, और वह था विलायती—खास तौरपर लकाशायर के कपडो की—कीमतो का मुकाबला। जब कभी यह मुकाबला बन्द होगया, जैसाकि विश्वव्यापी महायुद्ध के जमाने मे हुआ था, तभी हिन्दुस्तान मे कपडो की कीमत बेहद बढगई और हिन्दुस्तान की मिलो ने मुनाफे मे भारी रकमे कमाई । इसके बाद स्वदेशी की हलचल और विलायती कपडे के बहिष्कार के पक्ष मे जो आन्दोलन हुआ उसने भी इन मिलो को बहुत बडी मदद पहुचाई, लेकिन जबसे खादी मुका-बले पर आडटी तब से बिल्कुल दूसरी बात होगई और मिलो के कपडे की कीमते उतनी न बढ सकी, जितनी वह खादी के न होने पर बढती । बल्कि सच बात तो यह है कि इन मिलो ने (साथ ही जापान ने भी) लोगो की खादी की भावना से नाजायज फायदा उठाया— उन्होने एसा मोटा कपडा तैयार किया, जिसका हाथ के कते और हाथ से बुने कपडे से भेद करना मुश्किल होगया । युद्ध की-सी कोई दूसरी ऐसी गैर मामूली हालत पैदा हो जाने पर, जिसमे विलायत के कपड का हिन्दुस्तान मे आना बन्द होजाय, हिन्दुस्तानी मिलो के मालिको के लिए कपड़ो की खरीददार पब्लिक से अब

उतना फायदा उठा सकना मुमकिन नही है, जितना कि १९१४ के बाद तक उठाया गया। खादी का आन्दोलन उन्हे ऐसा करने से रोकेगा और खादी के सगठन मे इतनी ताकत है कि वह थोडे ही दिनो मे अपना काम बढा सकता है।"[1]

समाजवादियो के दो भेद हैं, हम उनमे से एक को 'प्रबुद्ध' समाजवादी और दूसरे को 'एकान्तिक' समाजवादी के नाम से सम्बोधित करेगें। यह मानने मे कोई हर्ज नही है कि इनमे से प्रबुद्ध समाजवादियो की विचारसरणा प० जवाहरलाल नेहरू के उक्त विचारो मे व्यक्त होती है।

भारतीय जनता के जीवन मे खादी ने किस प्रकार आर्थिक, सामाजिक और मानसिक परिवर्तन पैदा कर दिया है, इसका जो सूक्ष्म विवेचन पण्डित जवाहरलाल नेहरू जैसे अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि के समाजवादी नेता ने किया है वह सबके मनन करने योग्य है। खादी की यह नानाविध कारगुजारी उन्हे स्वीकार है, किन्तु उन्होने अपनी इस स्वीकारोक्ति पर मर्यादा लगादी है। उनका कहना है कि "(१)हमारे स्वराज्य प्राप्त करने और(२)समाजवादी पद्धति से सब उद्योग-धन्धो की सुसगठित योजना—Planned Economy—तैयारकर (३) उसपर अमल करने तक ही हम खादी की उपयोगिता स्वीकार करते है।"

ऐसी दशा मे अब यह एक स्वतन्त्र प्रश्न उपस्थित होता है कि स्वराज्य मिलने के बाद खादी का क्या होगा? तात्कालिक प्रश्न यह है कि(१)स्वराज्य कब मिलेगा ? (२) उसके मिलने के बाद सब उद्योग-धन्धो की सुसगठित योजना तैयार करने मे और(३)उस योजना पर अमल शुरू होने मे कितना समय लगेगा ?—इन सब प्रश्नो का उत्तर समाजवादियो की परिभाषा मे देना हो तो वह इन शब्दो मे दिया जा सकता है कि "वह समय अन्तर्राष्ट्रीय और सासारिक परिस्थिति (International and world forces) पर निर्भर है। इसका मतलब यह हुआ कि वह समय वे निश्चित कर

१ प० जवाहरलाल नेहरू—'मेरी कहानी' (दूसरा सस्करण)अध्याय ६२ पृष्ठ ६३२ से ६३६।

नही सकते ।[१]

अभी खादी भारतीय जनता को पराधीनतारूपी खाई से निकालकर स्वराज्य-रूपी घाट पर लेजानेवाली डोंगी के समान है । पण्डित जवाहरलाल नेहरू जैसे समाजवादी नेता तक को यह विचार-सरणी स्वीकार है । ऐसी दशा मे सब समाजवादियो का यह पवित्र कर्त्तव्य होजाता है कि स्वराज्य मिलने के अनिश्चित काल तक ही क्यो न हो उन्हे पूरे उत्साह के साथ खादी के आन्दोलन को प्रोत्साहन देना चाहिए ।

अनेक लोगो ने अनेक कारणो से समाजवाद मे (१) काम्यवाद, (२) अनीश्वरवाद, (३) हिंसावाद और (४) यन्त्रवाद की अनेक कारणो से घालमेल! करदी है, किन्तु वास्तव मे समाजवाद के लिए इन चारो मे से एक भी अनिवार्य नही है । बहुत-से समाजवादी ऐसे है जो इनमे से पहले दो—काम्यवाद और अनीश्वरवाद— मे विश्वास नही करते, लेकिन सब

१. समय की इस अनिश्चितता और इन सारी परिस्थितियो को ध्यान मे रखकरही महात्माजी ने नीचे लिखे अनुसार जो निष्कर्ष निकाला है उसका आर हम पाठको का ध्यान आकर्षित करना चाहते है । वह कहते है—

"जबतक हिन्दुस्तान के गावो के १६ वर्ष से ऊपर के प्रत्येक सशक्त स्त्री-पुरुष के घर पर, खेत पर या कारखाने तक मे मजदूरी देनेवाली कोई एकाध अच्छी योजना तैयार नही होजाती, अथवा जबतक हिन्दुस्तान के गावो के बजाय काफी तादाद मे नये शहर खड़किये जाकर उनमें ग्रामीण जनता के नियमित जीवन की पूर्त्ति के लिए आवश्यक सब वस्तुओ के मिलने की व्यवस्था नही होजाती यह योजना जिस समय अमल में आनी हो तभी आवे—तबतक हिन्दुस्तान के करोडो ग्रामवासियो के हित को ध्यान मे रखनेपर केवल एक शुद्ध अर्थ-शास्त्रीय कसौटी पर कसेजाने पर खादी का ही सिद्धान्त ठीक उतरेगा ।"

(इन विचारो को इतने विस्तार से देने का मतलब यही है कि हम जान सके कि हम जितने दीर्घ-कालीन भविष्य की कल्पना करसके तबतक भी खादी का स्थान अटल रहने वाला है ।) हरिजन २० जून १९३६ ।

समाजवादी बाकी के दो—हिंसावाद और यन्त्रवाद—को समाजवाद मे गृहीत मानकर ही चलते है। लेकिन ऐसा होनेपर भी समाजवाद के मूल अर्थ मे इन दोनो का समावेश करना ही चाहिए, वास्तव मे यह बात नही है।

असल मे देखने पर—

(१) सम्पत्ति का जो मुख्य और सार्वकालीन साधन भूमि है उसपर समाज का स्वामित्व होना चाहिए—'सबै भूमि गोपाल की' होनी चाहिए।

(२) खान, रेलवे, जहाज आदि के जो मुख्य उद्योग व्यक्तिगत रूप से करने योग्य न होने के कारण सामूहिक रूप से करने पडते है उन सब पर सरकार का अधिकार होना चाहिए।

(३) जीवन की प्राथमिक आवश्यकता की चीजे—अन्न, वस्त्र, घर और औजार—इन्हे तैयार करने और खेती में पूर्तिकर सहायता देसकने-वाले उद्योग, ग्रामोद्योग की पद्धति से, सम्पत्ति का केन्द्रीकरण न कर सकने-वाले चरखे आदि औजारो के जरिये चलाये जाय। जिसने ऐसी योजना तैयार की है समझना चाहिए कि उसने समाजवाद की ही स्थापना की है।

"एकान्तिक' समाजवादी 'प्रबुद्ध' समाजवादियो से जुदेहोकर खादी पर अनेक तरह के आक्षेप करते है। उपरोक्त विवेचन के बाद वस्तुत इन आक्षेपो पर ध्यान देने का कोई कारण नही रहजाता, फिर भी अजानकार समाज के कानो पर बार-बार ये आक्षेप आते रहने के कारण उसकी दिशा-भूल होना सम्भव है, इसलिए थोडे मे उनपर विचार करलेना ठीक होगा।

ये आक्षेप नीचे लिखे अनुसार है—

(१) खादी जनता मे बढतीहुई दरिद्रता के कारण उत्पन्न होने-वाले असन्तोष को रोक रखती है और क्रान्ति की लहर के उभरने मे कुछ अशो मे रुकावट डालती है।

(२) खादी के कारण सादे रहन-सहन का अवलम्बन करना पडता है और इसप्रकार आवश्यकता बढाकर उच्च रहन-सहन का प्रचार नही होपाता।

(३) 'खादी' कोई अर्थशास्त्रीय सिद्धान्त नही है, और

(४) देश मे सर्वत्र यन्त्रो—मशीनो—का जाल बिछाने से ही उसकी

दरिद्रता का प्रश्न हल होनेवाला है। लेकिन खादी और चरखे ने आधुनिक प्रगति मे रुकावट पैदा करदी है, नही उसे पीछे हटा दिया है।

आइये, अब हम इनपर एक-एक पर क्रमश विचार करे।

पहला आक्षेप—खादी के कारण लोगोके पेट मे दो ग्रास जाते है,इससे क्रान्ति की लहर उभरने नही पाती। अगर लोग अधिक बुभुक्षित हो तो वे क्राति के लिए जल्दी ही तैयार होजाते है। यही इस आक्षेप का मतलब है।

हमारे मत से यह विचार-सरणी ही गलत है। हमे इग्लैण्ड-जैसे बलवान और सुसगठित राष्ट्र से लडना है, अत उससे लडने के लिए हमे उसके समान ही सुसगठित शक्ति का निर्माण करना चाहिये। देश मे इसप्रकार की—क्रान्ति करने की—शक्ति किस स्थिति मे पैदा हो सकती है? उसी मे, जबकि जनता मे कुछ जीवन होगा और उसका मन शुद्ध होगा।

अन्न के बिना मनुष्य की प्राण-शक्ति का लोप होता है। अन्न बिना प्राण निर्बल होजाता है, जिससे जनता सुव्यवस्थित सगठन होनेतक टिक नही पाती। अन्न के अभाव मे अगर किसी ने जनता को चिढाया तो कुछ व्यक्ति इक्की-दुक्की हत्या आदि कर बैठेगे और अपनी बची खुची सारी शक्ति खर्च कर डालेगे। इस कारण क्रान्ति के लिए आवश्यक सगठन होना असम्भव होजायगा। स्वय अन्न का अभाव कोई क्रान्ति-उत्पादक शक्ति हो नही सकता। उसके अभाव का अर्थ सब प्रकार की शक्ति का अभाव है। बगाल के अकाल ने यही सिद्ध किया है। कलकत्ता मे मिठाई की दुकाने सामने रहतेहुए अकाल पीडित स्त्री-पुरुषो की जाने चली जाती थी। लेकिन किसी की हिम्मत दुकाने लूटने की न हुई।

जो बात प्राण के सम्बन्ध मे है, वही मन के सम्बन्ध मे है। मन दुहरा है—विकारमय और बिचारमय। क्रान्ति के लिए सुव्यवस्थित पारदर्शी मन की आवश्यकता होती है। उसके लिए विचारमय मन चाहिए। अन्न के अभाव मे काम करनेवाला मन विकारपूर्ण होता है। इसप्रकार के विकार-मय मन के कारण ऊपर कहे अनुसार कुछ इक्की-दुक्की हत्याये हो जायगी, लेकिन सगठन नही होसकेगा। अन्न का अभाव विचारमय मन के जागृत होने

का साधन नहीं होसकता ।

खादी गरीब जनता के पेट मे दो ग्रास डालती है, इससे जनता का प्राण और मन दोनो ही कायम रहते है, इसलिए किसी भी तरह का सगठन करना सुगम होता है। अग्रेजी सरकार जैसे बलवान शत्रु से अहिंसात्मक रीति से लडने के लिए जिस सगठन की आवश्यकता है वह अन्न के अभाव मे निर्माण हो नही सकता ।

मद्रासप्रान्त के भूतपूर्व काग्रेसी प्रधानमत्री श्री राजगोपालाचार्य ने अपने एक भाषण मे जो यह कहा था कि 'खाली पेट कान बहरे करते है' वह बहुत भावपूर्ण है। इस सम्बन्ध मे ग्राम-सेवको का अनुभव ध्यान दिये जाने योग्य है। ग्राम-सेवक किसानो के हित के लिए स्वास्थ्य-सम्बन्धी अथवा बौद्धिक जागृति के कितने ही प्रयत्न करे, लेकिन वह किसानो की नजरो मे नही चढते । लेकिन जब हम चरखे द्वारा मजदूरी के रूप मे उनकी सहायता करते है, तब वे हमारी ओर अपनतत्व के भाव से देखती है, और उसके बाद हम उनसे जो कुछ भी बात करने को कहते है, वे उसे बडे उत्साह से, आनन्द से, और आत्म-विश्वास के साथ करते है ।

इससे खादी क्रान्ति के लिए विरोध-स्वरूप नही, बल्कि उसे पोषण देने वाली ही ठहरती है ।

दूसरा आक्षेप—इस समय हिन्दुस्तान मे करोडो लोग ऐसे है जिनके पास पेट-भर खाने के लिए भोजन नही, तन ढकने के लिए कपडे नही और गरमी, सरदी और बरसात से बचने के लिए छोटी-मोटी झोपडी तक नही है। क्या ऐसी स्थिति होते हुए भी उनकी आवश्यकता बढाने का उपदेश करना लगी हुई आग पर और तैल छिडकने के समान अनिष्ट नही होगा ? क्या इससे उनकी दरिद्रता और अधिक नही बढ़ेगी ?

जनता को अपनी आवश्यकता बढाने का उपदेश करनेसे पहले यह देख-लेना जरूरी है कि उसकी प्राथमिक आवश्यकताये पूर्णतया पूरी हो पाती है या नही । इसके सिवा आवश्यकताये बढाना और अनुचित आवश्यकताओ को छोडते जाना उच्च रहन-सहन का सूचक है । उदाहरणार्थ, किसान और

मजदूर, अपनी गरीबी का कारण बनाकर ताजी हरी शाक-भाजा न खाते हो तो वह खानी चाहिए और उनमे अगर बीडी तम्बाकू का व्यसन हो तो छोडदेना चाहिए। इसी तरह अगर उन्हे जुआ खेलने की आदत हो तो उनसे यह लत छुडवानी चाहिए और ऐसी पुस्तके लेने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए जिनसे उनके विचार सुसस्कृत हो। अगर वे शराब के व्यसन के शिकार होगये हो तो उससे उन्हे छुडाकर ऐसी योजना कीजाय जिससे वे छाछ, दूध अथवा शहद का सेवन करने लगे।

इसके सिवा जो आवश्यकताये उचित प्रतीत हो उन तक मे तारतम्य देखलेना चाहिए। उदाहरणार्थ अगर हम यह मानकर चले कि देश को अच्छे बोधप्रद और मनोरजक सिनेमा की आवश्यकता तो है, लेकिन उसको पूरा करने के लिए हमे एकाध एकादशी अथवा सोमवार का उपवास करना पडता है, तो हम तारतम्य का विचारकर उस आवश्यकता को तुरन्त छोडदे। उसीतरह अगर हमे ऐसा प्रतीत हो कि रेडियो द्वारा अपना मन बहलाव करना चाहिए, लेकिन अगर मच्छरो के दुख से घर मे लोग बीमार पडते हो तो हमारा कर्तव्य रेडियो के बजाय मसहरी लेना ही होगा।

खैर, अगर हम क्षण भर के लिए यह मानकर भी चले कि आवश्यकताये बढाना उच्च रहन-सहन का लक्षण है, तब प्रश्न यह होता है कि उन्हे कहा तक बढाया जाय ? उन पर पाबन्दी कब लगाई जाय ? वास्तव मे देखनेपर आवश्यकताये बढाना उच्च रहन-सहन का लक्षण नही है, प्रत्युत विवेकपूर्ण और सयमशील जीवन बिताना ही उच्च सस्कृति का परिचायक है। सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्रज्ञ श्री राधाकमल मुकर्जी कहते है—"भारतीय जनता अपने नैतिक आध्यात्मिक जीवन को अधिक शक्ति और गम्भीरता के साथ चला सकने के लिए अपनी स्वाभाविक आवश्यकताओ तक को बहुत कम करते जाने का प्रयत्न करती है।"[१]

१. राधाकमल मुकर्जी कृत "Foundations of Indian Economics" पृ० ४५८

लेखक ने इस पुस्तक में इस विषय पर विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। जिज्ञासु उसे मूल पुस्तक में देख सकते हैं।

तीसरा आक्षेप—खादी कोई अर्थशास्त्रीय सिद्धान्त नही है, इसका मतलब यह है कि आर्थिक दृष्टि से खादी पुसानेवाली नही है, उसके जरिये राष्ट्रीय सम्पत्ति मे कोई खास वृद्धि नही होती। लेकिन ऐसा कहना वस्तु-स्थिति के विपरीत है। किसानो के पास वर्ष-भर मे तीन-चार महीने काम नही रहता, ऐसी दशा मे यदि उन्होने फुरसत के समय का सदुपयोग कर चार पैसे की कमाई की तो उससे राष्ट्रीय सम्पत्ति मे वृद्धि ही होगी, उसके कारण थोडी-सी ही सही, बेकारी दूर होगी और राष्ट्र की दृष्टि से बेकारी का दूर होना अर्थशास्त्र का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है।

खादी के कारण समूचे राष्ट्र की सम्पत्ति का माप करने के लिए यह शक्ति एक अधिकृत साधन है।

जितनी तादाद मे खादी पैदा होती है, उतने ही परिमाण मे विदेशी माल की खपत मे कमी होती है, इस तरह भी राष्ट्र की सम्पत्ति मे वृद्धि होकर फिर उसका उपयोग राष्ट्र की उत्पादक-शक्ति बढाने मे होता है। इसलिए खादी खरीदनेवाले की जेब मे से दो पैसे अधिक जाने पर भी प्रकारान्तर से राष्ट्र की उत्पत्ति मे वृद्धि होने से उसकी सम्पत्ति की वृद्धि ही होती है। यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि अर्थशास्त्र व्यक्ति की सम्पत्ति का शास्त्र नही, राष्ट्र की सम्पत्ति का शास्त्र है। जो शास्त्र व्यक्ति के सकुचित नफे-नुकसान को न देखकर राष्ट्र की सम्पत्ति मे वृद्धि होती है या नही, इस बात पर नजर रखता है वही अर्थशास्त्र है। अपने को समाजवादी कहनेवाले लोग केवल व्यक्ति को ध्यान मे रख कर इस प्रकार का आक्षेप नही कर सकते।

खादी से पूजी का केन्द्रीकरण नही होता, मजदूरो का केन्द्रीकरण नही होता और सत्ता का केन्द्रीकरण नही होता। इससे अपने-अपने धन्धे मे प्रत्येक व्यक्ति को अपने निजी कौशल या कारीगरी के विकास करने की काफी स्वतन्त्रता और गुजायश रहती है। अत पूजीपति और मजदूर, मालिक और नौकर मे इस प्रकार का सम्बन्ध ही पैदा नही होने पाता, क्योकि इसमे कही भी बन्धन का वातावरण नही रहता। कारखाने की तरह १०

घटे का दिन या ६४ घटे का सप्ताह, ऐसे प्रश्न ही नही उठते। छुट्टी, गैरहाजिरी, तनख्वाह, बोनस या हडताल जैसे जो कि कारखानो मे हमेशा उठते रहते है, उनके उठने की सभावना ही नही रहती। उसी प्रकार कारखानो मे जिस तरह मजदूरो की या उनके बच्चो की शिक्षा के लिए स्कूल, उनकी दवादारू के लिए अस्पताल, और उनकी स्त्रियो के लिए प्रसूतिग्रह बनाने पडते है, खादी के नव-सस्करण से ऐसी किसी बात की जरूरत नही रहेगी। कारखानो मे हजारो स्त्री-पुरुषो के एक जगह रहने से उनका नैतिक आचार बिगडने की बहुत सभावना रहती है, लेकिन घर-घर चरखा और गली-गली करघा चल जाने मे ऐसी आपत्ति आने की कोई आशका ही नही रहती।

इसके अतिरिक्त महायुद्ध के दिनो मे केन्द्रीभूत कारखानो पर बम पडने से उनके समूचे नष्ट होने की जैसी बहुत सम्भावना रहती है वैसी धन्धो के विकेन्द्रित हो जाने से नही हो सकती, क्योकि देहात के मिट्टी के घरो की अपेक्षा बम की ही कीमत अधिक होती है। फिर ये घर तो हजारो लाखो गावो मे बिखरे पडे है अत शत्रु कहा-कहा बम गिरायेगा ? और यह बम गिराना उसे कैसे पुसावेगा भी ?

कारखानो मे पूजी और मजदूरो का केन्द्रीकरण हो जाने से पूजीपति मजदूरो को उनके श्रम के हिसाब से वेतन नही देते। वे नफा तो उनके श्रम पर कमाते है, लेकिन उस नफे के हिसाब से उन्हे मजदूरी नही देते। इस प्रकार पूजीपति कारखानेवालो की ओर से लगातार मजदूरो का शोषण होता ही रहता है। इसके अतिरिक्त पूँजी का, श्रम का, और सत्ता का केन्द्रीकरण होजाने से पक्के माल को खपाने और कच्चे माल को खरीदने के लिए प्रबल राष्ट्र दुर्बल राष्ट्रो पर कुछ अपराध न होते हुए भी हमला कर देते है और उनकी स्वतन्त्रता का अपहरण कर लेते है। एक बार दुर्बल राष्ट्र की स्वतन्त्रता का अपहरण किया कि फिर क्या कहना ? नाना प्रकार से उसका शोषण करके उसका जीवन असह्य बना देते है। लेकिन खादी के उद्योग मे इस प्रकार के शोषण की बिल्कुल गुजायश नही रहती।

उसमे अतिरिक्त मूल्य (Surplus Value) का प्रश्न ही पैदा नही होता। सारा 'मुनाफा, बोनस अथवा ब्याज' अधिकतर और अधिकाश मे समान-रूप मे श्रमजीवियो मे ही बट जाता है। दलाल की दलाली के लिए उसमे मौका ही नही होता। लोढना, धुनकी, चरखी आदि खादी के सब औजार कम कीमत के होने के कारण साधारण ग्रामवासी तक उन्हे खरीद सकता है। इसलिए इन साधनो को सामाजिक बनाने की कोई आवश्यकता ही नही रहती, और इस प्रकार इसमे रक्तशोषण के लिए मौका ही नही रहता।

इन सब दृष्टियो से विचार करने पर यह बात निर्विवाद ठहरती है कि खादी का आन्दोलन सर्वव्यापी होने के कारण वह—खादी—राष्ट्र की सम्पत्ति मे वृद्धि करती है।[१]

चौथा आक्षेप—यन्त्रवाद को माननेवाला प्रबुद्ध समाजवाद भी आज की खादी की उपयुक्तता को स्वीकार करता है। अगर वह आज समाज के लिए उपयुक्त है तो वह उसे पीछे किस तरह ले जाती है? अगर वह समाज को पीछे ले जाती है तो यह कहना चाहिए कि आज भी वह उपयुक्त नही है। लेकिन एकान्तिक यत्रवादी समाजवाद का वेश धारण करके जो यह कहता है कि आज की घडी खादी निरुपयोगी है वह बाह्यतः—ऊपर से—समाजवादी है, किन्तु भीतर से उसे देखा जाय तो वह यन्त्रवादी सिद्ध होगा। उसके लिए उत्तर यह है—

"यह बात अक्षरश सत्य है कि औद्योगिक क्रान्ति के बाद मनुष्य को प्रकृति के गुप्त रहस्यो का बोध हुआ है और उसमे छिपे पडे रत्न-भडार का उपयोग करने की उसकी शक्ति भी बढी है, लेकिन उस शक्ति का जितना विकास हुआ है उस परिमाण मे इस ज्ञान और शक्ति का मानव-जाति की सेवा के लिए उपयोग और नियन्त्रण करने के लिए जिस नैतिक साहस की आवश्यकता होती है, उसका विकास नही हुआ है।" ससार के युद्धमान राष्ट्रो मे विषैली गैस और हवाई जहाजो पर से बरसाये जानेवाले बमगोलो से मानवजाति का जो सहार होता है वह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है।

१. आचार्य कृपलानी "Gandhian way"

यूरोपवासियो को यन्त्रो—मशीनो—के कारण ही 'समाजवाद' सूझा है। औद्योगीकरण के दोष जानकर भी वे यन्त्रो—मशीनो—का व्यवहार करके ही उनका दोष दूर करने को कहते है। वे 'मशीन और उद्योग का केन्द्रीकरण' चाहते है, केवल रक्त-शोषण नही चाहते। वास्तव मे देखने पर हमे भारत की विशेष परिस्थिति को ध्यान मे रखकर ही विचार करना चाहिए

पश्चिमी देशो मे जिस तादाद मे औद्योगीकरण हुआ है उतना हिन्दुस्तान मे नही हुआ है। श्री जयप्रकाशनारायण अपने 'समाजवाद ही क्यो ?' नामक पुस्तक मे लिखते है—"यान्त्रिक दृष्टि से पिछडे हुए हिन्दुस्तान मे औद्योगीकरण करने के लिए स्वभावत ही कुछ समय लगेगा, इसलिए उसका समाजवादी राष्ट्रो मे तुरन्त ही रूपान्तर किया जा सकना सम्भव नही है।[1] जब वस्तुस्थिति यह है तब हिन्दुस्तान मे पहले तो यन्त्र-युग शुरू किया जाय और फिर दोष दूर करने बैठा जाय, क्या इस प्रकार अव्यापारेषुव्यापार करना उचित होगा ? क्या इसकी अपेक्षा औद्योगीकरण के दोष दूर कर अपनी सस्कृति के अनुकूल समाज के पुनर्संगठन का प्रयत्न करना हितकर नही होगा ?

हिन्दुस्तान के सारे उद्योग-धन्धो को अग्रेज सरकार ने चौपट किया है। अकेली खेती पर पेट भरनेवाले लोगो की सख्या ७३ फीसदी हो गई है। इनके पास वर्ष मे ३–४ महीने काम नही रहता। इसके सिवा हिन्दुस्तान के ५ करोड लोग और बेकार है। फिर हिन्दुस्तान के बैलो को भी कुछ काम मिलना चाहिए। (पश्चिमी देशो की तरह हिन्दुस्तान के लोग बैलो का उपयोग खाने मे नही करते।) इस समय हिन्दुस्तान की सब मिलों मे ५ लाख के लगभग मजदूर है। ऐसी दशा मे अगर हिन्दुस्तान मे औद्योगीकरण किया गया तो सारे लोग इतना माल तैयार करने लगेगे कि उसको खपाने के लिए दूसरे देश जीतने पडेगे। दूसरे देश जीतने का मतलब दुर्बल राष्ट्र का रक्त-शोषण करना ही होगा।

ऐसा एक भी यन्त्र-परायण राष्ट्र नही है जो बेकारी का शिकार न

१. पृष्ठ ७८

हुआ हो। इसके लिए अमेरिका और जापान को चीन पर आक्रमण करने की आवश्यकता प्रतीत हुई है। उत्पत्ति के केन्द्रीकरण के मूल मे मनुष्य के काम मे कमी करने की कल्पना है। यह केन्द्रीकरण ही जब बेकारी का निर्माण करता है, तब वह बेकारी के प्रश्न को किस तरह हल कर सकेगा? केन्द्रीकरण मनुष्य को पशु बनाता है। ये यन्त्र—मशीने—हमारे गुलाम होने चाहिए। मनुष्य को उन औजारो और उपकरणो को अपने अधीन रखना चाहिए। उद्योग-धन्धो का विभक्तीकरण होने पर ही यह सम्भव हो सकता है। लकाशायर की मिलो का केन्द्रीकरण होने के कारण हिन्दुस्तान मे बेकारी बढी है और विलायत मे कुछ करोडपतियो का निर्माण किया है। उसी के कारण हमारा राजनैतिक अध पतन हुआ है। इस समय हम अनेक हस्त व्यवसायो—हाथ के धन्धो—की मृत्यु-शैया के निकट बैठे हुए हैं। अगर हम उनका पुनरुद्धार कर सके तो करोडो बेकारो को काम, सुख और सम्पत्ति देने का यश हमे मिलेगा।[1]

ऊपर के विवेचन पर से यह प्रश्न पैदा होगा कि मशीने हमारी दरिद्रता के प्रश्न को हल करनेवाली है या खादी और ग्रामोद्योग बेकारो को काम देकर उन्हे जीवित रखनेवाले है? इसपर हमारा यह स्पष्ट उत्तर है कि हिन्दुस्तान की आबादी, हिन्दुस्तान की बेकारी, हिन्दुस्तान की खेती की परिस्थिति, हिन्दुस्तान में अबतक हुआ औद्योगीकरण और हिन्दुस्तान की परम्परा एव सस्कृति इन सबका सामूहिक रूप से विचार करने पर यह निश्चय है कि मनुष्यो को पशु बनाने वाली ये अजस्त्र मशीने और उत्पत्ति का अनावश्यक केन्द्रीकरण हिन्दुस्तान के लिए विघातक ही सिद्ध होगा। इसके विपरीत चरखे और ग्रामोद्योग द्वारा (उत्पत्ति) का केन्द्रीकरण न होकर (२) पैसे का समान बटवारा होगा, (३) रक्त-शोषण नही होगा, हस्तकौशल और बुद्धि के विकास होने का मौका मिलेगा और (५) जनता से प्रत्यक्ष सम्पर्क बढाकर राष्ट्र का सगठन करने मे सहायता मिलेगी।

१. श्री० कुमारप्पा—'हरिजन', १९ फरवरी १९३८

: १२ :

खादी पर होनेवाले दूसरे आक्षेप

खादी पर किये जाने वाले प्रमुख आक्षेपो का विवेचन पिछले दो अध्यायो मे किया जा चुका है। इस अध्याय मे दूसरे आक्षेपो पर विचार करेगे।

पहला आक्षेप—कुछ लोगो का कहना है कि हिन्दुस्तान कृषि-प्रधान देश है, ऐसी दशा मे खेती मे सुधार करने के बजाय चरखे और खादी के पीछे व्यर्थ ही क्यो पडा जाता है ?

इसका उत्तर यही है कि हिन्दुस्तान की खेती मे यह मुख्य दोष है कि यहा के खेतिहरो—किसानो—को बारहो महीने काम पूरा नही पडता। अत उसमे जो सुधार करने हो वे ऐसे होने चाहिए जिससे कि किसानो को बारहो महीने काम मिलता रहे—उनकी जबरदस्ती की बेकारी और आलस्य दूर होना चाहिए। 'बेकारी और आलस्य' शीर्षक अध्याय मे सयुक्त प्रान्त के मर्दुमशुमारी के अफसर मि० एडी का यह कथन हम देख ही चुके है कि हिन्दुस्तान की प्राकृतिक स्थिति ही ऐसी है कि इग्लैण्ड की, किसानो को बारहो महीने काम देने वाली मिश्र खेती यहा हो ही नही सकती।[1] हिन्दुस्तान की अधिकतर जमीन बजर है, अत खेती मे कुछ सुधार किये भी गये तो भी उनसे खेतिहरो—किसानो—की बेकारी दूर होगी, ऐसा प्रतोत नही होता। बहुत हुआ तो उनके काम के दिनो मे कुछ काम अधिक बढ जायगा, लेकिन वर्ष मे कम-से-कम तीन चार महीने तो बिना काम के बीतेगे ही। ऐसी स्थिति मे उस अवधि मे उन्हे कोई सा भी दूसरा सहायक धन्धा करनो ही होगा और जब उन्हे सहायक धन्धा करना ही है तो यह

१ इंग्लैण्ड की हवा ठडी होने के कारण वहा के खेतो मे बारहो महीने सील रहती है।

सिद्ध किया जा चुका है कि किसानो के लिए चरखे से उत्तम दूसरा और कोई धन्धा नही है।

सरकार ने खेती मे सुधार करने के लिए अपना कृषि-विभाग खोल रखा है। आज तक उस विभाग की ओर से खेती मे कितना सुधार हुआ? भारतीय ग्रामीण जनता की आर्थिक स्थिति मे कितनी उन्नति हुई? पूना और अहमदाबाद की प्रदर्शिनिया करने मे सरकार का क्या उद्देश्य था, यह प्रकट हो ही चुका है। मि० सेम्युल 'मिनिस्टर फार ओवर सीज ट्रेड ने लिंकन चेम्बर्स आव कामर्स के सामने, भाषण देते हुए कहा था—

"भारतीय किसानो की सहायता के लिए भारत-सरकार मदद देती है, और उसका सबसे अच्छा तरीका है उनके हाथो मे उन्नत खेती के औजार पकडा देना। नई पद्धति के औजार किस तरह काम मे लाये जाय, उन्हें किस तरह दुरुस्त किया जाय यह बताने के लिए ही सरकार ने कृषि और सहकारी विभागो का निर्माण किया है।

भारत सरकार, भारतीय जनता से विलायती औजार काम म लिवाने का यह प्रयत्न अभी ही करती हो सो बात नही है, सन् १८३२ मे कामन्स कमेटी के सामने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बोटेनिकल गार्डन के सुपरिन्टेण्डेण्ट डा० वालिक की गवाही हुई थी। उनसे यह प्रश्न किये जाने पर कि 'हिन्दुस्तान मे विलायती औजार काम मे लाये गये है, उस सम्बन्ध मे आपका क्या मत है?' उसका उन्होंने जो जवाब दिया था वह इस प्रकार है—

"यद्यपि अनेक दृष्टियो से बगाल के किसान अत्यन्त सीधे-सादे है और उनका रहन-सहन पुरानी पद्धति का है, तो भी लोग जितना समझते है उतने नीचे दर्जे के वे नही है। बार-बार यह बात मेरे देखने मे आई है कि अगर उनमे एकदम कोई सुधार करने का प्रयत्न किया गया तो उसका परिणाम कभी भी अच्छा नही हुआ। उदाहरणार्थ मुझे मालूम है कि ऊपर-ऊपर से जमीन कुरेदनेवाले और अत्यन्त उकता देने वाले बगाली हलो की बजाय विलायती हल शुरू किये गये थे, लेकिन उसका नतीजा क्या हुआ? जमीन के अत्यन्त नरम होने के कारण विलायती हल जमीन को खूब

नीचे से कुरेदकर मिट्टी को ऊपर लेआये,और इससे खेती को बहुत हानि हुई।[१]

पाठक स्वय विचार करे कि इसमे दोष किसका है। बगाली किसानो का, वहा की जमीन का, अथवा विलायती हलो का !

यह तो हुई सन् १८३२ की बात। इसी तरह की गवाही मि० मर्सर की हुई थी। मि० मर्सर अमेरिकन खेतिहर थे और उन्होने हिन्दुस्तान मे आकर यहा की खेती का अनुभव किया था। उन्होने अपनी गवाही मे कहा था—"अमेरिकन पद्धति हिन्दुस्तान के अनुकल नही है। हिन्दुस्तान के लोग अपने खेतो की शक्ति और जलवायु से परिचित है, इसलिए किसी भी यूरोपियन की अपेक्षा वे अधिक कम खर्च मे और मितव्ययिता या किफायत के ढग से खेती करते है।"[२]

हिन्दुस्तान की जमीन के छोटे-छोटे टुकडे होने और किसान के दरिद्री होने के कारण भारी-भरकम विलायती औजारो का बरतना उनके वश की बात हो ही नही सकती। "जो लोग यह कहते है कि भारतीय लोगो को कृषि-शिक्षा दी जानी चाहिए, उनकी नजरो के सामने हमेशा ट्रेक्टर (भाप से चलने वाला लोहे का हल), बनावटी खाद,और भारी-भारी खेन ही रहते है। भारतीय किसान इतने गरीब है कि भाप से चलनेवाले हल खरीदने की उनकी हैसियत ही नही है। उनकी जमीन के इतने छोटे-छोटे टुकडे होगये है कि उनका पाश्चात्य अनेक पद्धतियो का प्रयोग करना आर्थिक दृष्टि से पुसायगा नही।"[३]

भारतीय किसानो की स्थिति सुधारने के लिए सरकार को पहले तो जमीन के लगान की अपनी नीति और पद्धति इस तरह बदलनी चाहिए।

१. **रमेशचन्द्र दत्त, भाग २ पृष्ठ ५७**

२. **खादी प्रतिष्ठान का 'खादी मेन्युअल' भाग २ पृष्ठ ११०**

३, **ग्रेग** 'Economics of khaddar' **पृष्ठ १५० और म. रा. बोड्स 'ग्राम सस्था' प्रस्तावना पृष्ठ ४६, हरिभाऊ फाटक 'स्वदेशी की मीमांसा' पृष्ठ ८८**

इसी तरह पिछले अध्याय मे प्रो० काले की कही हुई यह बात पाठको को याद ही होगी कि फसल, खाद और बीज आदि का कितना ही सुधार करने पर भी उससे किसानो की स्थिति सुधरनेवाली नही है, जिससे कि वह किसानो के अनुकूल हो और साथ ही रेलवे की जगह नहरो की वृद्धि करनी चाहिए। किसान को हमेशा इस बात का डर बना रहता है कि पता नही उसका लगान कब और कितना बढ जायगा। इसलिए वे खेती मे ऐसे सुधार नही कर पाते जो अधिक काल तक टिक सके। एकाध वर्ष फसल की पैदावार न होने की हालत मे उन्हे लगान की सर्वथा छूट नही मिलती। ज्यादा-से-ज्यादा उस वर्ष उसकी वसूली स्थगित कर दी जाती है। खेत मे फसल के तैयार होते-होते ही सरकार और साहूकार के दूत उनके पीछे पड जाते है। उनके कारण जियो या मरो की-सी स्थिति हो जाती है। उन्हे जिस किसी भी भाव अपना माल बेचने की जल्दी करनी पडती है। इससे उनका बहुत नुकसान होता है, फसल का होना-न-होना एकसा हो जाता है। यह स्थिति बदली जानी चाहिए। इसके लिए ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे कि खेती का माल स्थिर चित्त और शान्ति के साथ और अच्छा भाव आवे एसे समय बेचा जा सके। इसके सिवा उन्हे सहायक धन्धे के रूप मे चरखे का आश्रय लेना चाहिए।

किसी एक सज्जन ने महात्माजी से यह प्रश्न किया था कि 'आप किसानो के सम्बन्ध मे अधिक क्यो नही लिखते?' उसपर उन्होने इस प्रकार उत्तर दिया था—"मै किसानो के सम्बन्ध मे इसलिए जानबूझकर अधिक नही लिखता, क्योकि मुझे ऐसा लगता है कि वर्तमान परिस्थिति मे हम उनके लिए अधिक कुछ कर-धर नही सकते—हमारे लिए वह सम्भव नही है। किसानो की स्थिति सुधारने के लिए हजारो बाते की जानी चाहिए। लेकिन जबतक शासन के सूत्र किसानो के प्रतिनिधियो के हाथ मे नही जा पाते, जबतक हमे स्वराज्य—धर्मराज्य—मिल नही जाता तबतक उनका सुधार कर सकना असम्भव नही तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। मै जानता हू कि अत्यन्त कष्टमय जीवन बिताते हुए भी किसान को

रोज थोडा-सा भोजन भी शायद ही मिल पाता है। इसीलिए मैने चरखे का पुनरुद्धार बताया है।"[१]

दूसरा आक्षेप—चरखे और खादी पर एक आक्षेप हमेशा यह किया जाता है कि क्या वर्तमान मशीन-युग मे चरखा और खादी का प्रचार करने के लिए कहना घडी की सुइयो को पीछे हटा देने के समान नही है? रेलगाडी के जमाने मे बैलगाडी की हिमायत करने के समान नही है?

ये आक्षेप करनेवाले यह समझ बैठे है कि एक तरह की सब मशीने समस्त मानव समाज के लिए हितकारक ही सिद्ध हुई है, किन्तु असल मे देखने पर पता चलेगा कि मशीनो ने हमारी कुछ सुख-सुविधाये बढा दी है, लेकिन साथ ही उन्होने मानव-समाज पर कुछ दूसरी मुसीबते भी ढहाई है। ऐसी दशा मे कोई भी विवेकशील पुरुष छाती ठोककर यह नही कह सकेगा कि मशीनो ने मानव-जाति की एक समान प्रगति ही की है।

इस सम्बन्ध मे महात्माजी की विचारसरणी भी विवेक पूर्ण ही है। वह यह नही कहते कि मशीन नामधारी सभी चीजे त्याज्य है। उनका कहना सिर्फ इतना ही है कि जो मशीने मनुष्यो को गुलाम बनाती है, उनके हाथ पैर, आखे आदि इन्द्रियो का विकास न होने देकर उनकी प्रगति को रोकती है, अर्थात् जो मशीने मनुष्यो को मशीन के समान बना देती है वे त्याज्य मानी जानी चाहिए। इसके बिपरीत जिन मशीनो मे मनुष्य के हस्तकौशल और बुद्धि के विकास का मौका रहता है, जिन यत्रो का मनुष्य अपनी इच्छानुसार नियन्त्रण कर सकता है अर्थात् मनुष्य स्वय इनका गुलाम न बनकर स्वय उन्हे ही अपना गुलाम बनाता है, उन्हे वह त्याज्य नही मानते।

"भारतीय अर्थशास्त्र की दृष्टि से यान्त्रिक साधन और उनमे किये जानेवाले सुधारो की दो विधिया हो सकती है—

(१) **पहली विधि**—श्रम करनेवाले मनुष्य या पशु के स्नायु को कम श्रम करना पडे और उनका समय बचे, इस दृष्टि से बनाये हुये यत्र। उदाहरणार्थ—चकरी अथवा फिरकी, चक्की, चरखा साईकल, सीने

१. 'यंग इण्डिया' भाग २, पृष्ठ १०२३

की मशीन, झटकासाल, इत्यादि

(२) **दूसरी विधि**—श्रम करनेवाले मनुष्य अथवा पशु की कमी-पूर्ति करनेवाली अथवा पशुओ की सख्या कम करनेवाली—

अथवा

मजदूरो के बुद्धि-चातुर्य या शरीर-बल का उपयोग करने के बदले उन्हें जीवितयन्त्र समझकर उनका उपयोग करनेवाले यत्र। उदाहरणार्थ आटे की चक्की, चावल तैयार करने का कारखाना, तेल निकालने की मिल, सूत और कपडो की मिले, भाप की सहायता से चलनेवाले हल (ट्रेक्टर), भाप अथवा बिजली की सहायता से चलनेवाले पानी के पप आदि।

इसमे पहले प्रकार के यत्र और उनमे होनेवाले सुधार आमतौर पर इष्ट है।

दूसरे प्रकार के यान्त्रिक साधन अथवा उनमे होनेवाले सुधारो का उपयोग करने मे विवेक और चतुराई मे काम लेना चाहिए।

(१) व्यक्तिगत साहस से न होनेवाले मगर सरकार की ओर से या सरकारी मदद से चलाये जानेवाले उद्योग। उदाहरणार्थ रेलगाडी, जहाज, महत्त्व की खाने, मिट्टी के तेल के कुए और उनके लिए—

(२) अत्यन्त सूक्ष्म काम देनेवाले साधन। उदाहरणार्थ घडी, टाइपराइटर, प्रयोगशाला के सूक्ष्म औजार, उनके लिए काम मे लाये जानेवाले औजार। इनके लिए यदि मशीन का उपयोग किया जाय तो इसमे दोष नही है।"[1]

इस विषय मे महात्माजी की विचारसरणी इस प्रकार है—"सीन की मशीने जारी हुई तो भी सुई ने अपना स्थान अथवा उपयुक्तता अभीतक गवाई नही है, 'टाइपराइटर' के जारी होने पर अभीतक हस्तलेखन का कौशल नष्ट नही हुआ है। जिस तरह होटलो के जारी होने पर भी घर-गृहस्थी मे चूल्हे जारी ही है, उसी तरह मिलो के होते हुए भी चरखे क्यों

१. किशोरलाल मशरूवाला' 'गाधी-विचार-दोहन', द्वितीय संस्करण पृष्ठ १२५-२६-२७

न चलाये जाये, इस सम्बन्ध मे शका करने का कुछ भी कारण रह नही जाता। सचमुच टाइपराइटर और सिलाई की मशीने कभी नष्ट भी हो जाये तो भी सुई और बरू की कलम हमेशा कायम रहेगी ही। सम्भव है मिलो की दशा कभी पलटा खा जाय, लेकिन चरखा राष्ट्र की एक आवश्यक वस्तु है।"[१]

बीसवी सदी के इस यान्त्रिक-युग मे महात्माजी खादी और चरखे का प्रतिपादन क्यो करते है, यह बात उपरोक्त सारे विवेचन पर से स्वच्छ शीशे की तरह स्पष्ट दिखाई दे जाती है। महात्माजी मशीनो के विरुद्ध नही है। अगर विरुद्ध होते तो क्या वह गावो मे दुरुस्त हो सकने और प्रति घण्टा २,००० गज सूत कात सकनेवाले चरखे की खोज करनेवाले को एक लाख रुपये पुरस्कार देने की तजवीज करते ?[२]

तीसरा आक्षेप—यह है कि अगर खादी बेकारो को काम देती है, गरीबो के पेट मे अन्न के दो ग्रास डालती है—वह अधे की लकडी, विधवा का सहारा और भूखे की रोटी है,—और लोगो का वास्तविक कल्याण करने-वाली है तो उसकी प्रगति इतनी मन्द क्यो है ? खादी से अगर लोगो का वास्तविक कल्याण हुआ होता, तो अभीतक उसका सपाटे से प्रसार होना चाहिए था। अगर वैसा प्रसार नही होता तो उसी तरह वह हितकारक भी नही है।

इसके उत्तर मे चरखा-सघ की ओर से प्रकाशित अको[३] का अध्ययन करने पर कोई भी यह बात जान सकता है कि लाखो लोगो की दृष्टि से विचार करने पर खादी की प्रगति मन्द होते हुए भी किसी दूसरे एकाध धन्धे की तुलना मे वह काफी अधिक है। उसकी—खादी—की मार्फत प्रतिवर्ष गाव मे अधिक-से-अधिक मजदूरो को अधिक-से-अधिक मजदूरी

१. 'यंग इण्डिया' भाग १, पृष्ठ ५०३

२. यन्त्रो-मशीनो सम्बन्धी अधिक विवेचन 'खादी और समाजवाद' अध्याय में देखिए।

३. 'अखिल भारतीय खादी कार्य' शीर्षक अध्याय।

बाटी जाती है। व्यवस्था खर्च कम-से-कम पडता है, और एक-एक पैसा मुख्यत वही के लोगो मे घूमता रहता है।

"खादी को (१) ग्रामीण लोगो के सुदृढ पूर्व सस्कार, (२) राजाश्रय का अभाव, (३) भयकर प्रतिस्पर्धा, (४) अर्थशास्त्र विशेषज्ञ कहे जाने वालो के प्रचलित मत और (५) स्वय खादीधारी लोगो की ओर से सस्ती खादी के लिए उत्तरोत्तर होने वाली माग, इन सब के बीच मे से अपना मार्ग निकालना पडता है। इसलिए इस शोक-भूमि के लिए सच्चा अर्थशास्त्र क्या है, ग्रामीण और शहरी लोगो को इस विषय की शिक्षा देना असली महत्त्व का काम है। यह अर्थशास्त्र धर्म-भेद से परे है। गावो मे रहने वाले हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी दरिद्रता और भूख से ओतप्रोत और ग्रस्त है। यदि कुछ अन्तर हुआ भी तो वह कम-अधिक तीव्रता का होगा।

"इसलिए मेरा कहना यह है कि एक-एक गज का मुकाबिला करने से मिलो के कपडे की अपेक्षा खादी महगी होगी, लेकिन सब ओर से और ग्रामवासियो की दृष्टि से देखने पर उच्चतम अर्थशास्त्र के आधार पर खादी ही व्यवहारत अद्वितीय वस्तु है। इस कथन का गहरा परीक्षण करते समय यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि "दूसरे ग्रामोद्योग का भी खादी मे ही समावेश होता है।"[१]

चौथा आक्षेप—खादी न पहनने वाले सरकारी नौकर हमेशा यह प्रश्न करते रहते है कि हम तो सरकारी नौकर ठहरे, ऐसी दशा मे हम खादी कैसे बरत सकते है ?

सरकारी नौकरो से हमारा यह निवेदन है कि आपने सरकार को अपना शरीर, मन और समय बेचा होगा, लेकिन इन सबसे अधिक मूल्य-वान वस्तु आत्मा आपने उसे नही बेची है। इस पृथ्वी पर किसी भी व्यक्ति के डर से अपने भाई-बहनो का बनाया हुआ कपडा बरतने से नही हिचकिचाना चाहिए। सरकार ने अगर हमारे भाई बहनो के हाथो तैयार हुआ कपडा

१ महात्मा गाधी—हरिजन २० जून १९३९ (महाराष्ट्र खादी पत्रिका, जून १९३९ पृ० २३)

पहनने की मनाई की हो तो कहना होगा कि हमारी गुलामी की हद ही हो गई। आज सरकार ने हमारी बहनो का तैयार किया हुआ कपडा पहनने की मनादी की और अगर स्वाभिमान-शून्य होकर उसे स्वीकार कर लिया, तो कल सरकार कदाचित् यह भी कहेगी कि तुम अपनी बहन की बनाई हुई रोटी मत खाओ। तब क्या तुम उस भोजन का तिरस्कार करोगे ? ऐसा हुआ तो स्वाभिमान-शून्य पशु का-सा जीवन बिताने की अपेक्षा सरकार के इस अन्यायपूर्ण कार्य का विरोध करते हुए प्रत्यक्ष मृत्यु का आलिगन करने का अवसर आये तो उसमे क्या बुराई है ?

हमारा विश्वास है कि कोई भी सच्चा अग्रेज अधिकारी खादी का व्यवहार करने मे आपत्ति कर नही सकेगा, और अगर आपत्ति की भी तो उससे छाती ठोककर अत्यन्त सरल और स्पष्ट यह प्रश्न किया जाय कि 'आपने अपने शरीर पर कौन से वस्त्र पहन रखे है ? क्या आपके शरीर पर फ्रेच अथवा जर्मन वस्त्र है ? अगर फ्रेच और जर्मन वस्त्रो के बजाय अग्रेजी वस्त्र ही हो तो उनसे यह स्पष्ट कहा जाय कि अगर आपको इग्लैण्ड के वस्त्र व्यवहार मे लाने मे शोभा और अभिमान अनुभव होता है, तो हम अपनी मा-बहनो के कते सूत का कपडे का इस्तैमाल करते है उसमे आपको आपत्ति क्यो होनी चाहिए ? सच्चे अग्रेज अधिकारी को यह मुह-तोड, स्वाभिमानपूर्ण और सजीव वाणी सुनकर सच्चा आनन्द होगा प्रश्नकर्ता के प्रति तिरस्कार व्यक्त करने के बजाय उल्टा वह उसकी सराहना और अभिनन्दन करेगा।

साराश यह कि सरकारी नौकरो ने सरकार को अपनी आत्मा बेच नही दी है, इसलिए उन्हे अपने भाई-बहनो के तैयार किये हुए वस्त्र पहनकर अपनी सजीवता का परिचय देना चाहिए।

पांचवां आक्षेप—खादी के विरुद्ध एक मनोरजक आक्षेप यह भी किया जाता है कि तुम लोग खादी का इतना तूमार बाधते हो, लेकिन यह तो बताओ कि जब इस देश मे खादी ही खादी थी, तब उसके होते हुए स्वराज्य क्यो चला गया ?

'खादी के होते हुए स्वराज्य क्यो गया ?'—इस प्रश्न के पूछने का मतलब 'स्वराज्य होते हुए स्वराज्य क्यो गया ?'—यह पूछना है ।

स्वराज्य मे खादी थी, अर्थात् स्वराज्य के होते हुए स्वराज्य खो बैठने के जो कारण पैदा हो गये थे, वही कारण खादी के होते हुए स्वराज्य गवाने मे निमित्त रूप हुए । जिस समय खादी के होते हुए स्वराज्य गया, उस समय खादी के पीछे जो सगठन और अनुशासन था वह नही के समान हो गया था । किसी का पापोश किसी के पैर मे रह नही गया था, राष्ट्र-हित नष्ट हो-चुका था और प्रत्येक व्यक्ति अपने नीच स्वार्थ-साधन के पीछे पडा हुआ था । जब हमारे ही लोग ईस्टइण्डिया कम्पनी के नौकर बनकर हमारे जुलाहो को सताने के लिए आगे बढे, तभी हमारे कारीगरो का सगठन नष्ट हुआ, विदेशी कपडा हमारे सिर पर सवार हुआ और हम स्वराज्य गवा बैठे । जिस समय हम स्वाभिमान से प्रेरित होकर सस्ता विदेशी कपडा बापरने का मोह छोड देगे, विदेशी कपडे का पूर्णत बहिष्कार कर खादी का व्यापक सगठन करेगे तब स्वराज्य मिलने मे देर नही लगेगी । खादी मोटी-झोटी होती है, जल्दी फट जाती है आदि आक्षेप आन्दोलन के आरम्भ-समय के है । अब तो खादी मे सब दृष्टियो से काफी उन्नति हो गई है । अब तो वह इतनी सुन्दर, मुलायम, सफाईदार और टिकाऊ पैदा होने लगी है कि ऐश्वर्यवान लखपती तक को वह शोभा दे सकती है । ऐसी दशा मे उस सम्बन्ध मे विचार करने जैसी कोई बात बाकी नही रह जाती । क्षण-भर के लिए अगर हम यह मान कर भी चले कि खादी मोटी-झोटी अवश्य है, लेकिन गुलामी उसकी अपेक्षा भी अधिक खुरदरी और कटीली है । ऐसी दशा मे अगर उस गुलामी को नष्ट करना हो तो आपको यह मोटी-झोटी खादी बरतनी ही चाहिए । इसके सिवा और कोई गति नही है । स्वराज्य-रूपी गुलाब का फूल हस्तगत करना हो तो खादी-रूपी काटे शरीर मे चुभने ही चाहिए ।

: १३ :

खादी-उद्योग तथा उसके द्वारा मिलनेवाली शिक्षा

हिन्दुस्तान मे अग्रेजो का राज्य स्थापित हुए करीब १५० वर्ष होगए। यह सरकार स्वय अपने को प्रजा का 'मा-बाप' कहलवाती है, लेकिन उसके १५० वर्ष के शासन-कार्य पर नजर डालने पर किसी भी निष्पक्ष मनुष्य को यह कहना ही पडेगा कि उसकी ऐसी कोई कारगुजारी नही है, जिससे वह अपने को ऐसा कह सके। गत १५० वर्षो मे हिन्दुस्तान की आर्थिक, औद्योगिक, सामाजिक, राजनीतिक और अधिक क्या शैक्षणिक दृष्टि तक से अत्यन्त अवनति हुई है।

गत १५० वर्षो मे अग्रेज सरकार ने हिन्दुस्तान के सिर्फ दस फीसदी लोगो को ही शिक्षा दी है—बाकी के ९० फीसदी लोग अशिक्षित ही रहे है। फिर, इन १० फीसदी को जो शिक्षा दी गई है, क्या वह भी टिकाऊ है? इन १० मे से ७ आदमी ज्यो-त्यो करके शुरू की चार कक्षाओ तक ही पढे-लिखे होते है, जिससे कुछ वर्षो बाद वे लोग जो कुछ भी पढा-लिखा होता है वह सब भूल जाते है। उनकी शिक्षा पर किया गया खर्च इस प्रकार व्यर्थ ही ठहरता है।

बाकी के दो-तीन फीसदी लोगो के उच्च शिक्षा लेने की जो बात हम कहते है उनका भी इस शिक्षा से क्या खास लाभ हुआ है? उसके द्वारा उनकी बुद्धि के दो अगो—तर्क और स्मरण शक्ति—का विकास हुआ होगा, लेकिन बुद्धि के इन दो अगो के विकास का ही अर्थ वास्तविक शिक्षा नही है। महात्माजी की व्याख्या के अनुसार हाथ, पाव, कान, नेत्र आदि शरीर के अवयवो और बुद्धि और हृदय का सर्वागीण विकास करनेवाली शिक्षा ही वास्तविक शिक्षा है।

हिन्दुस्तान मे अग्रेजो द्वारा प्रच[illegible] (१) व्यक्ति,

(२) समाज (३) राष्ट्र (४) सस्कृति और (५) हृदय के विकास आदि सब दृष्टियो से निकम्मी सिद्ध हुई है। इस शिक्षा के कारण जिस तरह मनुष्य मे 'मै जहा लात मारूगा वही पानी निकल आयेगा' ऐसा आत्म-विश्वास पैदा नही हुआ, उसी तरह उसमे यह बोध उत्पन्न नही होता कि मै समस्त समाज की एक इकाई हू, उसमे पडौस की गली मे आग लगने पर बालटी लेकर उसे बुझाने जाने की बुद्धि पैदा नही होती। गुलामी के कारण चारो ओर से देश की प्रगति रुकी हुई है, गुलामी की जञ्जीर तोड कर स्वतन्त्र हुए बिना अपनी सर्वांगीण प्रगति और अपने सद्गुणो का परमोच्च विकास हो सकना सम्भव नही, वर्तमान शिक्षा-पद्धति से हृदय मे इन बातो के लिए लगातार तलमली पैदा होकर देश के लिए मुझे अपने-आपको खपा देना चाहिए, कष्ट सहन करना चाहिए और प्रसग उपस्थित होने पर मुझे मर तक जाना चाहिए यह भावना पैदा नही होती।

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्॥

अपनी इस सस्कृति के प्रति आदर न रख कर 'विदेशी जो कुछ है वह सब अच्छा है' यही सिखाने वाली शिक्षा हमे मिली है। इसके सिवा मै कौन हू, कहा से आया हू, मुझे जाना कहा है और इस जन्म मे मेरा कर्तव्य क्या है, इन बातो के ज्ञान से हृदय का विकास होता है, लेकिन वह शिक्षा मुझे मिलती ही नही है।

वर्तमान शिक्षा-पद्धति की आलोचना करनेवालो पर यह आक्षेप किया जाता है कि अग्रेजो की प्रचलित की हुई शिक्षण-पद्धति इतनी दूषित है तो उसमे लो० तिलक, विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र बोस आदि महान् पुरुषो का निर्माण किस तरह हुआ ? सक्षेप मे उसका उत्तर यही है कि—

(१) इन महान् पुरुषो के निर्माण का श्रेय इस शिक्षा-पद्धति को नही, उनके प्राकृतिक गुणो और आनुवाशिक सस्कारो को ही देना चाहिए। वे जिस किसी भी परिस्थिति मे रहते अपनी विशेषता की छाप बिठाकर चमके बिना न रहते।

(२) इसके सिवा, (१) डेढ सौ वर्ष, (२) हिन्दुस्तान की आबादी के अनुसार उद्योग के साथ-साथ ज्ञान की गूथन गूथी जायगी। और (३) शिक्षा-पद्धति पर हुआ सारा खर्च इन सब बातो को ध्यान मे रखने पर लो० तिलक अथवा श्री जगदीशचन्द्र बोस जैसे अगुली पर गिने जाने वाले कितने ही लागो का निर्माण होना वर्तमान शिक्षा-पद्धति के लिए उत्तमता का प्रमाण-पत्र न होकर उसके विरुद्ध निन्दा-व्यञ्जक प्रस्ताव ही ठहरता है। अगर यह शिक्षा-पद्धति हितकर होती तो डेढ-सौ वर्ष की इस अवधि मे अनेक तिलक अथवा बोस पैदा हुए होते। लेकिन ऐसा हुआ नही,—अत यह दोष शिक्षा-पद्धति का ही है, इस बात को कोई भी तटस्थ व्यक्ति स्वीकार किये बिना न रहेगा।

अग्रेजो की जारी की हुई शिक्षा-पद्धति को सदोष जानकर राष्ट्रीय नेताओ ने समय-समय पर उसके सुधार का प्रयत्न किया है। उन्होने राष्ट्रीय शिक्षा के जो प्रयत्न किये उनसे राष्ट्र का कदम आगे ही बढा है। उनके इन प्रयत्नो के तीन विभाग किए जा सकते है—

पहला प्रयत्न सन् १९०५ मे प्रो० बीजापुरकर और लो० तिलक ने किया। इन लोगो ने तत्कालीन शिक्षा-पद्धति की हानिकारक बातो को छाट कर उन्हे दूर करने का निश्चय किया और तदनुसार केवल उतना ही सुधार किया। इसका अर्थ यह हुआ कि उन्होने पुरानी पद्धति को ठीक कर नवीन शिक्षण-पद्धति जारी की।

उसके बाद सन् १९२० मे असहयोग का आन्दोलन हुआ। उस समय कुछ राष्ट्रीय सस्थाये स्थापित हुईं। इन सस्थाओ मे हमें अपने देश और अपनी सस्कृति के प्रति आदर प्रदर्शित करना सिखाया गया। गत १८ वर्षों मे हम इतना ही काम कर सके हैं।

परन्तु सन् १९३७ में हमने इससे भी आगे बढकर शिक्षा के सम्बन्ध मे तीसरा महत्वपूर्ण कदम आगे बढाने का निश्चय किया। यह कदम था उद्योग के साथ ज्ञान को गूथकर लोगो को स्वावलम्बी और सुसगठित बनाना।

राष्ट्रीय शिक्षण का यह तीसरा और सबसे अधिक महत्व का कदम

है । अंग्रेज सरकार की शिक्षण पद्धति केवल 'तर्क और विचार शक्ति' का ही विकास करती है । इसलिए उसे 'केवल पद्धति' नाम देना ठीक होगा । इस पद्धति से विद्यार्थियो को अव्यक्त शिक्षा मिलने के कारण वे वास्तविक ज्ञान ग्रहण कर नही सकते । जो कुछ भी अक्षरीय ज्ञान मिलेगा वह निर्वीर्य ही रहेगा । इस ज्ञान से उनके हाथ से कभी भी कोई पराक्रम हो नही सकेगा । इस ज्ञान का देनेवाला शिक्षक पश्चिमवासियो के विचार केवल उधार ले लेता है और वही विद्यार्थियो को देता है । इस शिक्षक का काम निरे 'पोस्टमेन' अथवा 'मुकादम' के समान है । इस शिक्षा से स्वय शिक्षको के जीवन मे कुछ चैतन्य—कुछ तेज—उत्पन्न ही नही हुआ । ऐसी दशा मे वह विद्यार्थियो मे कहा से पैदा होगा । जिस तरह अनाज नापने की पायली एक तरफ से अनाज भरकर दूसरी ओर खाली करती है और स्वयं निर्लिप्त ही रहती है, वही हाल इस 'केवल पद्धति' का हुआ है ।

अब हम यह देखेगे कि अगर कुछ घण्टे बौद्धिक शिक्षा और उसी के साथ जोडकर कुछ घण्टे औद्योगिक शिक्षा दी जाय तो क्या परिणाम होगा । इस तरह बौद्धिक शिक्षा का समर्थन करने वाले और औद्योगिक शिक्षा की महत्ता का बखान करनेवाले दोनो ही तरह के लोगो को सन्तुष्ट करने के प्रयत्न मे दोनो ही असन्तुष्ट रहेगे । उदाहरणार्थ, बौद्धिक शिक्षा के साथ केवल बढईगिरी के, रदा किस तरह चलाया जाय, बसूला किस तरह काम मे लाया जाय, करवत किस तरह चलाई जाय, आदि की शिक्षा दी गई तो उससे विद्यार्थी स्वाश्रयी, स्वावलम्बी और सतेज नहीं निकलता । जिस समय देश मे "औद्योगिक शिक्षा" का वावेला मचा था, उस समय औद्योगिक शिक्षा की ओर झुकाव रखने वाले कुछ स्कूल (Industrial basic Schools) खुले थे । लेकिन उनके कारण विद्यार्थियो की 'त्रिशकु" की-सी स्थिति हो गई । उन्हे बौद्धिक शिक्षा तो पूरी मिली ही नही और औद्योगिक शिक्षा जो कुछ भी मिली वह भी मामूली । गडूलना लेकर चलने वाले बच्चो की-सी विद्यार्थियो की स्थिति होगई । उसके कारण उनमे जोर

से भागने की शक्ति पैदा नही हुई। हम इस पद्धति को 'समुच्चय पद्धति' के नाम से सम्बोधित करेगे।

अब उद्योग द्वारा शिक्षा देनेवाली वास्तविक महत्व की तीसरी पद्धति की ओर नजर डालना आवश्यक है। इस पद्धति मे उद्योग और शिक्षा मे अद्वैत भाव रहेगा—उद्योग के द्वारा ज्ञान सम्वर्धन की व्यवस्था रहेगी। इस पद्धति को 'समवाय पद्धति' नाम देना उपयुक्त होगा। अब यह प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक है कि इस 'समुच्चय' और 'समवाय' पद्धति मे अन्तर क्या है ?

'समुच्चय पद्धति के कारण विद्यार्थियो की स्थिति एक चक्की पर दूसरी चक्की अथवा एक पीपे पर दूसरा पीपा रखने जैसी हो जाती है। जिस तरह एक पीपा दूसरे पीपे से जुड नही जाता उसी तरह बौद्धिक ज्ञान औद्योगिक ज्ञान के साथ समरस नही होता। लेकिन 'समवाय' पद्धति के कारण बौद्धिक और औद्योगिक ज्ञान अनजाने ही एक दूसरे-से समरस होते है, एकजीव होते है,उन दोनो का सबध अद्वैत होता है। इस पद्धति द्वारा व्यक्त और अप्रत्यक्ष ज्ञान होता है, इसलिए जीवन पर उसकी स्थायी छाप पडती है। इस पद्धति द्वारा दी जानेवाली शिक्षा व्यक्त और प्रत्यक्ष स्वरूप की होती है, इसलिए आधिभौतिक शास्त्र के अध्ययन से बुद्धि मे जो विश्लेषणात्मक शक्ति पैदा होती है वह ऐसे ज्ञान से उत्पन्न होगी। इससे विद्यार्थियो की जिज्ञासा के विकास के लिए काफी मौका मिलेगा। जो ज्ञान प्राप्त होगा वह बुद्धि पर अधिक दबाव न पडते हुए अनजान मे ही मिलेगा।

यह शिक्षा-पद्धति अबतक के शिक्षण-विषयक अनुभव का अन्तिम फल है। देश, काल और परिस्थिति को ध्यान मे रखकर इस शिक्षण-पद्धति की योजना की गई है। यह पद्धति जीवन की और राष्ट्र की आवश्यकताओ की पूर्ति करनेवाली है। इसलिए इस शिक्षण के द्वारा ही हमारा जीवन विकसित होगा। यह शिक्षण-पद्धति जीवन-निष्ठ होगी। इस शिक्षण-पद्धति में कौन-कौन से विषय होने चाहिए और कौन-कौन-सी भाषा सिखाई जानी चाहिए, इसका निर्णय जीवन-शास्त्री करेगे। 'हमे सम्पूर्ण और

प्रामाणिक जीवन बिताना है', इस बात का विचार करके यह शिक्षण-पद्धति निश्चित की गई है। हमे जीवित रहना है, इसलिए जीवित रहने के मार्ग मे जितने विषय आते है पहले हमे उनका अध्ययन करना है। जिस शिक्षण द्वारा मेरा जीवन पुष्ट नही होता, वह शिक्षा ही नही है, साथ ही वह जीवन भी व्यर्थ है। इस शिक्षण-पद्धति द्वारा 'जीवन और शिक्षण' और 'धर्म और जीवन' एक-दूसरे मे बेमालूम तौर पर ग्रथित होनेवाले है। इस शिक्षण-पद्धति से विद्यार्थी पहले हाथ और अन्य इन्द्रियो का उपयोग करना सीखेगे और बाद को उनके मन और हृदय का विकास होगा। इसी तरह उसकी दृष्टि पहले स्कूल की ओर, फिर समाज की ओर और बाद को ईश्वर की आर प्रेरित होगा। सक्षेप मे, यह योजना इस प्रकार की है कि इसमे (१) उद्योग, (२) अपने आस-पास की कुदरती हालत और (३) सामाजिक स्थिति इन तीनो के द्वारा उसे शिक्षा मिलेगी।

(१) खेती, (२) बढईगिरी और (३) खादी मुख्यत ये तीन धन्धे ऐसे है जो उपरोक्त सब प्रकार की कसौटियो पर खरे उतर सकते है।

शिक्षण की व्यापकता खेती मे अधिक है, क्योकि इस धन्धे की स्थिति ऐसी है कि विद्यार्थी को ऋतु, और मौसम आदि की जानकारी कराते समय सर्वसामान्य विज्ञान का भी परिचय हो जायगा, लेकिन खेती की शिक्षा मे पहले पाच वर्ष मे विद्यार्थी खेती से कोई कही जा सकने जैसी आमदनी निकाल नही सकेगा, वह सिर्फ थोडा शाक-पात पैदा कर सकेगा और जमीन की पैराई और पौधो की बाढ आदि से सम्बन्धित कुछ प्राथमिक तत्त्व समझ लेगा। उत्पादक खेती की शिक्षा छठे वर्ष से ही शुरू करनी होगी।[1]

बढईगिरी—सुतारी—के सम्बन्ध मे भी शुरू के कुछ वर्षो मे विद्यार्थी जो माल तैयार करेगे वह इतना ऊबड-खाबड होगा कि उसकी बिक्री होनी कठिन होगी।

छोटे बच्चो के हाथो ऐसा माल, जिसकी बिक्री अच्छी हो सके, तैयार कराने की दृष्टि से खादी का उद्योग जितना सुरक्षित और सुलभ ठह-

१. 'वर्धा शिक्षण-पद्धति का पाठ्यक्रम' पृष्ठ ८५

रेगा उतना सुरक्षित, सुलभ और उतने व्यापक परिमाण मे किया जा सके ऐसा और कोई दूसरा उद्योग बता सकना कठिन है, क्योकि उसमे सात वर्ष का बालक अगर मोटे-से-मोटा सूत भी कातेगा तो उसकी भी निवार आदि बुनवाकर उसे बेचना मुश्किल नही होगा। इसके विपरीत विद्यार्थियो की अगुलियो का कौशल अधिकाधिक बढता दिखाई देगा। इस मुद्दे को ध्यान मे रखकर देखा जाय तो कृषि के बाद खादी का उद्योग ही अधिक-से-अधिक व्यापक ठहरेगा।

हिन्दुस्तान आज कपडे के सम्बन्ध मे परावलम्बी है, इसलिए इस उद्योग के द्वारा शिक्षा देने मे आर्थिक प्रतिस्पर्धा का भी प्रश्न खडा नही होता।

अवश्य ही खेती और बढईगिरी —सुतारी—के जरिये भी शिक्षा देना जरूरी है और इसलिए उनके लिए भी कुछ स्कूलो की जरूरत होगी ही, लेकिन हमारी दृष्टि मे अगर कोई उद्योग ऐसा है जो अधिकाश गावो के स्कूलो मे बेखटके शुरू किया जा सके, तो वह खादी का उद्योग ही है। इस उद्योग मे व्यापकता और विविधता होने के कारण उसमे से ज्ञान की भिन्न-भिन्न शाखाओ मे प्रवेश करने के लिए अनेक मार्ग मिल जाते है।

अब यह बताने के पहले कि उद्योग के साथ ज्ञान का गुम्फन किस प्रकार किया गया है, यह बता देना चाहिए कि—

(१) इस विषय की व्यापकता के मान से यह विवेचन सक्षिप्त ही रहेगा, क्योकि विद्यार्थी सात वर्ष मे जो शिक्षा प्राप्त करेगा उसका पूरा-पूरा रूप इस पुस्तक के दो-तीन पृष्ठो मे किस तरह दिया जा सकेगा।

(२) नीचे जिन विषयो का दिग्दर्शन कराया गया है वह केवल उदाहरण स्वरूप ही है। उसपर से केवल विषय की व्यापकता की कल्पना और शिक्षा की दिशा मालूम हो सकेगी।

(३) इस शिक्षा-पद्धति के द्वारा समय-पत्रक (टाइमटेबल) के निश्चित ढाचे के मुताबिक अर्थात् 'भूगोल' का विषय समाप्त होते ही 'गणित' और 'गणित' के समाप्त होते ही 'व्याकरण' इस प्रकार मशीन की तरह शिक्षा

नही मिलेगी। इस पद्धति के द्वारा तो प्रवाह, क्रम के अनुसार जैसे-जैसे विषय आते जायगे और विद्यार्थी जैसे-जैसे प्रश्न पूछता जायगा उसी के अनुसार उद्योग के साथ-साथ ज्ञान की गूथन गूथी जायगी।

(४) देश मे यह शिक्षा पद्धति नई-नई ही प्रचलित होने जा रही है। अभी वह प्रयोगावस्था मे होगी, आगे चलकर उसके सम्बन्ध मे जैसा-जैसा अनुभव होता जायगा, उसके अनुसार उसमे परिवर्तन किया जाता रहेगा। जिस तरह महात्माजी की अभी तक चलाई हुई प्रत्येक प्रवृत्ति को उपहास, तिरस्कार, उदासीनता, पसन्दगी और स्वीकृति आदि स्थितियो के बीच होकर गुजरना पडा है, वही हाल इस शिक्षा-पद्धति का भी होने वाला है।

(५) इसके सिवा विद्यार्थियो मे जिज्ञासा शोधक-बुद्धि, कष्ट-सहन करने का साहस, स्वावलम्बन की वृत्ति तथा स्वदेशाभिमान आदि सद्गुणो का विकास किस प्रकार होगा, नीचे के सक्षिप्त विवेचन से इन बातो की सम्यक कल्पना बहुत अधिक नही हो सकी। उसके लिए विद्यार्थियो को उस शिक्षा-क्रम में होकर गुजरना चाहिए। शिक्षको के चरित्र-बल पर इस शिक्षा की सफलता निर्भर रहेगी। शिक्षको का चरित्र उज्ज्वल होने पर ही जीवन के इतिकर्तव्य आदि विषयो का ज्ञान हो सकता है।

इतनी भूमिका के बाद अब शिक्षण-पद्धति पर आइये।

आरम्भ मे यह कहना होगा कि अग्रेजो ने जो शिक्षा-पद्धति प्रचलित की उसका उपयोग केवल शहरो के भद्र लोगो मे ही हुआ। इसका मतलब यह हुआ कि यह पद्धति शहरी ठाठ-बाट की है। उद्योग द्वारा शिक्षा देने की यह पद्धति देश के ९० फीसदी अपठित और गाव मे रहनेवाले लोगो के ही लिए है। देश, काल और परिस्थिति को ध्यान मे रखकर सर्व-साधारण जनता के कल्याण की दृष्टि से इस पद्धति की योजना की गई है।

इसके सिवा एक और महत्त्वपूर्ण मुद्दे का उल्लेख करना आवश्यक है। यह बात निर्विवाद है कि विद्यार्थी को पूरे सात वर्ष खादी के उद्योग द्वारा शिक्षा दी जाने से उसे खेत से कपास की सुन्दर बोडी से लेकर उसका वस्त्र तैयार होने तक की विविध प्रकार की क्रिया-उपक्रियाओ की

सागोपाग शिक्षा मिलेगी और वह स्वय अपने पैरो पर खडा होकर अपना निर्वाह चलाने मे समर्थ होगा । इस प्रकार पेट का सवाल होने के भिन्न-भिन्न विषयो का विविध ज्ञान उसे मिलेगा । उनमे के कुछ विषयो का साधारण दिग्दर्शन नीचे किया जाता है । यहाँ पर खादी की विभिन्न क्रिया-उपक्रियाओ की सविस्तर जानकारी देना अप्रासगिक होने के कारण उसकी चर्चा नही की गई ।

खादी के उद्योग द्वारा शिक्षा देते हुए (१) खेती, (२) यन्त्र-शास्त्र, (३) इतिहास, (४) भूगोल, (५) समाज-शास्त्र, (६) अर्थ-शास्त्र, (७) गणित, (८) भाषा, (९) चित्र-कला, और (१०) विज्ञान-शास्त्र आदि विषयो का विवेचन करना आवश्यक है ।

(१) खेती—खेत से कपास चुनते समय उसमे कीटी, पत्ती, कचरा आदि बिल्कुल न रहने पावे इस बात की पूरी सावधानी रखी जाने पर ही लोढने, पिंजाई और कताई आदि सब क्रियाये सुगम होती है, कपास की जड़िया, रोजिया, एन, आर, बनिला, कम्बोडिया, धारवाडी, भड़ौच अथवा नवसारी आदि अनेक जातियाँ होती है । कौनसी कपास के लिए किस तरह की जमीन की आवश्यकता है, वह कौनसी ऋतु मे होती है, उसकी बुवाई किस तरह की जाती है, निदाई-कटाई किस समय होती है, एक एकड जमीन मे औसत कितने बीज की जरूरत होती है, कितने दिनो मे वह पककर तैयार होती है, उसी तरह धागे की दृष्टि से रुई के दो प्रकार होते है, एक छोटे और दूसरे लम्बे धागे की । इसके सिवा देव-कपास के पेड होते है । उसके भिन्न-भिन्न प्रकार कौन से होते है; उसकी खेती किस तरह की जाती है, किस ऋतु मे की जाती है, देव-कपास के एक पेड पर मे वर्ष के अन्त मे कितनी कपास मिलती है, कपास मे कौनसा कीडा लगता है, कब लगता है और उसको निर्मूल किस तरह किया जाय आदि खेती-सम्बन्धी विविध प्रकार की जानकारी बताई जायगी ।

(२) यन्त्रशास्त्र (Mechanics) कच्ची कपास या रुई से पूरा कपडा बुने जाने तक लोढ़ना, धुनकी, बारडोली चर्खा, यरवदा चक्र तकली,

तनसाल, खड्डी आदि छोटे-मोटे औजारो का उपयोग करना पडता है। इन सब औजारो के तैयार करने मे उनमे उनके छोटे-मोटे अगो-उपागो की अत्यन्त कौशलपूर्वक योजना की गई होती है। 'मगन' चरखे और करघे म पावदी होती है, पुराने लोढने मे पच्चर लगाने की योजना होती है। मोठिया मे गिर्री ठीक बीच मे घूमनी चाहिए, लोढने और चर्खे मे घर्षण नही, इसलिए बॉल-बे-अरिग की योजना की जाती है। लोढने और सावली-चक्र मे 'गतिचक्र' लगा देने से कातने की गति मे काफी अन्तर पड जाता है। यरवदा चक्र के दो चक्रो मे विशेष प्रकार का अन्तर रखना आवश्यक है। धुनकी का मध्यबिन्दु साधने के लिए पखे की योजना की हुई रहती है। तकली का तकुआ भारी अथवा हलका हुआ तो कातने पर उसके जुदे-जुदे परिणाम होगे। तकली की चकई गोल और बीच की डण्डी ठीक मध्य पर ही होनी चाहिए आदि यन्त्र-शास्त्र की जानकारी इस खूबी के साथ दी जा सकेगी कि जिससे विद्यार्थी की जिज्ञासा और शोधक—आविष्कारक—बुद्धि[1] जाग्रत होगी।

१. सुप्रसिद्ध लेखक प्रिन्स क्रोपाटिन का मत है कि "बड़े-बडे विज्ञान-शास्त्री तक जो आविष्कार नही कर सके वह आविष्कार हस्त-व्यवसाय करनेवालो ने किये है।" उन्होने अपना यह मत 'Fields, Factories and Workshops" नामक अपनी पुस्तक मे व्यक्त किया है। तत्सम्बन्धी उद्धरण का यहा देना उचित प्रतीत होने के कारण वह नीचे दिया जाता है।

"विशेषत गत शताब्दी के अन्त और इस शताब्दी के आरम्भ मे पृथ्वी का प्रत्यक्ष रूप बदल डालने जैसे जो बडे-बडे आविष्कार किये गये है, वह हस्तव्यवसाय—दस्तकारी—करनेवाले मजदूरो ने ही किये है। इसके विपरीत वि ज्ञान-शास्त्रज्ञो की आविष्कार करने की शक्ति घटती जा रही है। इस अवधि मे विज्ञान-शास्त्रज्ञो ने कोई भी नवीन आविष्कार नही किये अथवा बहुत ही कम किये। भाप के अजन अथवा रेलवे-अजन के मुख्य तत्व,

(३ से ६) इतिहास, भूगोल, समाज-शास्त्र और अर्थ-शास्त्र--

ये सब विषय परस्पर एक-दूसरे से अत्यन्त सलग्न हैं, इसलिए उनका विचार भी सामूहिक रूप से ही करना जरूरी है।

अत्यन्त प्राचीन काल मे, जिस समय खादी नही थी, उस समय लोग वृक्षो के पत्ते और छाल से अपने शरीर को ढकते थे। उसके बाद क्रमश ऊनी, सूती और रेशमी कपड बरतने की प्रथा पडी। बौद्ध और रामायण

आग-बोट, टलीफोन, फोटाग्राफ, बुनाई के यत्र, किनारी बुनन का मशीने, दीपगृह, सीमेन्ट की सड़कें और सादी और रगीन फोटोग्राफी, एव इनसे थोड़े महत्व की हजारो वस्तुओ का आविष्कार विज्ञान-शास्त्रज्ञो ने नही किया। अगर स्माइल्स के शब्दो मे कहा जाय तो जिन लोगो को स्कूली शिक्षा कदाचित् ही मिली है, जिन्होने धनवानो के चरणो मे रह कर बहुत ही कम ज्ञान प्राप्त किया है, और जिन्होने अत्यन्त प्राचीन औजारो से अपने प्रयोग किये है। उदाहरणार्थ, वकील के एक क्लर्क स्मिटन, औजार बनानेवाले वॉट ब्रेक्समेनी का काम करनेवाले स्टीफन्सन, मिल चलाने वाले रेनी; पत्थर फोड़ने का काम करनेवाले टेलफर्ड और सैकड़ो अप्रसिद्ध आविष्कर्ताओ ने वास्तविक आधुनिक सस्कृति का निर्माण किया है। यह ठीक है कि रसायन शास्त्र जितने को अपवादरूप छोड़ देने पर ज्ञान और प्रयोग के सब साधन विज्ञान-शास्त्रज्ञो ने ही जुटाये है। लेकिन आज प्रकृति की शक्ति का उपयोग और नियन्त्रण करने वाले बहुत से औजार, यन्त्र और अपने आप चलने-वाली मशीने दिखाई देती है, उनमे एक का भी आविष्कार विज्ञानशास्त्रज्ञो ने नहीं किया है। आँखो मे चढ़ने जैसी यह वस्तु-स्थिति है, लेकिन इसका स्पष्टीकरण सरल है। जिन बातो का विज्ञानशास्त्रज्ञो को पता तक नहीं था ऐसी विशेष बातें अनेक वॉट और स्टीफन्सनो को मालूम थी। उन्हें अपने हाथ का उपयोग मालूम था; उन्हे आसपास की स्थिति ने उत्तेजन दिया। उन्हे यन्त्र, यन्त्रो के मुख्यतत्व और उनके प्रयोग की जानकारी थी। उसके आसपास कारखाने और विशाल इमारतो के निर्माण का वातावरण था।

कालीन और मुहम्मद पैगम्बर की पोशाक तथा इजिप्शियन 'ममियों' के शरीर पर की हिन्दुस्तानी बारीक खादी आदि जुदा-जुदा समयों की जानकारी देने के साथ-ही-साथ तत्कालीन समाज की भी जानकारी दी जा सकेगी।

हिन्दुस्तान में मलमल और रेशमी वस्त्र तथा ऊनी तथा जरी के शाल आदि उत्कृष्ट माल और काली मिरच, दालचीनी, जावित्री, इलायची आदि मसाले की चीजें भारी तादाद में मिलती थीं, इसलिए डच, फ्रेंच और अंग्रेज लोग इनके व्यापार के लिए हिन्दुस्तान आये। हिन्दुस्तान की खोज करने के लिए निकले हुए कोलम्बस ने अमेरिका खण्ड की खोज की। हिन्दुस्तान का माल खुश्की और समुद्री दोनों ही मार्गों से जाता था। यहाँ का कपड़ा एशिया खण्ड के पश्चिम भाग, सीरिया, बेबीलोन, ईरान, चीन, जावा, पेगू, मलाया, ग्रीस, रोम और मिस्र आदि देशों को जाता था। हिन्दुस्तान के जिन बन्दरगाहों के जरिये यह माल बाहर जाता था, वह थे सिन्धु नदी के मुहाने पर स्थित बारबरिकान खम्भायत की खाड़ी, उज्जैन, पठैन, देवगिरी, सूरत, नवसारी, मछलीपट्टम, कावेरीपट्टम और कन्याकुमारी। इस प्रकार विद्यार्थियों को भूगोल की जानकारी दी जा सकेगी।

इस जानकारी के देते समय ही विद्यार्थियों को यह ऐतिहासिक जानकारी भी दी जायगी कि उपरोक्त सारा व्यापार हिन्दुस्तान में बने हुए जहाजों के जरिये ही होता था। जहाजों का यह धन्धा सन् १८१८ तक अच्छी तरह चलता था, लेकिन कपड़े के धन्धे की तरह अंग्रेजों ने इसे चौपट कर दिया।

इसी तरह इस पुस्तक के तीसरे अध्याय में वर्णित यह ऐतिहासिक जानकारी भी कराई जा सकेगी कि सत्रहवीं सदी में ईस्ट-इण्डिया कम्पनी ने हिन्दुस्तान में अपना अड्डा जमाया। उस समय हिन्दुस्तान का कपड़ा इतना उत्कृष्ट तैयार होता था कि इंग्लैंड के राजा-रानी और अमीर-उमराव बड़े चाव से उसे व्यवहार में लाते थे। यह देखकर ईस्ट-इण्डिया कम्पनी हिन्दुस्तान से करोड़ों रुपयों का माल विलायत भेजकर करोड़ों रुपये का मुनाफा कमाने लगी। इंग्लैण्ड में हिन्दुस्तान के माल की खपत होने के कारण वहां

के व्यापार पर उसका बुरा असर पडा। जब यह बात वहा के राजनीतिज्ञों के ध्यान मे आई तो उन्होने पार्लमेण्ट से कानून पास करवाकर हिन्दुस्तान के माल पर जबरदस्त जकात लगवाई। (अपने यहा स्वराज्य होने की हालत मे राष्ट्र अपने व्यापार की रक्षा के लिए क्या कर सकता है, इसका यह एक उत्कृष्ट उदाहरण है।) कम्पनी के लार्ड क्लाइव आदि अधिकारियो ने बड़े-बडे नवाबो को एक-दूसरे से लडने मे मदद देकर उनसे खूब पैसा ऐंठा और इस तरह यहा की सम्पत्ति खीच कर विलायत ले गये। उसी पैसे के बल पर विलायत मे मिले खडी की गई। कम्पनी ने हिन्दुस्तानी कारीगरो से कपडो के उत्कृष्ट नमूने लेकर उनके आधार पर विलायती मिलो मे वैसा ही कपडा तैयार करवाने का सपाटा चलाया। कम्पनी के नौकरो ने हिन्दुस्तानी कारीगरो पर, उनसे उक्त प्रकार का उत्कृष्ट माल तैयार करवाने के लिए तरह-तरह के जुल्म और अत्याचार किए, जिससे तग आकर कारीगरो ने अपने अगूठे तक काट लिए। आगे चल कर इसका नतीजा यह हुआ कि जिस हिन्दुस्तान से करोडो रुपयो का माल विलायत को जाता था, उसी हिन्दुस्तान मे उलटे विलायत से करोडो रुपयो का कपडा आने लगा और इस तरह हिन्दुस्तान का कपडे का व्यापार सर्वथा चौपट होगया।

कपडे के धन्धे के डूबने के कारण दूसरे छोट-मोटे धन्धे भी मौत के मुह मे जाने लगे। कपडे के व्यवसाय के चौपट होने से लोढने वाले, पिजारे, कतवैये, जुलाहे, रगरेज, छपाई का काम करने वाले, छीपी, धोबी, बढई, लुहार आदि सब की जीविका का आधार नष्ट होगया। ये सब लोग भूखो मरते देश छोडने लगे और अब उन्होने खेती का आश्रय लिया है। इस तरह बेकार हुए सभी लोगो के खेती पर टूट पडने के कारण हरेक व्यक्ति के हिस्से मे करीब एक एकड जमीन आई। हिन्दुस्तान की ऐसी दीन-हीन परिस्थिति मे महात्माजी ने इन सब लोगो को काम मे लगा कर उनके पेट भरने की सुविधा करने की दृष्टि से 'खादी' और 'ग्रामोद्योग' की प्रवृत्ति 'अखिल भारतीय चरखा सघ' और 'ग्रामोद्योग सघ' नाम की दो जबरदस्त

सस्थाये स्थापित की है। इन सस्थाओ के स्थापित होने से बेकारो को काम मिलकर उनकी बेकार जाती हुई प्रचण्ड शक्ति का उपयोग होने लगा है। ऐसी स्थिति मे 'स्वदेशी धर्म' का रहस्य जान कर 'खादी' और ग्रामोद्योग की वस्तुओ का व्यवहार करना अपना कर्त्तव्य है। इस अवस्था मे खादी और 'ग्रामोद्योग' की वस्तुए अगर महगी पडती हो तो भी देश के आत्यन्तिक कल्याण की दृष्टि से वही खरीदना इष्ट है।[१] ऐसे समय मे पश्चिमीय अर्थ-शास्त्र का यह सिद्धात कि 'बाजार मे जो सस्ते-से सस्ता और सुघड हो वही लिया जाय' भारतवासियो के लिए विनाशक सिद्ध होगा, आदि बाते विद्यार्थियो को समझा कर कही जाने से उनका 'स्वदेशाभिमान' जाग्रत किया जा सकेगा और देश, काल और परिस्थिति के अनुसार आचरण करना किस तरह आवश्यक है, इसकी छाप उनके मन पर अच्छी तरह बिठाई जा सकेगी।

(७)गणित— अब हम यह देखेगे कि खादी के उद्योग द्वारा गणित की शिक्षा किस तरह दी जा सकेगी। चरखे अथवा तकली पर सूत कातने के बाद उसे फालके या अटेरन पर उतारते समय उसके तार गिनने के लिए कहना पूनी का वजन करते समय माशा, तोला, छटाक आदि भिन्न-भिन्न तोल या माप का नाम बताना। कपास को लोढने, रुई के पीजने और कातने आदि हरेक बात मे छीज कितनी बैठी यह नोट करना। हर रोज रुई कितनी ली गई, उसका सूत कितना लिकला, खादी कितनी बुनी गई और कितनी बिकी आदि बातो का हिसाब रखना। सूत का नम्बर निकालना और उस नम्बर के हिसाब से कतवैयो को मजदूरी चुकाना। सेर भर सूत की खादी तैयार करने के लिए कितने नम्बर के सूत की कितनी लच्छियो की जरूरत होगी, यह निश्चित करने के लिए त्रैराशिक सिखाना। सूत का व्यास वर्ग-मूल के प्रमाण मे बढता है, यह समझाते समय वृत्त, परिध, त्रिज्या, व्यास आदि भूमिति के सामान्य सिद्धान्त समझाना। व्यास निकालते समय वर्ग-मूल निकालने का तरीका बताना। खादी बुनना सिखाते समय कर्घे के

१. 'खादी और अर्थशास्त्र' शीर्षक अध्याय देखिए।

पुजे, तार, नम्बर, सूत का पोत आदि सबधी गणित सिखाना, सूत का कस निकालते समय कितने नम्बर का सूत कितना वजन सह सकता है यह बताना—इस तरह अकगणित का बहुतेरा ज्ञान विद्यार्थियो को दिया जा सकता है।

(८) भाषा—खादी की जुदा-जुदा क्रिया करते समय उन क्रियाओ की परिभाषा समझाते जाना चाहिए। अपने घर, स्कूल और गाव-सम्बन्धी मुख्य-मुख्य बातो का उल्लेख करने को कहना। अपने स्कूल के पाठ्यक्रम के सम्बन्ध मे अपने भाई-बहनो को पत्र लिखना, 'अखिल भारतीय चरखा सघ' और 'ग्रामोद्योग सघ' के मन्त्रियो को पत्र लिखकर खादी के उद्योग धन्धे के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करना, अपने उद्योग-धन्धे की प्रतिदिन का प्रगति का हिसाब रखना, अपने स्कूल के सम्बन्ध मे जानकारी देनेवाला दैनिक, साप्ताहिक अथवा मासिक पत्र निकालना और उसके लिए लेख लिखना और सार्वजनिक महत्व के विषय पर कुछ निश्चित समय तक बोलने का अभ्यास करना। अपनी भाषा के सिवा अपने पडौसी प्रान्त की भाषा कभी थोडी-थोडी बोलने और लिखने की आदत डालना। इस तरह अपनी भाषा के सिवा पडोसी प्रान्त की भाषा का भी अनुभव हो सकेगा।

(९) चित्रकला—कपास के पौधे, फूल, बौंडी, लोढन, धुनकी भिन्न-भिन्न तरह के चरखे, तकली, करघे आदि का इसी तरह किसी का लोढते हुए, किसी का पीजते हुए, किसी का कातते हुए, किसी का तकली चलाते हुए, किसी का करघे पर काम करते हुए चित्र बनाना सिखाना। प्राचीन काल से लेकर अबतक पोशाक मे कैसा-कैसा परिवर्तन हुआ, यह दिखाने वाले भिन्न-भिन्न तरह के चित्र बनाना। स्कूल में तैयार हुई चीजो की प्रदर्शिनी सजाना। इस तरह विविध प्रकार से चित्रकला और सौन्दर्य-शास्त्र की शिक्षा दी जा सकेगी।

(१०) विज्ञान—खादी का कपडा तैयार होने के बाद उसकी धुलाई, रंगाई, छपाई आदि क्रियाओं की जानकारी। अपने प्रतिदिन के कपड़े वैज्ञानिक ढग से किस तरह धोये जायँ, देश मे प्रचलित धुलाई की

भिन्न-भिन्न पद्धतिया और पश्चिमीय रासायनिक पद्धतियो से उनकी तुलना, रसायन विज्ञान के सिद्धान्त, वनस्पतिजन्य रगो और पश्चिमीय रगो की तुलना, साधारण रासायनिक द्रव्यो की जानकारी, छपाई के भिन्न-भिन्न प्रकार; छपाई के ठप्पे तैयार करते समय तरह-तरह के फूल-पत्ते और बेल-बूटे आदि बनाने के लिए आवश्यक चित्रकला की विशेष जानकारी, भिन्न-भिन्न रगो का तुषार उडाकर चित्र बनाने की पद्धति, वायुचित्रण (Airograph), कौन से रग मे कौन-सा रग मिलाना उचित है, और वह किस तरह मिलाया जाय, कौन से रग के साथ कौन सा रग अच्छा मिलता है आदि हर तरह की विज्ञान-सम्बन्धी जानकारी इन क्रियाओ द्वारा मनोरजक ढग से दी जासकेगी।

हम समझते है खादी के उद्योग द्वारा ज्ञान का गुम्फन किस तरह किया जाय इस बात का सक्षिप्त परिचय करा देने के लिए इतना विवेचन काफी होगा।

: १४ :

'खादी और ग्रामोद्योग

राष्ट्र के द्रष्टाओ की दृष्टि अत्यन्त सूक्ष्म होती है। साधारण मनुष्य को जो दूर की, भविष्य की बात दिखाई नही देती, वह सहज ही उनके ध्यान मे आजाती है, और इसी मे उनकी विशेषता है। महात्मा गाधी सन् १९१५ में दक्षिण अफ्रीका से हिन्दुस्तान आये। हिन्दुस्तान आने के बाद उन्होने एक ओर काश्मीर से कन्याकुमारी तक और दूसरी ओर कराची से कलकत्ता तक का दौरा किया। इस दौरे मे उन्हे हिन्दुस्तान के गावो मे रहने वाली जनता की परिस्थिति का अच्छा परिचय हुआ, उन्हे यह निश्चय हो गया कि देश के लगभग पाच करोड आदमियो को दोनो समय पेट भरकर भोजन नही मिलाता। ऐसी परिस्थिति मे उन्होने उन लोगो को काम देकर उनके पेट मे अन्न के दो कौर डालने के लिए चरखे और खादी के धन्धे का पुनरुद्धार करने का निश्चय किया।

बाद को कई वर्ष बाद सन् १९३३–३४ मे महात्माजी ने हरिजन-उद्धार के सिलसिले मे फिर सारे हिन्दुस्तान का दौरा किया। उडीसा प्रान्त के सिवा यह दौरा रेलवे और मोटर से हुआ। उडीसा प्रान्त मे उन्होने पैदल ही यात्रा की। यह दौरा 'हरिजनोद्धार' के लिए था, अत· हरेक जगह की हरिजन-बस्ती देखने के लिए वे खुद चलकर जाते थे। इससे उन्हे सारे हिन्दुस्तान के दलित वर्ग की परिस्थिति का, रहन-सहन और खान-पान का सूक्ष्म निरीक्षण करने का अच्छा मौका मिला और वह इस नतीजे पर पहुचे कि बिचारे इन गरीबो को पेट-भर तो खाने को मिलता ही नही, लेकिन जो अन्न मिलता भी है वह अत्यन्त निकम्मा और सत्वहीन होता है। उन्होने देखा कि वे जो चावल, आटा और तेल खाते है वह सब मिलो मे तैयार

हुआ निकम्मा होता है, उनमें से जीवनदायक सब पोषक तत्व निकल जाते हैं और इससे उनकी 'दुबले को दो असाढ़' वाली स्थिति हो गई है। एक तो पहले ही पेट में अन्न कम पहुँचता है और जो पहुँचता है वह भी इस प्रकार सत्वहीन हुआ। इसके सिवा उन्हें यह भी निश्चय हुआ कि इस स्थिति के कारण साल या धान कूटने, आटा पीसने और तेल पेरने का धन्धा डूबता जाता है और देश दिन-प्रति-दिन अधिकाधिक दरिद्री, आलसी और परावलम्बी बनता जाता है। इस पर से उन्हें ग्रामोद्योगों के पुनरुज्जीवन की कल्पना हुई और उन्होंने स्वदेशी की व्याख्या को अधिक शुद्ध करने की बात देश के गले उतार दी। तदनुसार सन् १९४३ में 'अखिल भारतीय ग्रामोद्योग-संघ' की स्थापना हुई और तब से वह संघ लोगों का ध्यान इस प्रवृत्ति की ओर आकर्षित कर रहा है।

जिस समय हिन्दुस्तान में स्वराज कायम था, उस समय यहाँ का प्रत्येक गाँव स्वयं पूर्ण था। किसान अपने खेत में अनाज और कपास बोता था। इसी में से अपने अन्न-वस्त्र की सुविधा कर लेता था। घर पर बीसियों ढोर या पशु होते थे, जिनमें बहुत-सी गायें और एकाध सांड भी होता था। इन गायों से घर-के-घर दूध हो जाता था और खेती के लिए आवश्यक बैलों की पूर्त्ति भी हो जाती थी। घर की खेती में ही तिल-सरसों आदि बोकर गाँव के तेली की घानी में उसका तेल निकलवा लिया जाता था, जिससे तेल की आवश्यकता पूरी हो जाती थी। जहाँ पानी की सुविधा होती उस भाग के किसान गन्ने या ईख की खेती कर गुड़ भी बनाते थे। खेती के लिए आवश्यक रस्सी आदि के लिए सन आदि बोकर उस जरूरत को पूरा कर लेते थे। आग पैदा करने के लिए प्रत्येक घर में चकमक पत्थर रहता था। अपने गाँव के आसपास कहीं कोई खाली जमीन हुई तो उससे नमक तैयार कर लेते थे। इस प्रकार अपनी गृहस्थी के लिए आवश्यक वस्तुएं घर-के-घर अथवा गाँव-के-गाँव में ही तैयार करते रहने के कारण उन्हें निरन्तर उद्योग में लगे रहना पड़ता था। किसी दूसरे पर निर्भर रहना नहीं पड़ता

था और गाँव का पैसा गाँव मे ही रहता था। इसलिए गाँव उद्यमशील, सुखी और समृद्ध रहता था।

लेकिन आज की स्थिति इससे बिलकुल उलटी है। ग्राम-पचायते टूट गई है, सारे उद्योग धन्धे डूब गये है, और लोग आलसी, बेकार, दरिद्री और परावलम्बी बन गये है। ऐसी दशा मे अगर गावो की बिखरी हुई स्थिति को फिर सम्भालना हो, और वहा फिर से जीवन पैदा करना हो तो ग्रामोद्योगो के पुनरुज्जीवन का कसकर प्रयत्न करना चाहिए।

ग्रामोद्योगो मे खादी सूर्य की तरह केन्द्र-स्थानीय है और बाकी सब उद्योग सूर्य के आसपास चक्कर काटनेवाली ग्रह-मालिका की तरह है। जिस समय खादी का धन्धा पूरे वैभव पर पहुचा हुआ था, उस समय ये सब ग्रामोद्योग भी अच्छे चलते थे। जबसे अग्रेजो ने खादी के उद्योग को चौपट किया, तबसे दूसरे सब धन्धो को भी डूबती-कला लग गई। इसलिए प्रत्येक गाव मे घर-घर वैज्ञानिक पद्धति से चरखा और खादी का काम शुरू करना चाहिए। इससे उसके साथ-ही-साथ दूसरे धन्धो का भी पुनरुज्जीवन होने लगेगा। खादी के सम्बन्ध मे दूसरे अध्यायो मे काफी विवेचन किया जा चुका है, अत यहा दुहराने की आवश्यकता नही।

लेकिन खादी मे जो तत्त्व भरा हुआ है उसे समझ लेना चाहिए। इसके बिना 'खादी और ग्रामोद्योग' का सम्बन्ध मालूम नही हो सकेगा। खादी का मतलब है पूर्ण स्वदेशी। "यह स्वदेशी खादी पर केन्द्रीभूत होने के कारण इतनी व्यापक है कि देश मे तैयार होनेवाली और हो सकनेवाली प्रत्येक वस्तु तक उसका विस्तार हो सकता है।"[1]

'स्वदेशी' और 'विदेशी' वस्तुओ की ग्राह्याग्राह्यता के सम्बन्ध मे महात्माजी लिखते है—"सिर्फ विदेशी होने ही की वजह से कोई वस्तु त्याज्य है यह बात मेरे किसी धर्मग्रथ मे कही भी नही लिखी है। मेरे धर्मग्रथ मे तो इस प्रकार लिखा है—जो **बात स्वदेश के लिए हानिकारक है वह सब विदेशी त्याज्य है**। जो वस्तु हम अपने देश मे काफी तादाद मे तैयार कर

१ 'यग इण्डिया' भाग २ पृष्ठ ६६५

सकते हैं वह हमें कभी भी विदेश से नहीं मंगानी चाहिए। उदाहरणार्थ गेहूं लीजिए। आस्ट्रेलिया के गेहूं अधिक अच्छे होते हैं; इसलिए वे मंगवाये जांय और अपने यहां के गेहूं का त्याग कर दिया जाय, इसे मैं पाप समझता हूं। अपने देश में चमड़ा काफी तादाद में तैयार होता है, यद्यपि वह हल्के प्रकार का होता है फिर भी मैं उसे त्याज्य समझता हूं। हिन्दुस्तान में शक्कर अथवा गुड़ काफी तादाद में होते हुए भी विदेशी शक्कर मंगाने को मैं बुराई समझता हूं।"[1]

खादी के व्यवहार का अर्थ है करोड़ों बुभुक्षित लोगों के साथ समरस होना। इस दृष्टि से विचार करते हुए अगर हमें प्रत्येक गांव को सम्पूर्ण स्वदेशी और स्वावलम्बी बनाना हो तो हमें इस बात की सावधानी रखनी होगी कि गांव का एक भी आदमी बेकार न रहने पावे। इसका मतलब यह है कि गांव के प्रत्येक आदमी को भरपूर काम मिलना चाहिए; गांव में जुदे-जुदे धन्धे अच्छी तरह चलने चाहिएं। ये धन्धे खूब तेजी से चलें, ऐसी परिस्थिति पैदा करने के लिए गांव के अगुआ लोगों को यह दृढ़ संकल्प करना चाहिए और संकल्प को अमल में लाने की पूरी कोशिश करनी चाहिए कि जहांतक सम्भव हो सके गांव में एक भी विदेशी वस्तु न आने पावे; हरेक व्यक्ति अपने गांव में बनी हुई वस्तु काम में लावे।

इस विचारसरणी को ध्यान में रखते हुए अगर हिन्दुस्तान के करीब सात लाख गांव पूर्णतया खादीमय और ग्रामोद्योग के सम्बन्ध में भी परिपूर्ण हो जायँ तो स्वराज्य दूर ही कितना रह जायगा?

यह बात ध्यान में रखकर ग्रामोद्योग के सम्बन्ध में निम्नलिखित विवेचन किया गया है।

खादी के बाद 'गोरक्षा' की ओर मुड़ना आवश्यक है। इधर किसानों ने गायों की बड़ी-बड़ी अवहेलना की है। गायों की अपेक्षा भैंस पालने की ओर उनका ध्यान अधिक रहता है। गायों को घर से बाहर जंगल की चराई पर ही सन्तुष्ट रहना पड़ता है। किसान लोग, अक्सर उन्हें घास या

१. 'नवजीवन' २८ अक्तूबर १९२८.

चारा नही डालते। हा, भैसों को जरूर कुट्टी, चारा-बाटा दिये बिना नही रहते। गायो को इस तरह लापरवाही से छोड देना और भैसो को दिल से पालना 'स्वदेशी धर्म' के विरुद्ध है। जिन बैलो से हम सेवा लेते है, जिनके बल पर अपनी खेती चलाते है उनकी जननी गाय की रक्षा करना हमारा अत्यन्त निकट का और पवित्र कर्तव्य है। इस उपयुक्तता की दृष्टि से ही हिन्दू-धर्म मे गाय को पवित्र माना गया है।

किसानो ने अपनी जो यह धारणा बनाली है कि गायो का पालना उन्हे पूरा नही पडता' यह सवाल गलत है। वे भैस पर जितना पैसा खर्च करते है और उसपर जितना परिश्रम करते है, उतना पैसा और परिश्रम अगर गाय के प्रति किया जाय तो गाय का पालना उन्हे भारी नही पडेगा। इस देश और विलायत वालो का भी यह अनुभव है कि अगर गायो को अच्छी खुराक दी जाय और उनकी अच्छी साध-सम्भाल की जाय तो वे भी भरपूर और चौकस दूध देती है। अमेरिका मे तो एक-एक गाय एक-एक दिन मे ४५ पौंड अर्थात् लगभग साढे बाईस सेर दूध देती है। किसान लोग अगर दूर दृष्टि से काम लेकर गायो का पोषण करेगे तो उनपर किया गया खर्च ब्याज समेत वसूल हो जायगा। उनका अच्छी तरह पोषण होने पर वे खूब दूध देगी, इसके सिवा हर साल उनके जो बछडे-बछडी होगे उनसे घर मे लक्ष्मीकी वृद्धि ही होगी। उन्हे नये बैल खरीदने के लिए पैसे खर्च नही करने पडेगे, घर की गायो से पैदा हुए बैलो से ही उनकी खेती का काम चल जायगा। आज घर से कुछ पैसे खर्च होने के कारण अगर किसान सकुचित दृष्टि रखकर गाय का अच्छी तरह पोषण नही करेगा तो ऐन खेती के समय उसके पुराने बैलो के थककर अड जाने पर उसे साहूकार से कर्ज लेकर सवाई-डचोढी कीमत मे बैल खरीद कर खेती के रुके हुए काम को आगे ढकेलना होगा।

किसानो की यह शिकायत सही है कि इस समय गायो के चरने के लिए गोचर-भूमि की कोई सुविधा नही। इस सम्बन्ध मे उन्हे हमारी यह सूचना है कि उन्हे अधिक कपास अथवा अधिक अन्न के मोह अथवा

लोभ में न पड़ कर अपनी खेती का एक खास हिस्सा ढोरों के घास-चारे के लिए ही सुरक्षित रखना और उससे गोरक्षण करना चाहिए। भैंस के दूध-घी की ही तरह उन्हें गाय के दूध-घी से आर्थिक लाभ हुए बिना नहीं रहेगा।

जिस समय हम यह कहते हैं कि आर्थिक दृष्टि से गाय पालन पुसा जायगा, उस समय हमारी नजरों में पीढ़ी-दर-पीढ़ी अवहेलित अथवा दीन-दुबली बनी हुई गाय नहीं होतीं। हमारे कहने का आशय यही है कि आरम्भ से ही गाय को पौष्टिक खुराक देने के बाद उसकी जो सन्तान तैयार होगी वही सुधरते-सुधरते १०-१२ वर्षों में आज की भैंस जितना दूध देने लगेगी और इस प्रकार किसान को आर्थिक दृष्टि से पुसायगी।

पाँच-सात गाँवों के एक केन्द्र में उन्नत पद्धति पर एक चर्मालय चल सकता है, और इसमें किसानों और चमारों दोनों का हित है। अभी ढोर के मरने पर किसान उसकी कीमत लिये बिना ही चमार से उसे उठा ले जाने को कह देता है। मरे हुए पशु का चमड़ा, हड्डी, सींग, खुर, आंत, पीठ के पुट्ठे और चरबी आदि वस्तुएं फेंक देने के योग्य नहीं होतीं; ये चीजें एक तरह की सम्पत्ति होती हैं, अतः किसानों को उनकी कीमत वसूल करनी चाहिए। पशुओं की चीर-फाड़ के लिए चमारों को जो मजदूरी लेनी हो, लें, लेकिन उनका चमड़ा और हड्डी पशुओं के मालिकों की ही मिल्कियत होनी चाहिए। अगर चमारों को चमड़ा कमाने की उन्नत पद्धति सिखाने की व्यवस्था करदी जाय तो आज वे जो चमड़ा, जिस कीमत में बेचते हैं उसकी अपेक्षा आठ-नौ गुनी कीमत वे जरूर पा सकते हैं। पशुओं की हड्डी का खाद बहुत कीमती होता है, खासकर फलों के बाग-बगीचे के लिए वह बहुत गुणकारी होता है। अतः किसानों को उस दृष्टि से उसका उपयोग करके अथवा बेचकर अपनी शक्ति में वृद्धि करनी चाहिए।

किसान 'सोन' खाद के नाम पर से ही 'खाद' की दृष्टि से उसका महत्व समझते हैं। लेकिन उसमें बदबू अथवा गन्दगी मानकर उसके उपयोग की ओर लापरवाही कर जाते हैं। असल में देखने पर पाखाने

पर मिट्टी डालदी जाय तो उसमे से बदबू आना बन्द हो जाता है और साधारणतया दो-तीन महीने के अन्दर-अन्दर उसका खाद तैयार होकर उसका सारा रूप बदल जाता है, और तब वह साधारण मिट्टी की तरह होजाता है। तब उसका खाद के लिए उपयोग किया जाने पर फसल अच्छी पैदा होकर किसानकी सम्पत्ति मे वृद्धि हुए बिना नही रहेगी। इसलिए किसानो को अपने कुटुम्ब का मल—पाखाना—व्यर्थ जाने न देने के लिए 'किसानी चलते-फिरते सडास' का प्रयोग करना चाहिए और उस मल का उपयोग खाद के लिए करना चाहिए। रूढि प्रिय किसान आरम्भ मे ऐसे संडास पसन्द नही करेगा। उसके लिए समझदार किसानो को चाहिए कि वे खुद ऐसे सडास बनवाकर लोगो को किराये पर दे, अथवा उन्हे उनका प्रयोग करने के लिए प्रेरित करके उस 'सोन' खाद का स्वय उपयोग करले अथवा उसे बेचकर पैसे कमाले। जहा नहर, तालाब आदि हो वहा किसानो को गन्ना या ईख बोकर गुड तैयार करना और बेचना चाहिए।

इसी तरह किसानो को अपने खेतो मे तैलीय-पदार्थ—तिल, सरसो आदि—बोना चाहिए और तेली की मजदूरी देकर घानी से तेल निकलवा लेना चाहिए। इस व्यवस्था से एक ओर किसानो को शुद्ध स्वच्छ और पुष्टिकारक तेल खाने को मिलेगा और तेलियो की भी घानिया अच्छी तरह चलकर उनका भी पेट भरेगा।

इसी तरह उन्हे हाथ के कुटे चावल और हाथ की चक्की पर पिसा हुआ आटा खाने का निश्चय करना चाहिए। इस व्यवस्था से उन्हे खाने को सत्वयुक्त चावल और आटा तो मिलेगा ही, साथ ही चावल कूटने और आटा पीसने का काम घर-का-घर मे ही करने से उतने मजदूरी के पैसे बच जायगे। जो लोग घर-गृहस्थी-सम्बन्धी कठिनाइयो के कारण खुद ऐसा न कर सके उन्हे मजदूरी देकर अपने घर पर ही यह काम करवा लेना चाहिए। इससे वे मजदूर को एक काम दे सकेगे।

किसान अगर अपनी खेती के लिए आवश्यक रस्सी आदि अपने खेत मे ही बोये हुए सन, अम्बाडी अथवा केतकी से तैयार करले तो इससे भी

उनके दो पैसे बच जायगे और जो रस्सी तैयार होगी वह टिकाऊ होगी।

इसी तरह किसान घर-के-घर कुछ शहद की मक्खिया पालकर शहद तैयार कर सकेगे।

यह हुए हरेक किसान के कर सकने योग्य धन्धे।

इसके सिवा हरेक गाव मे स्त्रियो के लिए आवश्यक कुकुम अथवा रोली बनाने का धन्धा भी चल सकता है। इसी तरह अगर कोई साबुन और कागज बनाना चाहे तो वह भी थोडी ही पूंजी मे हो सकता है।

इसी तरह हमे यह भी सावधानी रखनी चाहिए कि हरेक गाव मे कुम्हार, सुनार, लुहार और पासी वगैरा के धन्धे जीवित रहे। इसका मतलब यह हुआ कि अपने घरो के छप्परो के लिए विदेशी टीन के पत्तर काम मे न लाकर अपने गाव के कुम्हार द्वारा बनाये हुए खपरैल, अथवा कवेलूटी काम मे लाने चाहिएँ। इसी तरह गाडियो मे रबरदार पहिए और लोहे के पाटे ही लगाने चाहिएँ। अपने गाव के पासी की बनाई हुई टोकरिया, झाडू और चटाइया आदि लेनी चाहिए और स्त्रियो की प्रसूति के लिए दाइया बुलानी चाहिए।

इस वर्णन मे सारे ग्रामोद्योगो का सर्वनाश नही हुआ है, फिर भी उनके सम्बन्ध मे क्या किया जाना चाहिए इसकी कल्पना के लिए इतना विवेचन काफी होगा।

अन्त मे यह कहना जरूरी है कि आज सारे ससार मे एकमात्र 'औद्योगीकरण' को ही उन्नति का मार्ग समझा जाता है, किन्तु वह सर्वोपरि ठीक नही है। वह एक वहम बन गया है। औद्योगीकण के शिखर पर पहुचे हुए जापान जैसे देश मे ६० फीसदी लोग ग्रामोद्योग मे लगे हुए है। चीन को औद्योगीकरण की हविस नही। वहा ग्रामोद्योग का आदर्श सगठन देखने को मिलता है और रूमानिया आदि देशो मे भी ग्रामोद्योगो का स्थान बना हुआ है।

: १५ :

खादी-सगठन और स्वराज्य

प्रकृति के नियम के अनुसार मृत्यु के बाद जन्म, अस्त के बाद उदय और प्रलय के बाद सृष्टि होती ही रहती है।

अग्रेज सरकार ने हमारे कपडे के धन्धे का गला घोटा, इससे वह और उससे सम्बन्धित धन्धे तो डूबे ही, उसके साथ ही दूसरे धन्धे भी डूब गये।[१] लोगो के प्रास खेती के सिवा और कोई दूसरा आधार नही रहा। राष्ट्र की सम्पत्ति का स्रोत रुक गया, समाज का सगठन बिखर गया। पहले जो गाव सम्पन्न थे वे निस्तेज और चैतन्यविहीन होगये और इस प्रकार राष्ट्र पर विनाश की घडी सवार होगई। ऐसी स्थिति मे महात्माजी चरखा और खादी द्वारा हिन्दुस्तान का रक्त-शोषण रोकने का, समाज के सगठन को और गावो को फिर से सुधारने और गावो को फिर से सजीव करने का प्रयत्न कर रहे है।

जिस तरह सूर्य के साथ किरणे है, उसी तरह वस्तु के साथ उसका सहचारी भाव है। हम जो यह कहते है कि चरखे का सार्वत्रिक प्रसार होते

१ कातन-बुनने के धन्धे की जो गति हुई वही दूसरे धन्धो की भी हुई। रगाई, रग बनाना, चमडा कमाना और रंगना, लोहा और दूसरी धातुओ के काम, शाल-दुशाले और गलीचे और इसी तरह मलमल और विभिन्न बेल-बूटो से सज्जित रेशमी वस्त्र बुनना, और कागज तथा स्टेशनरी से सम्बन्धित अन्य सामान के कारखाने आदि सब डूब गये। ये उद्योग करके जो करोडो लोग अपनी उपजीविका चलाते थे, उन्हे अपने निर्वाह के लिए खेती का आश्रय लेने पर मजबूर होना पडा।"

डा० बालकृष्ण कृत "Industrial Decline in India" नामक पुस्तक के पृष्ठ ९०-९१ पर श्री रमेशचन्द्रदत्त का उद्धरण।

ही स्वराज्य मिल जायगा, बहुत से उसका अर्थ नहीं समझते। इसका कारण यही है कि चरखे का साहचर्य भाव उनके ध्यान में नहीं आता। घर में एक चरखे का प्रवेश होते ही अपने साथ वह कितनी भावनायें लाता है, इसकी हमें कल्पना नहीं है। बिजली की बत्ती जलने के समान एक क्षण में सारा वातावरण बदल जाता है। राजा के बाहर निकलने पर हम कहते हैं 'राजा की सवारी बाहर निकली।' उसी तरह समझना चाहिये कि चरखे के घर में आने का अर्थ है उसकी सवारी घर में आना। उस सवारी में कौन-कौन सरदार शामिल हैं इसका विचार करते ही 'चरखे से स्वराज्य' का मतलब समझ में आजायगा।''[१]

'जन-सेवा में ही ईश्वर-सेवा है' की वृत्ति से काम करनेवाला कार्यकर्त्ता गांव में जाकर काम करने का विचार करे तो महात्माजी ने आज तक लोक-हित की जो प्रवृत्तियां चलाई हैं उन पर नजर डालते ही वह सहज ही यह समझ सकेगा कि उसे किस तरह ग्राम-संगठन करना चाहिए। इस पर से यह स्पष्ट ही कल्पना हो जाती है कि इन प्रवृत्तियों के चलाने में महात्माजी की दृष्टि कितनी गहरी और दूरदर्शितापूर्ण है। कार्यकर्त्ता को गांव में जाकर यह अष्टविध कार्यक्रम अपनाना चाहिए—(१) खादी, (२) ग्रामोद्योग, (३) गोरक्षण, (४) वर्धा-पद्धति के स्कूल, (५) 'शांति-दल' की स्थापना, (६) हरिजन सेवा, (७) ग्राम पंचायत और (८) कांग्रेस कमेटी की स्थापना।

इनमें से पहले चार विषयों पर पिछले अध्याय में और दूसरे भाग के 'खादी कार्यकर्त्ताओं को अनुभवपूर्ण सूचनायें' शीर्षक अध्याय में विस्तृत विवेचन किया जा चुका है, अतः यहां अधिक न लिखकर सिर्फ यह बताना ही काफी होगा कि इन विषयों में संगठन का रूप क्या होना चाहिए।

खादी का काम करते हुए कार्यकर्त्ता का गांव के चरखे बनानेवाले बढ़ई, लुहार, कतवैये, जुलाहे, खादी धोनेवाले धोबी, छपाई और रंगाई का काम करने वाले छीपे और रंगरेजों से ग्रामोद्योग का प्रचार करते हुए

१. विनोबाजी—'मधुकर' पृष्ठ ५४-५५

तेली, कुम्हार, चमार, महार, पासी, कोली, भोई आदि से और उसी प्रकार हाथ से साल या धान कूटनेवाले और हाथ की चक्की पर आटा पीसने वालो से, गोरक्षा का महत्व समझाते हुए गाय पालनेवाले प्रत्येक कुटुम्ब से और वर्धा-पद्धति पर स्कूल शुरू करने से गाव के बालको और उनके अभिभावको से सम्बन्ध आयगा ।

गाव मे किसी तरह का झगडा न होने देने, खासकर हिन्दू-मुसलमानो मे तनातनी पैदा न होने देने के लिए 'शान्ति-दल' स्थापित करना जरूरी है। 'शांति-दल' स्थापित करते हुए गाव की सब जातियो के नवयुवको से अच्छा परिचय होगा । इन नवयुवको को यह बाते अच्छी तरह समझनी चाहिए कि उन्हे गावो में एकता स्थापित करने की कितनी जरूरत है, गाव मे झगडे हुए तो किस तरह आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक हर तरह से उनकी हानि है । उक्त एकता स्थापित करने का सर्वोत्तम मार्ग 'अहिंसा' है । इस 'अहिंसा' को हृदयगम करने के लिए ईश्वर पर श्रद्धा होने का अर्थ है मनुष्य का 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' की स्थिति पर पहुँचना और मनुष्य जब इस स्थिति को पहुँच जाता है तब अत्याचार की ओर उसकी प्रवृत्ति होना सम्भव ही नही रहता । मनुष्य के हृदय पर एक बार इन तत्वो की छाप बैठ जाने पर फिर वह उनसे पीछे नही हटता । अगर हरेक गाव मे इन तत्वो को अच्छी तरह समझे हुए उदार हृदय के २०-२५ नवयुवक तैयार हो जाय तो साम्प्रदायिक दगे होना सम्भव ही न रहे । यह स्पष्ट है कि इस शान्ति-दल मे गाव की सब जातियो के नवयुवक होने के कारण उसके प्रति सबकी अपनेपन की भावना रहेगी ।

हरिजन मे महार, ढेड, चमार पासी, भगी आदि सभी का समावेश होता है। उनके व्यवसाय की गन्दगी के कारण सवर्ण हिन्दुओ ने उन्हे अस्पृश्य अथवा अछूत ठहराया, किन्तु (१) ये सब लोग समाज की अत्यन्त महत्व-पूर्ण सेवा करते है, अगर ये अपना काम छोड बैठे तो समाज की अत्यन्त विषम स्थिति हो जाय । इसके सिवा (२) ईश्वर के दरबार मे उच्च-नीच का कोई भेद-भाव नही है । उसने उन्हे भी आत्मा दी है । उनमे के कई

लोग सद्गुण सम्पन्न, चरित्रवान्, शीलवान्, और मतगद को पहुँचे हुए है। एसी स्थिति मे, केवल जन्म से हरिजन होने के कारण ही उन्हे नीच नही समझना चाहिए। उनके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। इतना ही नही, उनके बीच घुलमिल जाना चाहिए। उनके सुख-दुख मे समरस होना चाहिए। उनका रहन-सहन अस्वच्छ अथवा गदगी-युक्त हो तो स्वच्छता का महत्व उन्हे अच्छी तरह समझा देना चाहिए। बीमारी की हालत मे उनकी स्थिति और भी खराब होजाती है, ऐसे समय मे उनकी दवा-दारू और सेवा-सुश्रूषा की विशेष व्यवस्था करनी चाहिए। उनके आपस मे जो छुआछूत हो उसे भी दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। उनकी सेवा करने मे उनका सगठन किया जा सकेगा।

प्रत्येक कार्यकर्त्ता को अपने-अपने गाव मे लोगो द्वारा निर्वाचित ग्राम-पञ्चायत स्थापित करने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिए।

"अगर भारतीय जनता को स्वराज्य के अधिकार दिये जाते हो तो उनकी स्थापना प्राचीन ग्राम-पञ्चायतो के आधार पर होनी चाहिए, क्योकि अबतक के अनुभव से यह सिद्ध हो चुका है कि हिन्दुस्तान जैसे विशाल और कृषिकर्मासक्त देश के लिए ग्राम-व्यवस्था ही उपयुक्त है।[1]

"यूरोप मे सम्पत्ति की विषमता के कारण धनवान और गरीबो मे भारी अन्तर पडकर गरीब लोगो का जो बेहाल होने लगा है, उसे दूर करने के लिए 'सोशलिज्म' (समाजवाद), कम्यूनिज्म' (साम्यवाद) आदि विभिन्न 'वाद निकलने लगे है। बहुतो के ध्यान मे अब यह बात आने लगी है कि हिन्दुस्तान-जैसे ग्राम-पञ्चायतो से युक्त देशो मे सम्पत्ति की विषमता के इस प्रकार के परिणाम बहुत अधिक दिखाई नही देते, इसलिए अनेक लोग यह आवश्यक समझने लगे है कि जहा इस तरह की ग्राम-पचायते कायम है वहा वे बदस्तूर कायम रखी जायें और जहा नही है वहा कायम की जाय।"[2]

१ म. रा. बोड्स 'ग्रामसस्था' पृ० ११-३४

२. " "

बम्बई की काग्रेस सरकार ने ग्राम-पचायतो की उपयुक्तता अनुभव कर हाल ही मे गाव-गाव मे उनकी स्थापना करने के सम्बन्ध मे एक प्रस्ताव स्वीकार किया है, इससे वहा यह कार्य और भी सुलभ होगया है।

अब इन ग्राम-पचायतो को, जिन-जिन बातो मे अपने गाव की उन्नति होती है, वे सब करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। गाव मे होनेवाले दीवानी और फौजदारी सब तरह के झगडे गाव के निर्वाचित पचो को ही निपटाने चाहिए। पचायत को ही गाव के सब लोगो की व्यवस्था करनी चाहिए, सब लोगो को काम देकर धन्धे से लगाना चाहिए। इस बात का ध्यान रखा जाय कि गाव मे कोई भी बेकार न रहने पावे, ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि जो चीज अपने देश मे मिल सकती है वैसी कोई भी विदेशी वस्तु गाव मे न आने पावे। गाव मे पूरी सफाई रहे। स्त्रियो के शौच जाने के लिए चारो ओर रोक लगे हुए स्थान पर टट्टी बननी चाहिए और पुरुषो के लिए 'चलते-फिरते किसानी सण्डास' (Trench Latrines) बनाने चाहिए। ग्राम-पचायत के काम के लिए गाव के सब श्रेणी के लोगो से परिचय होता है।

शासन-कार्य के सम्बन्ध मे सरकारी दृष्टि से गाव अन्तिम इकाइया है। उसी तरह काग्रेस का सन्देश पहुचाने की दृष्टि से गाव राष्ट्रीय सगठन का अखीरी सिरा है।

इसलिए कार्यकर्त्ता को वहा ग्राम-काग्रेस-कमेटी स्थापित करनी चाहिए, काग्रेस के अधिक-से-अधिक मेम्बर बनाने चाहिए और समय-समय पर प्रकाशित होने वाले काग्रेस-कार्यक्रम को पूरा करना चाहिए। जनता के एकरस होने की दृष्टि से काग्रेस का कार्यक्रम बहुत उपयुक्त ठहरता है।

अबतक के विवेचन से यह स्पष्ट होजाता है कि खादी के कार्य द्वारा कार्यकर्त्ता का जनता के साथ जितना सम्पर्क आता है उतना और किसी कार्यक्रम से नही आता। ऊपर जिस कार्यक्रम का उल्लेख किया गया है उसे उदाहरणरूप समझना चाहिए। प्रत्येक गाव की परिस्थिति के अनुसार उसमे थोड़ा-बहुत परिवर्तन किया जा सकता है। हिन्दुस्तान मे ७ लाख गाव है।

इन सात लाख गावो मे घर-घर चरखा और गली-गली करघा शुरू करना कोई साधारण बात नही है। इसके लिए जबरदस्त सगठन करना पडेगा। यदि वह होसका तो देश मे न जाने कितनी जबरदस्त शक्ति पैदा हो जायगी। परन्तु यह सगठन हमे उसी जोश-खरोश के साथ करना चाहिये जिससे कि पश्चिमी देशो मे महायुद्ध शुरू होने पर बम के कारखाने चल रहे है। युद्धमान पश्चिमी देशो मे जिस प्रकार आबालवृद्ध स्त्री-पुरुष महा-युद्ध का कोई न कोई काम अवश्य करते है उसी प्रकार इस अहिसक सगठन को बनाने के लिए हिन्दुस्तान के बडे-छोटे साथी को उत्साह से कूद पडना चाहिए। स्वतन्त्रता की प्राप्ति ही इस उत्साह की प्रेरक शक्ति होनी चाहिए। यदि चालीस करोड लोगो की एक ऐसी प्रचण्ड शक्ति बन गई तो सरकार इन ४० करोड लोगो को जेलखाने मे नही डाल सकेगी। यदि सरकार ने इनमे से एक लाख आदमियो को गोली से उडा दिया तो भी उससे स्वराज्य रुक नही सकेगा। हिसक सगठन मे जो बल होता है वह हिंसा का नही, बल्कि सगठन का होता है। हिंसक सगठन की बनिस्बत अहिसक सगठन ज्यादा बलवान होता है। दूसरे को मारने की अपेक्षा सिद्धात के लिए स्वय मरने मे ज्यादा शौर्य और धैर्य की जरूरत होती है। यह ध्यान मे रखना चाहिए कि अहिंसात्मक सत्याग्रह दुर्बल का नही बलवान का शस्त्र है।

महात्माजी ने दिसम्बर सन् १९३६ मे फैजपुर काग्रेस के समय खादी और ग्रामोद्योग प्रदर्शिनी' के पण्डाल मे खादी के सगठन द्वारा स्वराज्य प्राप्त करना किस प्रकार सम्भव है' इस विषय पर जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाषण दिया था, वह सर्वथा उचित होनेसे नीचे उद्धृत किया जाता है।

"आज मै आप लोगो को कोई नई बात सुनाने नही आया हूँ। पहले जो कहता था, उसका पुनरावर्त्तन ही करूगा। चर्खा-सघ को, या यो कहिए कि खादी को १८ वर्ष होगये है। ग्राम-उद्योग-सघ का जन्म इसकी छाया मे हुआ, और उसे दो वर्ष हुएहै। जब खादी का आरम्भ हुआ, तब लोगा के आगे मैने अपना यह विश्वास प्रकट किया कि था चरखे से स्वराज्य

मिलेगा, सूत के धागे मे हम स्वराज्य लेगे। उस समय यह कितने ही लोगो को पागलपन की बात मालूम हुई होगी। स्वराज्य, पूर्ण स्वराज्य या मुकम्मल आजादी के मानी ये है कि हमारे ऊपर कोई भी विदेशी सल्तनत राज्य न करे। यह आजादी चार बाजू की होनी चाहिए। अर्थ सिद्धि का मतलब यह है कि लोग उसमे भूखो न मरे। इसका अर्थ यह नही कि रूखी-सूखी रोटी सबको मिलती जाय। इसका अर्थ तो यह है कि हम सुखसे रहे और रोटी के साथ हम घी भी मिले, और दूध और साग भाजा भी मिले। जो गोश्त खाना न छोड सकते हो उन्हे गोश्त भी मिले। इसके बाद पहनने के लिए भी मेरे जैसा कच्छ या लगोटी नही किन्तु गृहस्थो के जैसे वस्त्र मिले—पुरुषो को अगरखा, कुर्त्ता, साफा वगैरा और स्त्रियो को पूरी साडी और दूसरे कपडे। (आज जिस फैशन की पोशाक की चलन है वैसी तो नही, पर हा, पुराने जमाने मे गृहस्थ जसे कपडे पहनते थे, और जिसके नमूने आप इस प्रदर्शिनी मे देखेगे, वैसे सुन्दर कपडे जरूर मिलने चाहिए।)

'सभी भूमि गोपाल की'

दूसरी है राजनैतिक आजादी। यह भी भारतीय होनी चाहिए। यह यूरोपीय नमूने की न हो, ब्रिटिश पार्लमेण्ट या सोवियट रूस या इटली का नमूना मै कैसे लूँ? मै किसका अनुकरण करूँ? मेरी राजनैतिक आजादी इस प्रकार की नही होगी, वह तो भारत-भूमि की रुचि की होगी? हमारे यहाँ स्टेट तो होगी, पर कारबार किस प्रकार का होगा, यह मै आज नही बता सकता। गोलमेज कान्फ्रेस मे मैने यह कहने की धृष्टता की थी कि अगर आपको हिन्दुस्तान के लिए राजकीय विधान का नमूना चाहिए तो कॉग्रेस का विधान ले लीजिए। इसे मेरी धृष्टता भले ही कहे। पर मेरी कल्पना के अनुसार तो गरीब और अमीर दोनो एक झडे की सलामी करते है। पच कहे सो परमेश्वर! इसलिए हमारे यहाँ के भलेमानस हिन्दुस्तान को जानने वाले करोडो मनुष्य जैसा तन्त्र चाहते हो वैसे की हमे जरूरत है। यह राजनैतिक आजादी है। इसमे एक आदमी का नही, बल्कि सबका राज्य होगा। मै समाजवादी भाइयो से कहूँगा कि हमारे यहाँ तो—

सभी भूमि गोपाल की, वा में अटक कहा ?
जाके मन मे अटक है, सोई अटक रहा ।

इस सूत्र को युगो से मानते आरहे है । इसलिए यह भूमि जमीदार की नही, मिल-मालिक की नही, या गरीब की नही, यह तो गोपाल की है—जो गायो का पालन करता है उसकी है । गोपाल तो ईश्वर का नाम है, इसलिए यह भूमि तो उसकी है । हमारी तो कही ही नही जा सकती । यह न जमीदार की है और न मेरे जैसे लगोटिये की । यह शरीर भी हमारा नही, ऐसा साधु-सन्तो ने कहा है । यह शरीर नाशवान् है, केवल एक आत्मा ही रहनेवाली है । यह सच्चा समाजवाद है । इस पर हम अमल करने लग जाय, तो हमे सब-कुछ मिल गया । इस सिद्धात का अनुकरण करनेवाला आज कोई दीख नही रहा है, तो इसमे सिद्धान्त का दोष नही, दोष हमारा है । मै इसकी व्यावहारिकता बिल्कुल शक्य मानता हूँ ।

चार समकोण

स्वराज्य का तीसरा भाग नैतिक या सामाजिक स्वतन्त्रता का है । नैतिक और सामाजिक को मै मिला देना चाहता हूँ । या तो हमारा स्वराज्य चक्र होना चाहिये या चतुष्कोण । मेरी कल्पना शुद्ध चतुष्कोण की है । इसके दो समकोण मैने कह दिये है । यह तीसरा है । इस तीसरे मे प्राचीन-काल से हमे जो नीति मिलती आरही है, वह नीति है—सत्य और अहिसा की । चौथा कोण धर्म का है, क्योकि धर्म के बिना ये तीनो पाये खड़े नही रह सकते । कोई अगर कहे कि मै तो सत्य को मानता हूँ, तो मै उससे कहूँगा कि तुम सत्य को मानते हो तो खुदा को क्यो नही ? मै तो कहता हूँ कि अगर मै सत्य को मानता हूँ तो भगवान् को भी मानता हूँ । कारण, भगवान का नाम ही सत्यनारायण है । मेरा सत्य तो जीवित है, वह ऐसा जीवित है कि दुनिया मे जब सब मिट जायगा तब यही एक रहेगा । सिक्ख 'सत् श्री अकाल' कहते है, गीता कहती है कि सत् का नाम लेकर सब काम करो, कुरान कहता है कि खुदा एक है । इस प्रकार सत् को माननेवाले हम सब एक-दूसरे के गले क्यो काटे ? मुसलमान हिन्दुओ के गले

काटे, हिन्दू मुसलमान के गले काटे, सिक्ख दानो के काट, और ईसाई तीनो के गले काटे, यह बात ईश्वर को माननेवालो से तो हो ही नही सकती।

इस तरह चारो कोनो को हमे एक-सा सम्भालना है, यह सब ९० अश के समकोण है। इन चारो कोणो से बने हुए स्वराज्य को आप स्वराज्य कहिए, मै इसे रामराज्य कहूँगा।

धारा-सभा का कार्यक्रम

अठारह वर्ष पहले मैने कहा था कि यह स्वराज्य सूत के तार पर अवलम्बित है। वही मन्त्र मै आज भी बोल रहा हूँ। उसका स्मरण आज भी करा रहा हूँ। यह बात नही कि धारा-सभा के कार्यक्रम को मै मानता नही हूँ। इसे एक बार नष्ट करने के लिए मैने कहा था, और डा० अन्सारी साहब के साथ मिलकर इसके सजीवन मे भी मेरा हाथ है। इसे सजीवन इसलिए करना पडा, क्योकि मैने देखा कि इसके बिना हम अपना काम चला नही सकते। पर यह कार्यक्रम आप लोगो के लिए नही है और न मेरे लिए है। हम सब कौन्सिलो के अन्दर जायगे तो वहा समायगे कहा ? हमारे देश की ३५ करोड की आबादी मे एक हजार या पन्द्रह सौ देश-सेवक भले कौसिलो मे चले जाय। पर उन लोगो को हुक्म तो हमे ही देना होगा। हमारी काग्रेस के कुछ प्रतिनिधि वहा रहेगे, पर उन्हे भेजने की राय देने का हक तो सबको नही है। मुझे तो वोट देने का हक नही। मुझे तो ६ वर्ष की सजा हुई थी, इसलिए मै नापास समझा जाता हू। ३५ करोड मे से ३१॥ करोड को मत देने का हक नही। उनके साथ ही मै रहू, यह अच्छा है न ? बोलिये, आप क्या कहते है? (आवाज—"३१॥ करोड के साथ") बहनो ! आप क्या कहती है ? (आवाज—"हमारे साथ।") आपके साथ तो हू ही। जिस माता की गोद मे खेला, जिस माता का दूध पिया, उन माताओ के कन्धे के ऊपर कैसे बैठूगा ? उनके तो चरणो के आगे रहूगा, उनकी सेवा करूगा।

अब जो ३॥ करोड मत देनेवाले बचे, उनमे से कितने धारासभाओमे जाय? पन्द्रह सौ जगहोके लिए हम लडे तो यह कहा जायगा कि हमने स्वराज

का कत्ल कर दिया। कहते है कि आज ऐसा कत्ल होरहा है। धारा-सभा का कार्यक्रम शरीफ आदमियो के लिए ही होना चाहिए । लेकिन गन्दे आदमी वहा घुस जायँ तो क्या करेगे ? पर खैर, यह तो हुआ। जिन्हे मत नही देना है, वे ३१॥ करोड़ क्या करेगे ? उनके लिए तो सिवा रचनात्मक कार्यक्रम के दूसरा कुछ है ही नही।

जो धारा-सभाओ मे जायेगे वे वहा कितना काम कर सकेंगे, यह बतला दू। हिन्दुस्तान मे जो आर्डिनेन्स का राज्य चलता है उसमे काग्रेस के भी प्रतिनिधि शामिल थे । इतिहास मे अगर यह न कहा गया तो काफी है। कोई गन्दा मनुष्य भी बनौर हमारे प्रतिनिधि के चला जायगा, पर मत तो उसका हमारे पक्ष मे ही पडेगा । प्रतिनिधि आर्डिनेन्सो का बचाना रोक नही सकते । जवाहरलाल को जेल जाने या फासी पर चढने से वे रोक नही सकेंगे। और वह तो फासी के नख्ते पर भी बहादुरी से और हॅसने-हॅसते चढेगे। पर उन्हे जो भी सजा मिले उसके लिए काग्रेस के प्रतिनिधियो की मजूरी नही मिलेगी । सुभाष बोस को शायद बगाल के प्रतिनिधि छुडाले, और सम्भव है कि शायद यह भी अनुचित बात काग्रेसवालो के हाथ से नही होगी। किसी भी गन्दी बात मे हमारा वोट नही मिलेगा। आर्डिनेन्स राज्य का अर्थ है, जैसा बादशाह कहे वैसा करना। ऐसे राज्य को हमारे प्रतिनिधियो की मजूरी नही मिलेगी।

आजादी नहीं दिला सकते

लेकिन ये प्रतिनिधि हमें आजादी नही दिला सकते । वह तो सूत के तार से ही मिलेगी। सूत का तार छोडा और आजादी का जाना शुरू हुआ। इसमे अग्रेजो का अपराध तो था ही, पर हम भी पागल बन गये। हमने चर्खा छोड दिया हमने विलायत से आनेवाला कपडा लेना शुरू कर दिया। इसलिए हमारे देश मे लोगो के हाथ मे कुछ भी काम नही रहा और करोडों मनुष्य बेकार होगए। अगर दूसरे किसी भी उपाय से हमारे आदमी बेकार न रहे, सबको खाने-पीने को मिलने लगे और सब आराम से रह सके, तो हम खुशी से लकाशायर से कपडा मगाने

लगे लकाशायर से कपडा मगाना खुद कोई पाप नही है। लेकिन दूसरे के पापो की शोध करने से पहले उन दोनो कोनो का, यानी नीति और धर्म का पालन करना पडेगा। इस शर्तपर मुझे सूत के तार के बदले या चर्खे के बदले कोई दूसरी चीज दे तो मै उसका गुलाम बन जाऊँगा। पर यह चीज मेरी जिन्दगी मे पूरी हो सकेगी, ऐसा मुझे लगता नही। बाकी तो बनानेवाला ईश्वर है, उसे जो करना हो करे।

आज मै सेगॉव चला गया हू, तो भी उसकी यही बात सुनता हू। हमारे लोग बेकारी से भूखो मर रहे है, पर इसका कारण केवल अग्रेजी राज्य नही है। यह भी इसका एक कारण है, अग्रेजी राज्य से बेकारी फैली और बेकारी से दारिद्रय, पर इस दारिद्रय को निमत्रण देने मे हमारा काफी हिस्सा है। बेकारी हमारे देश मे ईस्ट इडिया कम्पनी की बदौलत आई, पर आज जो आलस्य देखने मे आता है, इसमे तो हमारा ही दोष है। मै सेगॉव मे देखता हू न कि लोगो को उनके घर जा-जाकर पैसा दे तो भी वे आलस्य छोडकर काम नही करते। लोगो को पैसा दिलाने के, उनकी जेब मे थोडा-सा पैसा डालने के मार्ग तो बहुत है, पर वे नीति के अनुकूल होने चाहिए। शराब के धन्धे से भी पैसा मिलता है, पर वह किस काम का? खजूर के पेडो से यो ताडी बनती है, पर मै उनसे गुड बना रहा हू। ऐसा गुड बना रहा हू कि जैसा आपने कभी नही खाया होगा। इसमे मै अतिशयोक्ति नही कर रहा हू। यह गुड अगर पैदा हो सका तो मै कुछ हजार रुपये तो सेगाव के लोगो की जेब मे डालूगा ही। अब उन पेडो से ताडी निकाले तब भी रुपया मिलेगा। पर इससे आजादी नही मिलेगी, और मिले भी तो भी मुझे नही चाहिए। मै तो यह कहता हू कि मै वहा गुड दाखिल करू। और उसके बाद लोग चोरी से ताडी बनाने लगे तो मुझे उनके विरुद्ध कडा सत्याग्रह करना पडेगा। इसलिए ऐसा धन्धा मुझे कोई खादी के बदले बतावे तो उसे मै स्वीकार नही करूगा। किन्तु कोईभी नीति से चलनेवाली वस्तु खादी के बदले कोई मुझे बतावे तो उसे मै उठा लेने के लिए हू। वह मुझे किसी ने बताई नही।

इसीलिए मै कहता हू कि सूत के तार से ही स्वराज्य मिलेगा, पर इसके साथ नीति की जरूरत है। कुछ लोग ठगबाजी के लिए और खून करने के लिए भी खादी पहनते है। उनकी मनोदशा को मै खादी की मनोदशा नही कहता। हमारा हृदय जब खादी से व्याप्त हो जायगा, तब हमारी आजादी को रोकनेवाली एक भी शक्ति टहरने की नही। गावो मे बसनेवालो को हमे यही चीज सिखानी है। इतना उन्होने समझ लिया और कर लिया तो फिर धारा-सभाये सो जायगी। कारण कि हम तो इसके पहले ही स्वराज्य प्राप्त कर चुके होगे।

मैने इसी समझ से एक साल के अन्दर स्वराज्य प्राप्त करने की बात अठारह साल पहले कही थी। वही बात आज भी कह रहा हू, और की थी इसके लिए मुझे जरा भी शर्म नही। मैने जिन शर्तो को पूरा करने के लिए कहा था, उनमे से क्या एक भी पूरी हुई थी ? आज भी उन्हे आप पूरा करे तो स्वराज्य हस्तामलकवत् है। आज हिन्दू-मुस्लिम-एकता कहा है ? बम्बई मे हाल मे कैसी-कैसी शैतानिया हुई। आज वे करोड चर्खे कहा है ? और कहा है वे नियमित रूप मे रोज आधा घण्टा कातनेवाले ? (यद्यपि आज तो मै पाच घण्टा कातने को कहता हू, क्योकि कातनेवाले बहुत थोडे रह गये है।) और हमने अस्पृश्यता कितनी दूर की है ? त्रावणकोर की यह घोषणा तो समुद्र मे एक बूद के समान है। अस्पृश्यता जब बिलकुल नष्ट हो जायगी, तब हिन्दू मुसलमान गले मिलेगे। अस्पृश्यता को जड-मूल से नष्ट करने का अर्थ है, सबको अपना भाई बनाना—हरिजनो को ही नही, बल्कि मुसलमान ईसाई वगैरा को भी अस्पृश्य न मानना। और हमे जो शराब का सम्पूर्ण बहिष्कार करना था, वह किया है क्या ? मैने तो इसके अलावा सरकारी स्कूलो, अदालतो और धारासभाओं के बहिष्कार की भी बात की थी। मान लीजिए कि आज भी कोई धारासभा मे नही जाना चाहता तो मै किसी से जाने का आग्रह करता हू क्या ? मै तो बनिया ठहरा, जो बात लोगो को पसन्द नही आई, और जिसे वे हजम नही कर सके, उसे छोड दिया और धर्म और नीति के अनुकूल उनके सामने दूसरी चीज रख दी।

आर्थिक सूर्य-मण्डल

आज मै सरल शब्दो मे एक बडी ऊची बात आप लोगो से कह रहा हू—अगर आप चख को अपनायेगे तो आप देखेगे कि सूत के तार से स्वराज्य मिलता है या नही ? सारा हिन्दुस्तान तो सूर्य-मण्डल है । उसमे चरखा मध्य-बिन्दु है, और इसके आसपास ग्राम-उद्योग-रूपी ग्रह चक्कर लगा रहे है । नभोमण्डल मे तो नवग्रह कहे जाते है, पर चरखे के आस-पास तो अनन्त ग्रह घूमते है । इस मध्यचक्र अर्थात् सूर्य को मिटाने का अर्थ है, आसपास के सभी उद्योगो का नष्ट कर देना । आज सूर्य सेवा करता है तो उसकी गरमी से टिके हुए दूसरे ग्रह सेवा करते है । मूल सूर्य का अस्तित्व स्थिर हो गया तो फिर दूसरे सब ग्रह तो उसके आसपास चक्कर लगायेगे ही ।

इस प्रदर्शिनी मे आप एक छोटा-सा सूर्य-मण्डल देखेगे । यह ता एक नमूना है, पर ऐसे नमूने से आप सारे हिन्दुस्तान को भर दे,सारा हिन्दुस्तान इस प्रकार के गावो का बन जाय, तो फिर धारासभा के कार्यक्रम की कोई जरूरत नही रहेगी, और न जेल जाने की जरूरत रहेगी । स्त्रियो को तो जेल जाना ही नही पडेगा, बल्कि पुरुषो को भी नही जाना पडेगा । हमे जेल मे अपने पाप के कारण जाना पड़ता है, याने इससे कि रचनात्मक काम को हाथ मे नही उठा लेते ।

ऊंचा उपाय

इसलिए यह एक ऊचा उपाय है । इसके आगे हिंसक उपाय फीका पड जाता है । हमारी सख्या इतनी ज्यादा है कि ३५ करोड सहज ही ७०,००० अग्रेजो को पत्थर मारकर भी मार डाल सकते है । लेकिन फिर ३५ करोड के बारे मे क्या कहा जायगा ? इससे आजादी मिलनी तो दूर, पर ईश्वर याने ससार हमारे ऊपर थूकेगा । और ब्रिटिश सरकार के पास इस सम्बन्ध मे धर्म नही, नीति नही । वह तो हवाई जहाजो से बम फेकेगी, और जहरीली गैस बरसायगी, यह भय तो हमेशा है ही । इस भय को मिटाने के लिए मैने चर्खा खोजा, और आज सेगाव मे बैठा हू, पर रटना उसी की है । आज भी मुझ मे जेल जाने की शक्ति है, पर अब मै ६८ वर्ष

का होगया हू, अब तो आप लोगो मे जो जवान है, वे जेल मे जाय। लेकिन आज तो मै आपके आगे वह चीज रख रहा हू, जो मेरे अन्दर भरी हुई है। जेल तो जाने के लिए तैयार हू, फासी पर चढने को भी तैयार हू—शायद जवाहरलाल की तरह हसते-हसते नही, रुआसी आखो से चढू। पर आज इसके लिए सवाल कहा पैदा हुआ है? मै तो कहता हू कि ३५ करोड आदमी अगर बुद्धिपूर्वक हिसा का नाम छोड दे और मेरे बताये अनुसार चर्खे को अपना ले, तो धारा-सभा या जेल मे जाने की, फासी पर चढने की, अर्जिया भेजने की या लार्ड लिनलिथगो के पास जाने की जरूरत रहेगी ही नही। उलटे लार्ड लिनलिथगो काग्रेस मे आकर कहेगे कि तुम्हे जो चाहिए, ले लो और हमे यह बताओ कि हम यहा किस तरह रहे? वह कहेगे—'हमसे गलती हुई। तुम्हारा वर्णन हमे आतकवादी और हिसावादी के रूप मे नही करना चाहिए था। अब तुम रखोगे तो रहेगे, और जिस तरह रहने को तुम कहोगे, उस तरह रहेगे।' इसके बाद हमे विदेशियो को रोकने के कानून की जरूरत नही रहेगी। हम उन लोगो से कहेगे, तुम दूध मे शक्कर की तरह मिल जा सकते हो तो मिल जाओ, फिर हमे कोई अलग नही कर सकता।'

यह मेरा स्वप्न है। यह स्वप्न सेगाव मे रहकर मुझे इतना प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि मुझे लगा कि आप लोगो को यह सुना देना चाहिए। आगामी काग्रेस मे मिलूगा या नही, इसकी किसे खबर है? मै तो यमराज के लिए किवाड खोलकर बैठा हू, कौन कह कहता है कि वह कब आकर उठा ले जाय? इसलिए मेरे मन मे जो भरा हुआ था, उसे सुनाने का आज मैने अवसर लिया। मेरे बताये अर्थ से भरे हुए चर्खे मे हमारे देश के हरेक स्त्री-पुरुष, हिन्दू-मुसलमान, पारसी-ईसाई सबकी स्वतन्त्रता समाई हुई है—जिस स्वतत्रता मे सबका हक समान है—'सबै भूमि गोपाल की।'

: १६ :

सूत्र-यज्ञ का रहस्य

प्राचीन काल मे बडे बडे राजा-महाराजा भिन्न-भिन्न प्रकार के 'यज्ञ' किया करते थे। अपनी वाञ्छित कामना—आकाक्षा—की सिद्धि की इच्छा से ही ये यज्ञ किये जाते थे। ये यज्ञ प्रभूत परिमाण मे होते थे, इसलिए देश के सब तरह के लोगो को भिन्न-भिन्न कला-कौशल से लेकर साधारण मजदूरी तक के तरह-तरह के काम मिलते रहते थे। इससे उन्हे अपनी गृहस्थी चलाने मे काफी मदद मिल जाती थी।

लोकमान्य बालगगाधर तिलक ने यज्ञ के सम्बन्ध मे लिखते हुए "समाज के धारण-पोषण के उद्देश्य से जो कोई भी सार्वजनिक कार्य किया जाय, उसी का नाम यज्ञ है।" इन शब्दो मे उसकी व्याख्या की है। यज्ञ का सामान्य रूप है व्यक्ति का अपने आस-पास के समुदाय के हित के लिए बिना किसी पुरस्कार अथवा बदले की आकाक्षा के अपनी शक्ति का उपयोग होने देना। बिना किसी व्यक्तिगत फल की इच्छा रखे मनुष्य जो कार्य करता है वह यज्ञ कर्म होता है।

द्रव्य यज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे।
स्वाध्याय ज्ञान यज्ञाश्च यतय. सशितव्रता. ॥

इस श्लोक मे यज्ञ के द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ और ज्ञानयज्ञ आदि भिन्न-भिन्न नाम बताये गये है। तात्पर्य यह है कि यदि हम राष्ट्र का धारण-पोषण करनेवाली किसी भी सार्वजनिक सस्था की द्रव्य से सहायता करे तो वह 'द्रव्ययज्ञ' होगा। अगर सार्वजनिक उपयोग के लिए कोई एकाध कुआ, तालाब, सडक, बाग अथवा मन बहलाव की जगह तैयार करनी हो और उसके लिए हम कुछ शारीरिक श्रम करे तो वह हमारा 'तपोयज्ञ' होगा। पूज्य विनोबाजी ने कहा है—"राष्ट्रीय यज्ञ मे विचार-

पूर्वक भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रयोग करना, उनमे सशोधन करना एक प्रकार का तप ही है।[1] समाज-सेवा के लिए उपयुक्त और समर्थ व्यक्ति का चित्त निर्माण करने के लिए ध्यान-धारण की जो क्रिया की जाती है, वह 'योगयज्ञ' कहलाती है। जो व्यक्ति बिना किसी तरह का मुआवजा या बदला लिए ही विद्यार्थियो अथवा जनता को अपने ज्ञान का लाभ पहुचायेगा और यह ज्ञान यदि राष्ट्रीय प्रगति का पोषक हुआ तो उसका यह कार्य 'ज्ञानयज्ञ' कहलायेगा और अपनी नजरो के सामने यह ध्येय रखकर कि मुझे ऐसा ही 'ज्ञानयज्ञ' आगे भी करना है, उसकी तैयारी के लिए स्वय उन विषयो का अध्ययन करता है, उसके इस कर्म को 'स्वाध्याय-यज्ञ' कहा जा सकेगा। व्यक्ति की अपनी शुद्धि और विकास के लिए यह 'स्वाध्याय-यज्ञ' करना पडता है।

गत डेढसौ वर्षो से हिन्दुस्तान की करोडो रुपयो की सम्पत्ति अनेक मार्गो से विदेशो को ढोई जा रही है। इन अनेक मार्गो से केवल विदेशी कपडे के द्वारा ही हमारे करोडो रुपये बाहर चले जाते है। ये कपडे 'जहाज' जैसी कोई वस्तु नही है जो वर्तमान परिस्थिति मे यहा तैयार न हो सकते हो। हिन्दुस्तान मे रुई काफी तादाद मे पैदा होती है, करोडो लोग काम के अभाव मे बेकार फिरते है, चरखे आदि साधन-सामग्री परम्परा से अपने पास मौजूद है। ऐसी स्थिति मे अपने यहाँ प्रति वर्ष करोडो रुपये के विदेशी कपडे का खपना अत्यन्त दुखदायक, लज्जास्पद और दुर्भाग्य की बात है।

हिन्दुस्तान की वर्तमान स्थिति को ध्यान मे रखकर महात्माजी का कहना है कि "इस समय सब लोगो के लिए अधिक नही तो कम-से-कम आध घटा तो प्रतिदिन नियमपूर्वक कातना आवश्यक है। वर्तमान युग मे भारत-वासियो के लिए यह यज्ञकर्म है।" स्वय महात्माजी इस नियम का पालन करने मे कितने नियमित है, यह बात इसीसे प्रकट है कि दूसरी गोलमेज परिषद के मौके पर जब वे विलायत गये तो वहाँ उन्हे कार्य की अधिकता के कारण अवकाश न मिलने पर वे रात के बारह-बारह बजे तक

१. उदाहरणार्थ तकली और चरखे की गति बढ़ाने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रयोग करना 'तपोयज्ञ' होगा।

चरखे पर सूत काते बिना नही रहे।

यह यज्ञ-कर्म किस तरह है, इस सम्बन्ध मे महात्माजी की विचार-सरणी यह है कि विदेशी कपडे के बदले मे प्रतिवर्ष राष्ट्र के ५०–६० करोड रुपये देश से बाहर जाते है। इस प्रकार 'राष्ट्र मे गढा पड़ गया है, उसे भरने के लिए नित्यप्रति जो कार्य नियमपूर्वक उपासना बुद्धि से जो कार्य किया जाय उसे यज्ञ कहा जाता है"[१] 'बूद-बूद जल भरे तलावा' इस कहावत के अनुसार यदि प्रत्येक व्यक्ति नियमपूर्वक आधा घटा प्रति दिन काते तो वर्ष के अन्त मे ३६५ दिन का बहुत-सा सूत इक्ट्ठा हो जायगा। जितना सूत काता गया, उतनी ही राष्ट्र की सम्पत्ति मे वृद्धि हुई। उस सूत की जितनी खादी तैयार होगी, उतना ही विदेशी कपडे की खपत कम होगी। यदि हिन्दुस्तान के ४० करोड लोग इस तरह अमल करने का निश्चय कर ले तो ५०--६० करोड रुपयो मे से हम देश के कई करोड रुपये बचा सकेगे। ये करोड़ो रुपये यदि देश मे बच जाय, तो इनसे देश मे और अधिक उद्योग-धन्धे शुरू किये जा सकते है। देश की बेकारी दूर करने का यह एक उपाय है। इस प्रकार सूत्र-यज्ञ अर्थात् नित्य नियमपूर्वक आध घटा रोज सूत कातना हिन्दुस्तान के भरण--पोषण करने—उसकी आर्थिक उन्नति करने का एक मार्ग है। आज की परिस्थिति मे यह हमारा एक धर्म है, लेकिन 'जो जो करेगा उसका' है।

देश, काल, परिस्थिति के अनुसार यज्ञ का स्वरूप बदलता रहता है। आज देश मे विदेशी कपडे के जरिये प्रतिवर्ष बाहर जाने वाले ५०–६० करोड रुपये से जो गढा पडता है, हमे उसे पूरना—भरना—है, इसलिए महात्माजी ने सूत्रयज्ञ की कल्पना देश के सामने रखी है। लेकिन मान लीजिए की देश की अन्न-वस्त्र की आवश्यकता किसी उपाय से देश की-देश मे ही पूरी हो जाय, तब महात्माजी अथवा देश के अन्य नेता देश मे फैली हुई भयङ्कर निरक्षता को दूर करने का प्रश्न हाथ मे लेगे, क्योंकि देश की अन्न-वस्त्र के बाद की दूसरी आवश्यकता साक्षरता अर्थात् शिक्षा की है उस

१. विनोबाजी का एक भाषण

समय राष्ट्र की इस निरक्षरता को दूर करने के लिए यह नियम बनाया जायगा कि प्रत्येक व्यक्ति को एक निरक्षर व्यक्ति को आध घटा रोज नियमपूर्वक पढाना ही चाहिए। तब यह 'शिक्षण-यज्ञ' होगा। अथवा देश मे वृक्षो की सख्या बहुत कम हो गई है, इसलिए उस कमी को पूरा करने के लिए वर्ष मे तीन-चार 'वृक्षारोपण-दिन' मनाने की योजना की जायगी। उस दिन सामूहिक रूप से पेड लगाये जायगे और फिर यह नियम बना दिया जायगा कि प्रत्येक व्यक्ति को नियमपूर्वक आध घटा रोज इन वृक्षो को पानी पिलाना होगा। यह 'वृक्षारोपण-यज्ञ' होगा। मान लीजिए देश की खती की स्थिति खराब होगई है। केवल बरसात क पानी से काम नही चलता। इसलिए यदि विशेषज्ञ लोगो का यह मत हुआ कि पानी के बन्द बनाये बिना कोइ गति नही है, तब यह नियम बनाया जायगा कि प्रत्येक व्यक्ति को बन्द के लिए आध घटा रोज नियमपूर्वक खुदाई का काम करना चाहिए। यह 'कृषियज्ञ' होगा। साराश यह कि भिन्न-भिन्न समयो मे यज्ञ का स्वरूप भिन्न-भिन्न होता है।

सूत्र-यज्ञ की एक और भी उपपत्ति नीचे लिखे अनुसार है—

ससार मे लूटने वाले (exploiters) और लूटे जाने वाले (exploited) जो दो वर्ग बन गये है, इसका कारण शारीरिक श्रम से बचने की वृत्ति है। यह जो वृत्ति बन गई है कि उत्पादन के लिए शारीरिक परिश्रम तो दूसरे लोग करे और उससे जो लाभ हो उस पर हम हावी रहे, वह नष्ट होनी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को—फिर चाहे वह कितना ही विद्वान् और धनवान् क्यो न हो—उत्पादक श्रम करके ही अपना पेट भरना चाहिए। यदि इतना सम्भव न हो सके तो कम-से-कम आध घण्टा रोज 'सूत्र-यज्ञ' रूपी उत्पादक श्रम तो अवश्य ही करना चाहिए। क्या 'श्रम की प्रतिष्ठा' को अगीभूत करने के लिए—श्रम-देवता की उपासना करने के लिए 'सूत्र-यज्ञ' सरल-से-सरल उपाय नही है ?

"तुमको हमेशा यह सिखाया जाता है कि श्रम अभिशाप रूप है और शरीर-कष्ट करना दुर्भाग्य का लक्षण है। लेकिन मै कहता हू कि ससार के

आरम्भ काल से ही पृथ्वी-माता यह अपेक्षा करती है कि तुम श्रमजीवी जीवन व्यतीत करो, और इसीलिए जब तुम श्रम करते हो, तब पृथ्वी-माता के हृदय मे घर करके बैठी हुई आशा को सफल करते हो। श्रम-देवता की उपासना करना जीवन का सच्चा आनन्द भोगना है। श्रम करके जीवन रसास्वादन करना जीवन का गूढतम रहस्य समझना है।[१]

गत तेरहवी सदी मे एक शासक हो चुका है जो 'उत्पादक श्रम' की प्रतिष्ठा को मानता और इसीलिए स्वय उसके अनुसार प्रत्यक्ष आचरण करता था। यहा पर उसका उल्लेख करना आवश्यक है। दिल्ली के सिहासन पर आरूढ होकर जिन भिन्न-भिन्न मुस्लिम घरानो ने शासन किया, उनमे एक गुलाम घराना भी था। इसी गुलाम घराने के बादशाह अल्तमश का लडका नासिरुद्दीन मुहम्मद वह शासक था। सन् १२४६ मे यह तख्त पर बैठा और २० वर्ष बादशाहत करने के बाद १२६६ मे मृत्यु को प्राप्त हुआ। नासिरुद्दीन मुहम्मद कुरान की हस्तलिखित प्रतिया बेचकर उनकी आमदनी से अपना गुजर करता था। उसका रहन-सहन सादा और खान-पान भी किसी बनवासी साधु की तरह बिलकुल मामूली था, लेकिन विचार और सिद्धात उसके बहुत ऊचे थे। उसका कहना था कि प्रजा से कर के रूप मे वसूल हुए पैसे पर अपने खर्च का भार डालना उचित नही है।

यही नही कि वह स्वय ही इस उच्च आदर्श का पालन करता था, बल्कि उसकी बेगम भी अपने महल का सब काम-काज खुद ही करती थी। भोजन बनाते समय बेगम साहिबा का हाथ जल जाने पर उससे उसने भोजन बनाने के लिए एक दासी नौकर रखने की प्रार्थना की, लेकिन नासिरुद्दीन ने यह कह कर वह प्रार्थना अस्वीकृत करदी कि दासी नौकर रखने से श्रम की प्रतिष्ठा घट जायगी और प्रजा के पैसे का दुरुपयोग होगा। कितनी आदर्श है यह तत्त्वनिष्ठा!

'सूत्रयज्ञ' पर ध्यान देने का एक तीसरा कारण और भी है। हिन्दुस्तान मे दलित समाज काफी बडा—करोडो की सख्या मे है। सामाजिक,

१. सीरियन तत्त्वज्ञानी खलील जिब्रान।

राजनैतिक और आर्थिक आदि अनेक दृष्टियो से वह कष्ट पाता है । उनके लिए हमारे दिल मे व्यथा है, व्यग्रता है, यह हम कैसे व्यक्त करेगे ? केवल व्याख्यान दे देने से काम नही चलेगा। उनके साथ एक–रस होने के लिए जिस तरह का वे श्रमजीवी जीवन बिताते है, उसी तरह का जीवन हमे भी बिताना चाहिए, लेकिन यदि वर्त्तमान स्थिति मे यह सम्भव न हो सके तो उस श्रमजीवी जीवन के श्रीगणेश के तौर पर हमे कम से-कम आध घण्टा रोज नियमित रूप से सूत कातना चाहिए । इस आध घण्टे के 'सूत्र-यज्ञ' को दलित-समाज के श्रमजीवी जीवन का प्रतिनिधि स्वरूप समझना चाहिए ।

इस प्रकार त्रिविध दृष्टि से 'सूत्र-यज्ञ' पर विचार किया जा सकता है—

(१) विदेशी कपडो के कारण देश मे पडे हुए भारी गढे की पूर्ति के लिए ।

(२) श्रम की प्रतिष्ठा बढाने के लिए और

(३) देश के करोडो श्रमजीवी लोगो के जीवन से समरस होने के लिए।

क्या इन सब बातो के लिए हम नियमित रूप से आध घण्टा रोज सूत कातने का सङ्कल्प नही करेगे ? कर्त्तव्य-बुद्धि से प्रेरित होकर जो सकल्प किया जाता है, परिणाम मे उससे अपनी आत्मोन्नति को पुष्टि ही मिलती है ।

: १७ :

चरखा-संघ

अबतक खादी के सम्बन्ध मे तात्विक विवेचन मुख्यत किया गया है। अब खादी के प्रत्यक्ष कार्य के सम्बन्ध मे विचार करना है। देश मे खादी का प्रचण्ड काम करनेवाली सस्था 'अखिल भारतीय चरखा-सघ' है। इस सस्था के कार्य का परिचय कराने से पहले यह देखना जरूरी है कि इस सस्था की स्थापना के पहले खादी का काम किस तरह चल रहा था।

महात्मा गाधी को चरखे की उपयुक्तता और कार्यक्षमता का अनुभव बहुत समय पहिले ही होगया प्रतीत होता है। उन्होंने सन् १९०८ मे विलायत से दक्षिण अफ्रीका जाते समय जहाज मे 'हिंद स्वराज्य' नाम की मुद्रित पुस्तक लिखी थी। उसमे उन्होंने शुरू मे ही चरखे का उल्लेख किया है।

सन् १९१५ मे वह दक्षिण अफ्रीका छोडकर स्थायीरूप से हिन्दुस्तान मे रहने के लिए आये और अहमदाबाद के निकट पहले कोचरब मे और बाद को साबरमती मे अपना सत्याग्रह आश्रम स्थापित किया। उस समय पहले-पहल प्रत्यक्ष कार्य का आरम्भ हुआ। पहली शुरुआत भी 'चरखे' से नही 'करघ' से हुई। पाठको को आश्चर्य होगा कि जैसा कि महात्माजी ने स्वय कहा है, "सन् १९०८ ई० तक चरखा अथवा करघा देखने का मुझे स्मरण तक नही था। इतना होने पर भी 'हिन्दस्वराज' लिखते समय मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि चरखे द्वारा ही हिन्दुस्तान की दरिद्रता नष्ट होगी, क्योकि यह मानने मे कोई हर्ज नही है कि जिस उपाय से भुखमरी टलेगी उसी उपाय से स्वराज्य मिलेगा, यह बात सब के समझ मे आने जैसी है। सन् १९१५ ई० मे दक्षिण अफ्रीका से हिन्दुस्तान आया तबतक भी मे चरखे के

दर्शन नही कर पाया था । आया तब आश्रम स्थापित किया और करघा लगवाया ।"[1]

करघा शुरू करने मे भी उन्हे कितनी अडचने उठानी पडी और चरखे की शुरूआत पहले कहा से की जाय, इसकी खोज करने मे उन्हे कितना प्रयत्न करना पडा, इसके सम्बन्ध मे उन्होने अपनी 'आत्मकथा' के चौथे भाग मे 'खादी का जन्म' शीर्षक और उसके बाद के अध्याय मे अत्यन्त मनोरजक जानकारी दी है । जिज्ञासुओ को वह सब मूल पुस्तक मे अवश्य देखना चाहिए ।

लेकिन उक्त वर्णन मे से एक मुद्दे की ओर हम पाठको का ध्यान खासतौर पर आकर्षित करना चाहते है । वह यह कि सन् १९१७-१८ तक उन्होने चरखा देखा तक नही था, तो भी 'जिस मार्ग से लोगो की भुखमरी टलेगी, उसी मार्ग से स्वराज्य मिलेगा—जनता की भुखमरी बढाने मे स्वराज्य नही मिलेगा'—यह तत्त्व उन्हे सन् १९०८ मे ही मालूम होगया था और इस बात का उन्होने सन् १९०८ मे लिखी हुई अपनी 'हिन्द स्वराज' नामक पुस्तक मे उल्लेख भी किया है ।

चरखे द्वारा हमे स्वराज्य प्राप्त होगा, यह बात उन्होने पहले-पहल सन् १९१८ मे प्रकट की ।

सितम्बर सन् १९२० मे कलकत्ता मे हुए काग्रेस के विशेष अधिवेशन मे काग्रेस के प्रस्ताव मे पहली बार खादी का उल्लेख हुआ । उसमें इस आशय का प्रस्ताव पास हुआ कि 'प्रत्येक स्त्री, पुरुष और बालक को देश के अनुशासन और स्वार्थ-त्याग का प्रतीक समझ कर सूत कातना चाहिए और हाथ से कते सूत के बने हुए वस्त्र का व्यवहार करना चाहिए ।'

इसके बाद अगले पाच वर्षों मे खादी की जैसी-जैसी प्रगति होती गई, उसी तरह काग्रेस उस सम्बन्ध मे अपनी नीति को किस तरह व्यापक करती गई, इसका हाल बडा मनोरजक है ।

१. आत्मकथा, भाग ४ अध्याय ३९

दिसम्बर १६२० मे नागपुर मे हुए काग्रेस के अधिवेशन मे कलकत्ता के ही प्रस्ताव को दुहराया गया।

मार्च सन् १९२१ मे बेजवाडा मे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की बैठक हुई थी। उसमे देश मे २० लाख चरखे चलाये जाने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

उसके बाद भिन्न-भिन्न काग्रेस कमेटियो ने खादी का अपने कार्यक्रम का एक अग समझकर उसका प्रचार किया।

सन् १९२२ मे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी ने देश मे होनेवाले खादी के कार्य पर देख-रेख रखने के लिए एक स्वतन्त्र 'अखिल भारतीय खादी विभाग' का निर्माण किया।

सन् १९२३ मे कोकनाडा मे हुए काग्रेस अधिवेशन मे अनेक प्रातीय काग्रेस कमेटियो द्वारा स्थापित 'प्रातीय खादी सघो' के सहयोग से देश मे होनेवाले सारे खादी-कार्य पर देख-रेख और नियन्त्रण रखने के लिए 'अखिल भारतीय खादी-सघ' की स्थापना की गई।

सितम्बर सन् १९२५ मे पटना मे हुई 'अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी' ने 'अखिल भारतीय चरखा सघ' नाम की सस्था स्थापित की। उस सम्बन्ध मे जो महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, उसका आवश्यक अश इस प्रकार है—

"चूकि हाथ से कातने की कला और खादी का विकास करने के लिए उसके विशेषज्ञो की एक सस्था स्थापित करने का समय आ पहुचा है और क्योकि अनुभव से यह सिद्ध हो चुका है कि राजनीति, राजनैतिक उथल-पुथल और राजनैनिक सस्था के नियन्त्रण और प्रभाव से दूर रहने वाली एक स्थायी सस्था के बिना ऐसा विकास हो सकना सम्भव नही है, इस लिए अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की अस्वीकृति से इस प्रस्ताव के द्वारा काग्रेस मे समाविष्ट किन्तु स्वतन्त्र अस्तित्व और सत्ता रखने वाली 'अखिल भारतीय चरखा सघ' नामकी सस्था स्थापित की जाती है।"

इस सघ के विधान व नियमो मे सघ की समय-समय पर हुई बैठको में कुछ परिवर्तन किये गये। फिलहाल जो विधान अमल मे है उसमे निम्न

लिखित बाते मुख्य है —

उद्देश्य—इस सघ के उद्देश्य ये होगे —

हाथ-कताई तथा हाथ-कती व हाथ-बुनी खादी की उत्पत्ति व बिक्री के तथा तत्सबधी अन्य सब प्रक्रियाओ के द्वारा—

(अ) गरीबो को पूरे या थोडे समय काम देकर राहत पहुँचाना,

(आ) उनको यथासम्भव जीवन-निर्वाह मजदूरी प्राप्त कराना,

(इ) उनकी बेकारी से रक्षा करने के लिए साधन मुहय्या करना, खास करके अकाल के दिनो मे, फसल न होने पर या दूसरे दैवी-सकट आने पर,

(ई) सामान्यत और यथा-अवकाश शिक्षण, दवाई आदि की सुविधाये कराना,

(उ) हाथ-कताई तथा खादी की उत्पत्ति व बिक्री तथा तत्सबधी दूसरी तमाम प्रक्रियाओ का शिक्षण देने तथा प्रयोग करने के लिए सस्थाये खोलना, चलाना या ऐसी सस्थाओ को सहायता देना, और

(ऊ) पूर्वोक्त उद्देश्यो के अनुकूल दूसरे कार्य या प्रवृत्तिया चलाना।

नियम—

१ सघ के सदस्य दो तरह के होगे—आजीवन सदस्य व सालाना सदस्य।

२ आजीवन व सालाना सदस्यो का मिलकर 'ट्रस्टी-मडल' होगा (जिसको आगे 'मण्डल' कहा गया है) वही सघ का सचालक मडल होगा।

३ (अ) आजीवन सदस्य तथा दूसरे ऐसे व्यक्ति होगे जिन्हे मडल रिक्त स्थानो पर आजीवन सदस्यो के तौर पर समय-समय पर ले—

महात्मा गाधी (अध्यक्ष) बाबू राजेन्द्रप्रसाद
सरदार वल्लभभाई पटेल श्रीमती राजकुमारी अमृत कुवर
श्री वि व जेराजानी श्री कृष्णदास छ० गाधी
श्री पुरुषोत्तम कानजी श्री धीरेन्द्र मजूमदार
श्रीकृष्णदास जाजू (मत्री)

(आ) सालाना सदस्यो की सख्या ३ से अधिक न होगी। वे आजीवन सदस्यो द्वारा सहयोगियो मे से हर साल इस काम के लिए बुलाई गई सभा मे उपस्थित सदस्यो के २/३ बहुमत से ले लिये जाया करेगे। फिलहाल श्री रघुनाथराय सालाना सदस्य है।

सूचना—आजीवन सदस्यो की सख्या ७ से कम और १२ से अधिक कभी न होगी।

४ मण्डल सघ के सब काम, कारोबार और प्रवृत्तियाँ चलावेगा और विशेषकर नीचे लिखे काम करेगा —

(अ) कर्ज लेना, चदा करना, स्थावर सम्पत्ति रखना, सघ की धन-सम्पत्ति जायदाद पर या अन्य तरह से लगाना,

(आ) कर्ज, दान या सहायता के तौर पर खादी सस्थाओ को आर्थिक या दूसरी तरह की मदद देना।

(इ) हाथ-कताई और हाथ-कती व हाथ-बुनी खादी की उत्पत्ति व बिक्री तथा तत्सबधी प्रक्रियाए सिखाने वाली या उनके प्रयोग करने वाली सस्थाए व विद्यालय खोलना या उन्हे सहायता देना,

(ई) खादी भडार खोलना या उन्हे सहायता देना,

(उ) खादी कार्यकर्त्ताओ का सगठन करना,

(ऊ) जमीन–जायदाद पट्टा, रहन, चार्ज, दान अथवा बिक्री से सम्पादन करना या अलग करना,

(ए) सघ की तरफ से मुकद्दमे अथवा अन्य कार्रवाई करना व दूसरी तमाम कानूनी कार्रवाई करना तथा सघ पर मुकद्दमे तथा अन्य कार्रवाई की जाय तो उनकी जवाबदेही करना,

(ऐ) किसी उपसमिति या व्यक्तियो को अपना कोई अधिकार देना,

(ओ) दावो झगडो को पच द्वारा निपटाना;

(औ) आमतौर पर सघ के उद्देश्यो की पूर्ति के लिए मण्डल जो बाते करना मुनासिब या जरूरी समझे वे सब करना।

५. मण्डल सघ के दो प्रकार के सहयोगी बनावेगा —

(अ) साधारण सहयोगी, व (आ) आजीवन सहयोगी ।

६. (१) जो व्यक्ति (अ) १५ साल से ऊपर की उम्र का हो,
(आ) आदतन खादी पहनता व इस्तेमाल करता हो,
(इ) अपना कता समान व अच्छे बल वाला मासिक १००० गज सूत या १२ रु. वार्षिक चन्दा
सघ को दे, वह सघ का साधारण सहयोगी बनाया जा सकेगा ।

(२) हर एक साधारण सहयोगी का कर्त्तव्य होगा कि वह हाथ-कताई और खादी के लिए प्रचार करता रहे ।

७ जिस व्यक्ति की उम्र १८ साल से ऊपर हो, जो आदतन खादी पहनता और इस्तेमाल करता हो और जो ५०० रु एक मुश्त सघ को दे वह सघ का आजीवन सहयोगी बनाया जा सकेगा ।

८. साधारण सहयोगी अपने चन्दे का सूत या रुपया, ६ मास तक न देने पर सहयोगी न रहेगा ।

सस्था ने १२ लाख रुपये की पूजी से अपने कार्य की शुरूआत की । अब पूजी ५४ लाख रुपये होगई है । अवश्य ही यह पूजी भिन्न-भिन्न प्रान्तीय शाखाओ और दूसरे खादी-केन्द्रो मे बाटी गई है ।

फिलहाल भिन्न-भिन्न प्रान्तो मे 'अखिल भारतीय चरखा--सघ' की कुल १९ शाखाये है । प्रत्येक प्रान्त मे खादी के काम मे दिलचस्पी रखने वाले श्रद्धावान् और प्रभावशाली सज्जन एजेन्ट के तौर पर यथा सभव नियत किये जाते है । यह नियुक्ति अखिल भारतीय चरखा-सघ की ओर से होती है। एजेण्ट पर अपने प्रान्त के खादी-कार्य-सम्बन्धी सब तरह की जिम्मे-दारी होती है । ये एजेण्ट अखिल भारतीय चरखा-सघ के प्रति उत्तरदायी होते है । बिना कहे ही यह बात समझ लेना चाहिए कि इन एजेण्टो को अवैतनिक ही काम करना पडता है ।

अपने उद्देश्य को दृष्टि के सामन रखकर सघने आज तक (१) खादी के औजारो मे उन्नति करने, (२) यथासम्भव खादी की उत्पत्ति बढाने और (३) खादी का माल अधिकाधिक सुन्दर, मुलायम और सस्ता करने

का प्रयत्न किया। खादी की लोक-प्रियता और उसकी बढती हुई खपत देख-कर मिलवालो ने अपने माल को भी खादी का ही बनाने का प्रयत्न शुरू किया, तब इस मनोवृत्ति पर रोक लगाने के लिए, मिलवालो और चरखा-सघ की ओर से महात्मा गाधी के बीच सन् १९२९मे यह समझौता हुआ कि—

(१) मिलवाले अपने माल पर खास तौर से ऐसी मुहर लगावे जिससे यह सहज ही झलक जाय कि यह माल खादी से भिन्न है,

(२) उन्हे अपने माल को न तो 'खादी' बताना चाहिए, न उसपर इस आशय की मुहर ही लगानी चाहिए ।

(३) मिलवाले खादी मे मिल सकनेवाला अथवा उससे स्पर्धा कर सकनेवाला माल तैयार न करे। इसके लिए उन्हे कुछ निश्चित नमूनो के अपवाद छोडकर, १८ नम्बर से ऊपर के ही सूत का माल तैयार करना चाहिए।

दुःख की बात है कि मिल-मालिको ने सत्याग्रह-आन्दोलन कमजोर रहने तक ही इस समझौते पर अमल किया। सन् १९३१ के आरम्भ मे हुई गाधी-इरविन-सन्धि के बाद से ही उन्होने इस समझौते के विरुद्ध काम करना शुरू कर दिया।

सक्षेप मे कहा जाय तो १९२५ से १९३३ तक होनेवाला खादी-कार्य बेकार और आर्त्त लोगो को सहायता और सुविधा पहुचाने के रूप मे था। किन्तु सन् १९३३ के हरिजन-दौरे मे देश की स्थिति का सूक्ष्म अध्ययन करते समय महात्माजी को यह अनुभव हुआ कि अभी तक जो खादी-कार्य हुआ वह शहरी ग्राहक किस तरह खुश हो, इस बात को सामने रखकर हुआ है। अभीतक शहरी ग्राहको को (१) उनकी इच्छानुसार मुलायम, (२) यथा-सम्भव सस्ती, (३) आवश्यक परिमाण मे और (४) जहा वे हो वही पहु-चाने के लिए यथासम्भव प्रयत्न किया गया। इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि ऐसा प्रयत्न करने का हेतु किसानो को सहायक धन्धा देना तो था ही, साथ ही इस रचनात्मक कार्य की ओर शहरी लोगो का ध्यान आकर्षित करना भी था।

हरिजन-दौरे के बाद महात्माजी ने अखिल भारतीय चरखा-सघ के ध्येय मे परिवर्त्तन किया। ३-४ अप्रैल सन् १९३४ को वर्धा मे सघ की कार्य-समिति की बैठक होकर उसमे खादी की उत्पत्ति और वस्त्र-स्वावलम्बन की प्रगति को ध्यान मे रखकर निश्चय किया गया कि—

(१) खादी जहा पैदा होती हो उसी गाव मे और उसके आसपास के इलाके मे खपाई जाय, और (२) विशेषत कातनेवाले, जुलाहे और उनके आस-पास के कुटुम्बो के हृदय मे यह बात बिठा देने का प्रयत्न होना चाहिए कि उन्हे अपने खुद के लिए आवश्यक वस्त्रो की पूर्त्ति के लिए स्वय कातना, बुनना और अपने ही गाव मे तैयार हुई खादी बापरनी चाहिए, और इसी पर जोर देकर जोरो से प्रयत्न किया जाय।

इन लोगो के लिए खादी का व्यवहार सुगम हो, इसके लिए खादी-भण्डारो के व्यवस्थापको को यह सूचना प्रकाशित करनी चाहिए कि इन्हे लागत के मूल्य मे ही खादी दी जायगी।

प्रत्येक गाव वस्त्र-स्वावलम्बी हो और जहा खादी तैयार हो, वही वह बेची जाय, खादी-कार्य का यह ध्येय पहले भी था, लेकिन अब उस पर अधिक जोर दिये जाने के कारण उसको अधिक प्रोत्साहन मिला।

अखिल भारतीय चरखा-सघ ने बेकार और दरिद्र लोगो का जीवन अधिक समृद्ध और सुखी करने लिए जो प्रयत्न किये, उसके तीन भाग है। उनमे का यह पहला भाग है।

इस ध्येय के अनुसार चरखा-सघ ने १९३४ के अप्रैल से सन् १९३५ के अक्तूबर तक कारीगरो को यथासम्भव वस्त्र-स्वावलम्बी बनाने का प्रयत्न किया, लेकिन इससे ही महात्माजी का समाधान नही हुआ। उन्होने देखा कि खादी की विविध क्रियाओ मे 'कातने' की क्रिया अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, लेकिन इतना होनेपर भी खादी के दूसरे सब मजदूरो मे कातनेवालो की मजदूरी बहुत कम होती है। इसलिए उन्होने निश्चय किया कि किसी भी मजदूर से यदि ८ घटे पूरा काम हम लेते है तो उन्हे कृपा के रूप मे नही, बल्कि उनके काम के बदल मे उन्हे उनकी अन्न-वस्त्र की आवश्यकता पूरी हो

सकने जितनी याने अपना जीवन स्वाभिमान से ठीक-ठीक तरह चला सके उतनी मजदूरी मिलनी चाहिए और इसके लिए ११ अक्तूबर १९३५ को वर्धा मे चरखा-सघ के कार्य-वाहक मण्डल की नियमित बैठक बुलाकर उसमे नीचे लिखा हुआ महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास करवाया—

"इस कार्यकारिणी-समिति की यह राय है कि कत्तिनो को अभी जो मजदूरी दी जाती है, वह पर्याप्त नही है, इसलिए यह समिति निश्चय करती है कि मजदूरी की दर मे वृद्धि की जाय, और उसका एक ऐसा उचित पैमाना निश्चित कर दिया जाय कि जिससे कत्तिनो को उनके आठ घण्टो के सन्तोष-जनक काम के हिसाब से कम-से-कम इतना पैसा मिल जाय कि जिससे उन्हे कम-से-कम अपनी जरूरत-भर का कपडा (सालाना २० गज) और वैज्ञानिक रीति से नियत किये हुए आहार के पैमाने के अनुसार भोजन मिल सके। अपनी-अपनी परिस्थिति के अनुसार सभी शाखाओ को कताई की मजदूरी के अपन-अपने पैमानो को तबतक बढाने की कोशिश करनी चाहिए जबतक कि ऐसा पैमाना बन जाय जिससे हरेक कत्तिन के कुटुम्ब का पालन-पोषण उस कुटुम्ब के काम करनेवालो की कमाई से हो सके।"

इस प्रस्ताव से एक बात यह स्पष्ट होती है कि अभी तक जो यहा मान बैठे थे कि कातने वालो का धधा सहायक धधा है, इसमे उन्हे कम मजदूरी देने से भी काम चल जायगा, यह विचार-सरणि गलत थी। अत सहायक धधा होने पर भी वह धधा ही है, इसलिए उसकी मजदूरी पूरी पडनी चाहिए, यह नीति निश्चित की गई। इसके अनुसार खादी बिक्री के भाव की वृद्धि करनी पडी।

सबसे पहले महाराष्ट्र चर्खा-सघ को इस प्रस्ताव पर अमल करने का सौभाग्य मिला।

मानवता की दृष्टि से तो खादी की भाव वृद्धि के पीछे जो विचार-सरणि रही है वह तो उपयुक्त है ही, किंतु देश के अर्थ-शास्त्र की दृष्टि से भी वह कितनी उपयुक्त है, इसका, आचार्य श्री विनोबा भावे ने अपने एक भाषण तथा लेखन मे अत्यन्त युक्तियुक्त और मार्मिक विवेचन किया

था। वह इस प्रकार है--

"अभी तक हमारा जो काम श्रद्धा के बल पर चलता था, उसके साथ ही अब उस पर विचार करने का अवसर उपस्थित हो गया है, और वह अवसर खादीवालो ने ही उपस्थित किया है, क्योकि खादी का भाव खादी वालो ने ही बढाया है और अनेको का यह मत है कि इस भाव-वृद्धि के कारण खादी की खपत कम होगई है।

"सन् १९२० मे हम लोगो ने सत्रह आने गज की खादी खरीदी है। लेकिन उसे सस्ती करने के उद्देश्य से दरो मे कमी करते-करते आज वह चार आने गज पर आ पहुची है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जहा गरीबी मौजूद थी वहा कम-से-कम मजदूरी देकर खादी सस्ती करते-करते चार आने गज पर लाई गई। अकाल के स्थान पर खादी तैयार करने का काम शुरू करना पडा, इसका अर्थ यह हुआ कि खादी और गरीब स्त्रियो की जोडी ही बन गई।"

"चारो ओर मशीन युग होने के कारण कार्यकर्त्ताओ ने मिलो के कपडे का भाव अपनी नजर के सामने रखकर खादी का भाव धीरे-धीरे कोशिश करके कुशलतापूर्वक सत्रह आने से सवा चार आने अर्थात् सत्रह पैसे पर ला रखा। लेने वालो ने उसे सस्ती कहकर ली। मध्यम श्रेणी के लोग कहने लगे कि अब खादी के इस्तेमाल मे कोई हर्ज नही। खादी का भाव मिल के कपडे की बराबरी पर आगया और टिकाऊपन दुगना हो गया, ऐसी दशा मे वह महगी रही ही नही। मतलब यह कि लोगो को गोल सीगो वाली सुन्दर, कम कीमत की और बहुत दूध वाली गायरूपी खादी चाहिए थी। वैसी उन्हे मिल गई, और उन्हे यह भासित होने लगा कि ऐसी खादी का इस्तेमाल कर हम बहुत बडी देश-सेवा कर रहे है।

"ऐसी स्थिति मे विचारशील लोगो ने—स्वय गाधीजी ने—यह प्रस्ताव किया कि मजदूरो को अधिक मजदूरी दी जाय। इतना ही नही, गाधीजी अब भी यह कहते है कि मजदूरो को आठ आने रोज मजदूरी पडनी चाहिए। कई लोगो का खयाल है कि गाधीजी कही 'मुखमस्तीति

वक्तव्य' वाली कहावत तो चरितार्थ नही कर रहे है ? वह—गाधीजी—साठ वर्ष के हो चुके है, इसलिए उनकी साठी बुद्धि नाठी हो गई, अत उनके कथन मे क्या कुछ अर्थ है,इसका अपनेको विचार करना चाहिए। हम अभी साठी तक नही पहुचे है। हमने अभी घर-दुनिया छोड नही दी है। हमे घर-गिरिस्ती चलाना है। अगर हमे यह विचार नही पटते है तो यह समझकर कि यह सब 'सनकी' लोगो की कल्पना है, हमे वह छोड देनी चाहिए।

"मै सच कहू ? जब से खादी के दर मे वृद्धि हुई है, तब से मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा है मानो मेरे शरीर मे देवता का सचार होगया हो। पहले भी मै वही काम करता था। आठ-आठ घण्टे काम करता था। मै नियमित कातने वाला हू। अच्छी पूनिया और निर्दोष चरखा मै काम मे लाता हू। यह आप अभी देख ही चुके है कि कातते समय मेरा सूत टूटता नही है। मै श्रद्धापूर्वक और ध्यान से कातता हू। आठ घटे इस तरह काम करके भी उसकी मजदूरी सिर्फ सवा दो आने होती थी। हड्डिया चूर-चूर हो जाती थी, लगातार आठ घण्टे मौनपूर्वक काम करता था। तब भी सवा दो आने ही मिलते। ऐसी दशा मे देश मे इसका प्रचार हो तो कैसे हो, यह विचार मन मे उठता था। बाद को यह मजदूरी बढ गई, इससे मुझे आनन्द हुआ, क्योकि मै भी तो एक मजदूर ही हू। सन्त तुकाराम का यह कथन कि "जिस पर बीतती है वही जानता है," ठीक ही है।

"मेरे काते हुए सूत की धोती पाच रुपये कीमत की हो तो भी पैसे वाले लोग उसे बारह रुपये मे लेने को तैयार हो जाते है और कहते है कि यह तुम्हारे हाथ के सूत की है, इसलिए लेते है। ऐसा क्यो होता है ? मै मजदूरो का प्रतिनिधि हू। जो मजदूरी मुझे देगे वही उन्हे दे। ऐसी दशा मे मुझे चिन्ता यही थी कि इतनी सस्ती खादी जीवित कैसे रहेगी ? मेरी यह चिन्ता अब मिट गई है। पहले कातने वालो को यह चिन्ता थी कि खादी किस तरह टिकेगी, अब वह चिन्ता खादी वापरनेवालो को मालूम होती है।"

"ससार मे तीन तरह के लोग रहते है—(१) किसान, (२) दूसरे धन्धे करनेवाले और (३) कुछ भी धन्धा न करनेवाले, उदाहरणार्थ वृद्ध, रोगी, बालक और बेकार आदि। अर्थशास्त्र का—सच्चे अर्थशास्त्र का—यह नियम है कि तीनो श्रेणियो मे जो प्रामाणिक है उन सब के लिए पेटभर अन्न, तन ढकने के लिए पर्याप्त वस्त्र और रहने के लिए मकान की आवश्यक सुविधा होनी चाहिए। इसी तत्व पर कुटुम्ब चलते है। कुटुम्बो की ही तरह देशो को चलना चाहिए। इसीका नाम राष्ट्रीय अर्थशास्त्र—सच्चा अर्थशास्त्र—है। इस अर्थशास्त्र मे सब प्रामाणिक पुरुषो की पूर्ण सुविधा होनी चाहिए। अवश्य ही आलसी अर्थात अप्रामाणिक लोगो का उत्तरदायित्व किसी भी देश पर नही है।"

"इग्लैण्ड-जैसे देश मे भी, जो यान्त्रिक सामग्री—मशीनरी—से सम्पन्न है और जहा दूसरे देशो को सम्पत्ति बहकर जाती रहती है, जहा के सब बाजार सुसमृद्ध है, सब प्रकार की सुविधा है,—बेकारी मौजूद है। ऐसा क्यो है? इसका कारण है मशीने। इतने बेकारो के होने के कारण इस तरह काम न करनेवाले लोगो को प्रति सप्ताह भिक्षा—सदाबरत—(Dole) देना पडता है। इस प्रकार करीब २०-२५ लाख बेकार लोगो को मजदूरी न देकर अन्न देना पडता है। हम कहते है कि भिखारियो को बिना काम अन्न नही देना चाहिए, लेकिन वहा सहज ही अन्न-दान चालू है। इन लोगो को काम दीजिए। इन्हे काम देना कर्त्तव्य है, कम-से-कम एक काम तो दीजिए, नही तो खाना दीजिए।' यदि इग्लैण्ड मे यह नीति है तो सारे ससार मे क्यो न हो? वही यहा भी लागू कीजिए। लेकिन यहा उसे लागू करने पर बिना काम दिये डेढ करोड लोगो को अन्न देना पडेगा। मै यह बात हिसाब लगाकर कहता हू कि कम-से-कम डेढ करोड लोग ऐसे निकलेगे। मै हिसाबी आदमी हू। इतने लोगो को अन्न किस तरह दिया जा सकेगा? दिया जा नही सकेगा। इच्छा करने पर भी नही दिया जा सकेगा। वहा दूसरे देशो की सम्पत्ति लूट कर ले जाई जाती है, इसलिए वे लोग ऐसा कर सकते है। अगर प्रामाणिकता के साथ शासन करने को कहा जाय तो

इस तरह किया नही जा सकेगा ।"

"यहा मजे की बात यह है कि हिंदुस्तान कृषि-प्रधान देश होने पर भी उसके पास और कोई सहायक धन्धा नही है । जिस देश मे खेती का धधा होता है वह देश हीन समझा जाता है । हिंदुस्तान मे ७५ फीसदी से अधिक खेतिहर—किसान—है। हिंदुस्तान की भूमि कम-से-कम १०,०००वर्ष से जोती जाती है । अमेरिका मे इससे तिगुना प्रदेश है । आबादी सिर्फ बारह करोड है । जमीन की जुताई सिर्फ ४०० वर्ष से ही है, इसलिए वहा की भूमि अच्छी और उपजाऊ है और वह देश सम्पन्न है । अपने देश मे, किसानो के हाथ मे और कोई धधे देने पर ही वह जीवित रह सकेगा । किसान से मतलब है (१) खेती करनेवाला, गोपालन करनेवाला और (२) पिंजाई कर कातनेवाला । किसान की इतनी व्याख्या करनेपर हिंदुस्तान का किसान टिक सकेगा ।"

"कहते है हिंदुस्तान मे अब नया राज्य शुरू हुआ है, नये मन्त्री आये है । वे कुछ अच्छी बाते करेगे । लेकिन दूध मगानेवाले अश्वत्थामा को उसकी मा ने दूध के बजाय अत्यत आतुरता के साथ पानी मे आटा घोलकर यद्यपि दूध कह कर दिया तो भी उसे दूध थोडे ही कहा जा सकेगा ? पेट मे आग लगी हो, उस दशा मे सिरपर सौठ लगाने से क्या लाभ ? मत्रियो को यह जानना चाहिए था कि उन्होने भलमनसाहत मे आकर सत्ता ली होगी, लेकिन इस सत्ता के लेने का अर्थ है अपने को पददलित करनेवाली सत्ता की सहायता करना । फौज का काम न होने पर भी उसपर ६० करोड का खर्च किस बात के लिए ? सम्पत्ति के बहकर जाते रहने पर फुटकर प्रवृत्तियो से किसानो का कुछ हित नही होनेवाला है ।

"अत सारी व्यवस्था फिर से बदलनी चाहिए और यह समझना चाहिए कि इसी के लिए हम यहा आकर बैठे है । बहुत से लोग इस बात पर दु ख प्रकट करते है कि खादी का प्रसार जितना होना चाहिए था उतना हो नही रहा है । लेकिन इसमे दु ख नही, आनन्द ही है । खादी कोई बीडी का बण्डल या लिप्टन की चाय नही है, खादी एक विचार है । आग लगानी

हो तो उसमे कुछ देर नही लगती ? लेकिन इसके विपरीत अगर गाव बाधना हो तो उसमे कितना समय लगेगा, इसका विचार कीजिए। खादी रचनात्मककार्य है; विध्वसक नही। यह विचार अग्रेजो के विचारों का शत्रु है। ऐसी दशा मे खादी धीरे-धीरे आगे बढ रही है, इसका कोई दु ख नही, यह ठीक ही है। पहले जब अपना राज्य था, तब खादी थी ही। लेकिन उस खादी और अबकी खादी मे अंतर है। इस समय की खादी मे जो विचार है, वह उस समय नही था। आज हमे खादी के उपयोग करने का मर्म अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। आज की खादी का अर्थ है ससार मे प्रचलित प्रवाह के विरुद्ध जाना। यह पानी को ऊचे चढाना है। अतः जब हम अधिकाश प्रतिकूल प्रवाह—प्रतिकूल काल—को जीत लेगे, तब खादी आगे बढेगी। तब वह कहेगी, 'मै प्रतिकूल काल का सहार करनेवाली हू।' अपना 'कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्ध 'वाला विराटस्वरूप वह बतलायगी। इसलिए अगर मिल के कपडे से उसकी तुलना की गई तो मिलो मे ही समाई हुई—मरो हुई—समझी जायगी। इसके विपरीत उसे यह कहना चाहिए कि "मै मिलो के कपडे की तरह सस्ती नही हू, मै महगी हू, मै कीमती हू, मै जो विचारशील व्यक्ति है उन्ही को अलकृत करती हू, मै खोके पर बैठने नही आई हू, मुझे तो सिर पर बैठना है।" ऐसी खादी का एकदम प्रचार किस तरह होगा ? वह तो धीरे-धीरे आगे बढेगी। लेकिन जितनी भी आगे बढेगी, मजबूती से बढेगी। खादी प्रचलित विचारों की विरोधी है, इसलिए हमारी गिनती पागलो मे होगी। आप विचारपूर्वक इन पागलो की श्रेणी मे शामिल होइए। कईएक लोग अधूरी खादी पहनते है। इससे किसी का समाधान होता हो तो भले ही हो, लेकिन मै तो सिर्फ दो ही तरह के आदमी पहचानता हू—एक जीवित और दूसरे मरे हुए। आधा-जीवित और आधा-मृत मनुष्य मैने नही देखा। अधूरी खादी क्यो बरतते है ? खादीवालो पर कोई कृपा न कीजिए। खादी के सम्बन्ध मे विचार कीजिए। जबतक वह आपको नही पटे तबतक खुशी से अपने यहा

की मिलो का कपडा पहनिये । मै आपको लिखकर दे सकता हू कि अपने यहा की मिलो का कपडा देशी ही है, विदेशी नही । इसके सिवा आपको और क्या सबूत चाहिए ? बिना विचार के खादी के व्यवहार का कोई अर्थ नही। खादी का अर्थ है विचारो का प्रवर्त्तन ।

"मै अभी जो तीन श्रेणी—(१) किसान, (२) दूसरे धधे करने वाले और (३) कोई भी धधा न करनेवाले—बता आया हू, उन सब प्रामाणिक व्यक्तियो का अन्न देना है। यह करने के लिए तीन शर्ते है। सबसे पहली यह कि, किसान की व्याख्या बदली जाय । जो व्यक्ति (१) खेती, (२) गोपालन और (३) कातने का काम करता हो, उसे किसान कहा जाय । अन्न, वस्त्र, गाय, बैल, दूध के सबध मे किसान को स्वावलबी होना चाहिए । दूसरी शर्त यह है कि किसानो की तैयार की हुई सब वस्तुये दूसरो को महगे मोल मे लेनी चाहिए । तीसरी शर्त यह है कि, इनके सिवा किसानो को जो दूसरी चीजे लेनी हो वे उन्हे सस्ती मिलनी चाहिए । अन्न, वस्त्र, दूध आदि वस्तुये महगी, और घडी, प्याला आदि चीजे सस्ती होनी चाहिए । लेकिन हो रहा है इसके विपरीत। दूध महगा होना चाहिए, किन्तु वह कीमती चीज सस्ती है और प्याला सस्ता होना चाहिए, वह महगा है। हमको प्याला सस्ता और दूध महगा हो, ऐसी स्थिति पैदा करनी चाहिए । क्या खादी, दूध और अनाज के सस्ता होने से राष्ट्र सुखी होगा ? जिन नौकरो को नियमित रूप से पैसे मिलते है उनकी बात छोडकर जिस देश मे ७५ फीसदी किसान है, वह देश इन वस्तुओ के सस्ता होने पर सुखी किस तरह होगा ? अत किसानो की पैदा की हुई खादी, दूध, अनाज आदि वस्तुये महगी और बाकी की दूसरी वस्तुये सस्ती होनी चाहिए ।

"लोग मुझसे कहते है कि तुम्हारे ये सब व्यवहार उलटे है । इस बीसवी सदी मे तुम गाधी वाले लोग यन्त्रो का—मशीनो का – विरोध कर रहे हो । लेकिन मै जानना चाहता हू कि क्या तुम अतर्ज्ञानी हो ? हम सब यत्र-विरोधी है, यह तुमने कैसे जाना ? हम कहते है हम यत्र वाले ही है । यह कोई इतनी सरल बात नही है कि तुम एकदम पहचान लो । हम तो तुम्हे हजम कर जानेवाले लोग है । मै कहता हू, तुमने यत्रो की ईजाद की

है न ? हमे वे चाहिए । किसानो की उक्त वस्तुओ के सिवा बाकी की सब चीजे तुम सस्ती करो । तुम अपनी यत्रविद्या किसानो के धधो के सिवा दूसरे धधो पर चलाओ। उन्हे छोडकर बाकी सब चीजे सस्ती होने दो। लेकिन ऐसा हो नही रहा है । उलटे किसानो की चीजे सस्ती, लेकिन इन मशीन के हिमायतियो के पास मशीने होने पर भी इन सब मशीनो की चीजे महगी है । मै खादीवाला हू, तो भी यह नही कहता कि आप चकमक से आग जलावे । मुझे भी दियासलाई की डिब्बी चाहिए । किसान को एक पैसे मे पाच डिब्बी क्यो नही देते ? आपने बिजली पैदा की और कहते है कि वह गावो मे होनी चाहिए । तब दीजिए न उन्हे दो पैसे मे महीने भर । आप खुशी से यत्र ईजाद कीजिए, लेकिन उनका उपयोग मै कहता हू उस तरह होना चाहिए। केले चार आने दर्जन होना चाहिए और आपके यत्रो की चीजे एक-दो पैसे मे मिलनी चाहिए । आपको किसान से मक्खन दो रुपये सेर लेना चाहिए । जो यह कहे कि हमे यह पुसाता नही है तो किसान को उन्हे जवाब देना चाहिए मै स्वय ही वह खाता और खा चुकने के बाद बचा हुआ देता हू । मुझे बताइए कौनसा किसान ऐसा होगा जो इसका विरोध करेगा ? इसलिए इस खादी का विचार समझना चाहिए। बहुतसो को ऐसा प्रतीत होता है कि खादी महगी हुई तो काम कैसे चलेगा ? लेकिन किसका? किसानो को खादी खरीदनी ही नही है,उन्हे तो बेचनी है । ऐसी दशा मे यह खादी उन्हे महगी नही पडेगी। वह तो दूसरे लोगो को महगी लेनी चाहिए ।"

वास्तव मे महगी खादी खरीदने मे हम किसी पर कोई उपकार कर रहे हो, या वृथा औदार्य दिखा रहे हो, सो बात नही है । "अथा तो न्यायारम्भ" इतना ही इसके बारे मे कह सकते है । पर यह न्यायारम्भ भी बहुत महगा पडता है और नही पुसाता, ऐसी आज की परिस्थिति या यो कहिए कि मन स्थिति है । उसमे फस कर मजदूरो को अल्प मजदूरी देते रहने मे न्याय तो नही है, पर व्यवहार भी नही है । क्योकि ऐसा करते रहने मे मुक्ति का मार्ग ही रुध जाता है । इसलिए न्याय से चलना कितना ही महगा पडे तो भी न्याय से चलकर मौजूदा परिस्थिति के विरुद्ध बल्वा

पुकारने के सिवाय सज्जनो को कोई चारा नही है ।

सज्जनता से अर्थात् अहिसा से बल्वा करने मे सब मिलकर एक साथ हो सके या सारे क्षेत्र मे जब हो सकेगा तभी बल्वा पुकारा जाय, इसकी गुजाइश ही नही रहती । जिसको सूझ हुई उसने अपने क्षेत्र मे, स्थूल परिणामो की परवाह न करते हुए, फौरन श्रीगणेश कर दिया, यह अहिसा की पद्धति है । मुझे कितने प्रवाह आकर मिलेगे इसका अन्दाज लगा कर गगाजी गगोत्री से नही चली है । वह हिमालय से शान्त और दृढ निश्चय से—सीधी निकल पडी और जिन प्रवाहो से उन्हे मिलना था,वे मिले, जिन्हे नही मिलना था वे नही मिले । न मिलने वालो की गङ्गाजी ने कोई परवाह नही की । इसीलिए वह प्रवाहित हुई, नही तो उद्गम स्थान मे ही रुध गई होती । अहिसा की प्रणाली उन गगाजी सरीखी है । इसलिए 'चरखा-सघ' उसके इस दृढ निश्चयपूर्वक उठाये हुए कदम के लिए तमाम अहिसक बागी लोगो के धन्यवाद का पात्र है ।

बगावत का रुख हो तो भी उसकी अपनी कोई पद्धति तो होनी ही चाहिए । उस पद्धति की कुछ बाते इस प्रकार है—

१—व्यवस्था-खर्च यथासम्भव कम हो । बिल्कुल ही न हो तो अच्छा । कुछ समय के बाद व्यवस्था खर्च की मद ही उड जाय, ऐसी कल्पना कर सकते है ।

२—ऐसी परिस्थिति निर्माण होनी चाहिए कि हाथ-कता सूत मिल के सूत की स्पर्धा कर सके, या उससे भी बढा-चढा साबित हो । इस दृष्टि से नादेड पद्धति की धुनाई का प्रचार उपयुक्त और आवश्यक है । हलके दर्जे की रुई इस्तैमाल करने की कोरकसर आदरणीय नही ।

३—मजदूरो के जीवन मे कार्यकर्ताओ का—अर्थात् उनकी भलाई का—प्रवेश होना चाहिए । बढी हुई मजदूरी से कार्यकर्ताओ की भलाई हो, इसका खयाल रखना चाहिए ।

४—चुनीदा स्थानो मे खादी-उत्पत्ति केन्द्रित न कर, और यदि जरूरत हो तो कम करके भी, हर जिले मे वह फैलाई जाय । ऐसा करने से खादी

मे का स्वदेशी-धर्म अधिक उज्ज्वल और प्राणदायी होगा ।

५—आजतक चरखे के द्वारा चार-छ पैसे मजदूरी देकर भी चरखा-सघ गभीरता-पूर्वक कार्य कर रहा था । अब के भावो से तकली पर भी २।। आने के लगभग मजदूरी पड सकती है । इसलिए तकली की ओर भी गभीरतापूर्वक ध्यान देना चाहिए । उसका लाखो मे प्रवेश होकर स्वावलबन—जो खादी आन्दोलन का अन्तिम ध्येय है—प्रत्यक्ष मे सिद्ध हो सकेगा । इसलिए तमाम कार्यकर्ताओ को तकली पर (दोनो हाथो से) नित्य कातने की आदत रखनी चाहिए । इस कातने मे यज्ञदृष्टि रहे ।

"चरखा-सघ के अथवा तत्सम कार्यकर्ताओ के लिए ये बाते लिखी । पर बगावत का झडा चरखा-सघ को सौपकर, अथवा हम महगी खादी लेते है, इसलिए उतने अश मे हम बागी है ही, ऐसा समाधान कर लेना पर्याप्त नही है। हरएक खादीधारी व्यक्ति ने, जहा-जहा, उसका मजदूरो से सम्बन्ध आवे, वहा-वहा, मजदूरो को पूरी मजदूरी देकर ही काम कराना चाहिए। ऐसा यदि हम करेगे तो ही हम अहिसक बलवे का झडा फहरा सकेगे। अन्यथा सिर्फ खादी ही महगी खरीदकर अन्य मजदूरो से यथासम्भव कम दामो म काम कराते रहने से खादी पहनकर हमने एक प्रकार की, कोरी प्रतिष्ठा ही प्राप्त की. ऐसा हमारे खादी पहनने का आइन्दा के लिए मतलब होगा । अपने व्यक्तिगत जीवन मे पूर्ण मजदूरी देने का सिद्धान्त अमल मे लाने वाली व्यक्तिया जगह-जगह पर निर्माण होगी, तभी हम उस अहिसा के बूते पर सरकार को भी वह सिद्धान्त मान्य करने पर मजबूर कर सकेगे और राज्य-पद्धति मे तथा अर्थ-व्यवहार मे आवश्यक परिवर्तन करा सकेगे ।"

मजदूरी बढाने का प्रस्ताव खादी के सब मजदूरो के लिए हितकर सिद्ध हुआ. इतना ही नही भिन्न-भिन्न प्रान्तो के कार्य-कर्त्ताओ को अपने-अपने प्रान्तो के खाद्य-पेय पदार्थो और उनके गुण-धर्म का शास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन कर उनके भाव की भी जानकारी प्राप्त करनी पडी और इस दृष्टि से उनके ज्ञान मे इतनी और वृद्धि हुई ।

अगर यह कहा जाय तो कोई हर्ज नही है कि भिन्न-भिन्न प्रान्तो के

खाने-पीने की वस्तुओ के भावो का विचार कर सामान्यतया प्रत्येक प्रान्त मे कम-से-कम मजदूरी दो आना से लेकर तीन आने तक ठहरी। आरम्भ मे तो कार्यकर्त्ताओ को यह डर लगा कि इस दर-वृद्धि के कारण खादी के भाव मे वृद्धि होने से उसकी खपत पर अनिष्ट परिणाम होगा, और दूसरी ओर कातनेवालो की तादाद बढ जायगी। लेकिन सौभाग्य से उनका यह डर गलत निकला। मजदूरो की दृष्टि से विचार करने पर बढी हुई मजदूरी का परिणाम भी चाहिए था, उससे भी अच्छा हुआ। बढी हुई मजदूरी से उनकी थोडी-सी आर्थिक सहायता हो गई, उनका उत्साह बढा, इतना ही नही, नैतिक दृष्टि से उनकी स्वावलम्बन की ओर प्रवृत्ति अधिक बढी।

इस बढी हुई मजदूरी का एक यह महत्त्वपूर्ण लाभ और हुआ। कार्यकर्त्ता के सामने जब यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि मजदूरो को कम-से-कम तीन आने रोज मजदूरी मिलनी ही चाहिए, तब उनका ध्यान साधनो मे उन्नति करने की ओर तीव्रता से खिचा और उस दृष्टि से खादी के उपकरणो मे अनेक सूक्ष्म सुधार होगये है और मजदूरो की कार्य-क्षमता बढाने का भी प्रयत्न जारी है। मजदूरी की दर बढाने से पहले सब मजदूर ज्यो-त्यो अपना काम पूरा कर देने की धुन मे रहते थे। पहले उन्हे उनके काम मे किसी तरह का सुधार करने को कहने पर वे उसे सुना-अनसुना कर देते थे, लेकिन अब सुधार को ध्यानपूर्वक अमल मे लाने की दिल मे कोशिश करते है। कातनेवाली स्त्रियो का सूत अब अधिक मजबूत, बटदार और एक-सा आने लगा है। इतना ही नही, उनकी कातने की गति भी बढी है। अच्छा चरखा और अच्छी पिजी हुई रुई की पूनिया दी जाने पर सामान्य कुशल कतवैया एक घण्टे मे ४०० गज सूत कात सकता है। यह प्रत्यक्ष देखने मे आया है कि बढी हुई मजदूरी के कारण खादी की सब क्रियाओ मे स्थायी उन्नति का काफी मौका है। ऐसे चिह्न दिखाई देने लगे है कि अगर इस तरह सब क्रियाये कुशलतापूर्वक की जाने लगी तो मजदूरो को जीवन-वेतन (Living-wage) देने जैसी स्थिति पैदा हो जायगी, जिससे गरीब-से-गरीब मजदूर तक को अपनी कार्यक्षमता के बारे मे आत्मविश्वास अनुभव होगा और आगे

चलकर वह अपना जीवन व्यवस्थित रूप से बिता सकेगा। सिर्फ कार्यकर्त्ताओ को यह स्थिति पैदा करने के लिए अधिक उत्साह, दृढनिश्चय और निष्ठा के साथ इस काम को आगे बढाना चाहिए।

सन् १९३८ के आखिरी मार्च मे डेलाग मे अखिल भारतीय चरखा-सघ के कार्यवाहक मण्डल की बैठक हुई थी। इस बैठक मे महात्माजी ने हृदय-द्रावक भाषण दिया था। उसमे उन्होने कहा था कि आठ घण्टे तक सन्तोषजनक और कुशल कतवैये को आठ आने मजदूरी दी जानी चाहिए। लेकिन इस सम्बन्ध की अन्य कठिनाइयो का विचार कर मण्डल ने अभी इस आशय का प्रस्ताव किया है कि "खादी-कार्य की प्रगति को धक्का न पहुचाकर कतवैये को अधिक मजदूरी देने के सम्बन्ध मे सघ की भिन्न-भिन्न शाखाओ की ओर से जो योजनाये आवे, मण्डल के अध्यक्ष और मन्त्री को उन सबके स्वीकार करने का अधिकार दिया जाता है।"[1] इस प्रस्ताव के अनुसार महाराष्ट्र चरखा सघ ने ही एक और कदम आगे रखा था। उस दर से अच्छे-से-अच्छे कातनेवाले के लिए वर्तमान साधनो से ही आठ आने मजदूरी कमा सकने की सम्भावना थी। लेकिन महाराष्ट्र चरखा-सघ को यह कदम परिस्थितिवश पीछे हटाना पडा।

अखिल भारतीय चरखा-सघ के कार्य की प्रगति की यह दूसरी सीढी है।

अब अगर दूसरे धन्धो मे भी यह आयवृद्धि करनी है तो खादी के धन्धे की तरह उनमे भी इसी तरह के प्रयोग किये जाने चाहिये। प्रत्येक धन्धे के लोग ये प्रयोग किस तरह करे, उसका हिसाब किस तरह रखा जाय और वास्तविक मजदूरी निकालने का नियमानुसार ज्ञान उन-उन धन्धो के लोगो को प्राप्त कर लेना चाहिए।

अनुभव यह है कि देश मे प्रत्येक १०० व्यक्तियो मे से सामान्यत ४० व्यक्ति प्रत्यक्ष काम के लिए उपलब्ध हो सकते है। तदनुसार एक व्यक्ति को कई व्यक्तियो का पेट भर सकने जितनी मजदूरी दी जानी चाहिए। इसके सिवा प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे कामो के लिए कुछ दिनो की छुट्टी

१. अखिल भारतीय चरखा-संघ का वार्षिक विवरण सन् १९३०

की आवश्यकता होती है। इस दृष्टि से विचार करने पर २५ दिन काम करने पर ३० दिन की मजदूरी दी जानी चाहिए। तभी मजदूर को पूरी मजदूरी दी गई समझना चाहिए। मजदूर को प्रतिदिन आठ घण्टे उत्पादक काम करना चाहिए। प्रत्येक धन्धे मे, प्रत्येक घन्टे मे मनुष्य किस हद तक और किस दर्जे का काम कर सकता है, यह प्रयोग करके निश्चित कर लेना चाहिए और उनके अनुसार आठ घण्टे की मजदूरी का हिसाब करना चाहिए।

मजदूरी बहुतांश मे चीजो के रूप मे दी जानी चाहिए। ऊपरी खर्च के लिए कुछ पैसे नकद भी देना चाहिए। सिर्फ पैसा देने से उसके दुरुपयोग होने अथवा अन्न वस्त्रादि की प्राथमिक आवश्यकताओ के सिवा दूसरी बातो पर खर्च हो जाने की सभावना रहती है। अत ऐसा नही होने देना चाहिए।

भिन्न-भिन्न धन्धो मे लगे हुए मजदूरो को जीवन-वेतन देकर उनमे जागृति पैदा करनी हो तो कार्यकर्ताओ के सामने यह एक भारी प्रयोग-क्षेत्र और कार्य-क्षेत्र है।

जो शिक्षा-पद्धति उद्योग के साथ-साथ ज्ञान का सुझाव करती है, उसके अनुसार भी ऐसे प्रयोग की काफी गुजाइश है।

: १८ :

चरखा-संघ का नव-संस्करण

कातो, समझ-बूझ कर कातो। काते वे खद्दर पहने। पहने वे जरूर काते।

(१) समझ-बूझ कर के मानी है कि चरखा यानी कताई अहिंसा का प्रतीक है। गौर करो, प्रत्यक्ष होगा।

(२) कातने के मानी है, कपास खेत से चुनना, बिनौले बेलन से निकालना, रुई तुनना, पूनी बनाना, सूत मनमाना अक का निकालना, और दुबटा कर परेतना।

—१९४५ के राष्ट्रीय सप्ताह पर दिया गया गाधीजी का सदेश।

चरखा-सघ ने पिछल २० साल मे सारे हिन्दुस्तान की दृष्टि से २६ लाख की अपनी थोडी-सी पूजी से, ४॥ करोड रुपए मजदूरी के रूप मे गरीबो को दिये और जनता की यथाशक्ति सेवा की, जीवन-वेतन के सिद्धान्त को अमली जामा पहनाया। परन्तु फिर भी महात्माजीका 'चरखे से स्वराज्य' का दावा चरखा-सघ साबित न कर सका। स्वराज्य के योग्य सद्गुणो का विकास देहात मे खादी के द्वारा करके जनता म से नये नेतृत्व को मूर्तिमान करने का कार्य—अहिंसक समाज निर्माण करने का गाधीजी का उद्देश्य—अधूरा ही रह गया। बल्कि १९४२ के आन्दोलन ने तो उलटा यह दिखा दिया कि चरखा-सघ जो कुछ कार्य कर रहा है वह भी सरकार की मर्जी पर चल रहा है। 'भारत छोडो' नारे के जन्मदाता को यह कैसे सहन हो सकता था ? यदि चरखा-सघ पर वार किया जाय तो क्या चरखा-सघ मर जाय ? इसलिए १९४४ मे, जेल से छूटने पर, गाधीजी ने चरखा--सघ के कार्य की बुनियाद ही बदल डाली। चरखा अहिंसक समाज-रचना का प्रतीक निश्चित होगया। परन्तु उसे गाधीजी

के ही शब्दो मे पढना ठीक रहेगा। अत १ सितम्बर १९४४ म हुई चरखा-सघ की सभा मे उन्होने जो अपना हृदय खोला व मार्ग-दर्शन कराया वह ज्यो-का-त्यो यहा दिया जाता है--

सरकारी दमन

"इन दो वर्षो मे देश को किस परिस्थिति से गुजरना पडा इसे अब मै जान पाया हू। एक युग की घटनाए इन दो वर्षो मे एकत्रित हुई-सी दिखाई देती है। सपूर्ण देश एक अकथ यातना से गुजर रहा था, उसमे चरखा-सघ कैसे छूट सकता था। सरकारी दमन के डर से वह अपने कर्तव्य से कैसे विचलित हो सकता था? अगर वह अपने कर्तव्य से पीछे हटता, तो वह मेरे लिए अत्यत दु ख की बात होती। मैने चरखा-सघ को जानबूझ कर राजनीति से अलग रखा। मुझे आशा थी कि इससे देश मे चाहे कुछ हो, उसका चरखा-सघ पर असर न होगा। लेकिन यह आशा झूठी ठहरी। चरखा सघ पर अपना प्रबल दमनचक्र चलाने मे सरकार ने कुछ भी उठा न रखा।

कारावास के दिनो मे मैने चरखा और चरख-सघ के बारे मे काफी विचार किया। चाहने पर सरकार चरखा-सघ को नष्ट कर सकती है, इस वास्तविकता से मै आहत हुआ। सरकार की दया पर जीवित रहना मै नही चाहता। ईश्वर के सिवा और किसी की मुझे दया नही चाहिए। ऐसी परि-स्थिति मे क्या यह अच्छा नही होगा कि मै खुद ही चरखा-सघ को तोड दू और उसकी जायदाद ग्रामीणो मे बाट दू।

चरखा-सघ की असमर्थता

हिन्दुस्तान को अगर एक अहिसक राष्ट्र बनना है तो वह सिर्फ चरखा और उसके सहकारी सिद्धान्तो के द्वारा ही हो सकता है। इस दृढ विश्वास से ही चरखा-सघ का निर्माण हुआ है। अगर हिन्दुस्तान अहिसा यानी चरखे के द्वारा पूर्ण स्वराज प्राप्त कर सका तो उससे सारे विश्व का कल्याण हो सकेगा। चरखा स्वाधीनता का साधन है, सिर्फ भाषा से मै हिन्दुस्तान को समझा नही सकता, इसलिए अपन विचारो को अमली रूप देने के लिए मैने

चरखा-सघ की स्थापना की। मुझे आशा थी कि चरखा-सघ के द्वारा प्रत्येक देहात और प्रत्येक घर मे चरखे का सदेश पहुचाया जायगा और इस तरह अहिसक समाज की बुनियाद चरखा कैसे हो सकता है, यह दुनिया को दिखा दिया जायगा। लेकिन पिछले कुछ सालो मे जो कुछ हुआ, उसमे मुझे प्रतीत होता है कि उस उद्देश्य की पूर्ति करने मे चरखा-सघ असमर्थ रहा है। प्रत्येक घर की बात छोड दे तो भी चरखा अभी तक सब देहातो मे भी नही पहुच सका है।

इन सारी बातो से मै गहरे सोच मे पडा। चरखा-सघ क्यो सफल न हो सका? तुरन्त अपने उद्देश्य को प्राप्त करना हो तो उसमे कौन से परिवर्त्तन करने की आवश्यकता है? अगर वह हिन्दुस्तान के ७ लाख देहातो मे पहुचा होता, तो कौन सी ऐसी शक्ति है जो उसे दबा सके? ४० करोड स्त्री पुरुषो को सरकार जेल मे बन्द नही कर सकती, और न वह इन सबको गोली से उडा ही सकती है। मान ले कि ४० करोड मे से १ करोड लोगो को उडा दिया जाता तो भी उससे ध्येय की तरफ हमारी प्रगति रुक नही सकती, उल्टे वह अधिक तेजी से आगे बढती।

चरखा-सघ अपने कार्य मे अगर सफल होता—जैसा कि उसे होना चाहिए—तो उससे अपने आप स्वराज आ जाता, उससे जरूरी अहिसक शक्ति का निर्माण होता और जनता के उत्साह को योग्य रास्ता दिखाकर उसे वह आगे बढाता। फिर निराशा और विफलता के बदले प्रत्येक भारतीय हृदय मे नई आशा का सचार होता।

अहिंसा का प्रतीक

चरखा जीवन का सपूर्ण तत्त्वज्ञान है। वह अहिसा का जीवित प्रतीक है। किसी तरह के शोषण से सर्वथा मुक्त अहिसक समाज की रचना करना इसका उद्देश्य है। यदि हिन्दुस्तान के ७ लाख देहातो मे यह जागृति पैदा हो जाती तो सपूर्ण हिदुस्तान की स्वाधीनता हम प्राप्त किये होते।

मुझ पर श्रद्धा होने के कारण बहुतो ने चरखे को अपनाया। श्रद्धा अच्छी चीज है। लेकिन मै चाहता हू कि ज्ञान के साथ वह सबद्ध रहे, जिससे

नास्तिको के सामने भी वह टिक सके । पूर्ण श्रद्धा बुद्धि को तेजस्वी करती है । अगर आप अहिंसा की शक्ति और कार्य को समझ सके, अगर मेरे समान अहिंसा मे आपका दृढ विश्वास हो तो विश्व मे वह सब से बडा कार्यकारी शक्ति का स्रोत साबित होगा । उस हालत मे कोई शिथिल कैसे रह सकता है ? प्रकाश के सामने अधकार कैसे खडा रह सकता है ? इसलिए चरखा-सघ को मेरी अपेक्षा पूरी करनी हो तो उसके कार्यकर्ता अहिंसा के जीवित उदाहरण बनने चाहिए । उनका सपूर्ण जीवन अहिसा का क्रियात्मक प्रदर्शन होना चाहिये । उनका शरीर स्वस्थ और मन निर्मल होना चाहिए । अगर इस तरह वे हो जाय तो देहाती लोग चरखे को अत्यत उत्साह से अपनायेगे और सूर्य निकलते ही कुहरा जिस तरह भाग जाता है, उस तरह जातीय वैमनस्य, अस्पृश्यता आदि बाते अपने आप दूर हो जायगी ।

यह कठिन कार्य है

मै स्वय इसमे पूरी सफलता प्राप्त नही कर सका । सेवाग्राम मे रहते मुझे छ से भी अधिक वर्ष हुए । आश्रम से ग्रामीण लोगो को कुछ आर्थिक मदद मिली, उसने यथाशक्ति लोगो की सब तरह की सेवा की, इतना होने पर भी हम हर एक घर मे चरखे को दाखिल नही कर सके । यह क्यो? क्या चरखे मे मेरा विश्वास नही था ? मै ऐसा नही समझता । मेरा विश्वास कभी धुधला नही हुआ । अगर उसे हम अमल मे नही ला सके तो इसका एक मात्र कारण मेरी और मेरे सहकारियो की अपूर्णताए ही हो सकती है ।

देहातो मे काम करनेवाले कार्यकर्ताओ को देहाती लोगो के सपूर्ण जीवन मे प्रवेश करना चाहिए और सब तरह से उनकी सेवा, उनकी मदद और उनका मार्ग-दर्शन करना चाहिए । इससे वे लोगो का विश्वास प्राप्त कर सकेंगे और लोगो के जीवन को इस तरह गढ सकेंगे कि जिससे अहिसक समाज की बुनियाद डाली जा सके ।

या मुझे अकेला छोड़ दे !

मेरा उद्देश्य, आपको दोष देना नही है, वस्तुस्थिति का भान मै आपको कराना चाहता हू । इसमे शक नही की सघ ने लोकोपकार का

प्रचण्ड काम किया है। दुनिया मे वह सबसे बडी सहकारी सस्था है। सघ न अपनी २५ लाख की पूजी से ४½ करोड रुपया गरीबो को रोजी के रूप मे दिया है। लेकिन इतना ही पर्याप्त नही। सघ के पास त्यागी कार्यकर्ताओ की कमी नही। यह देखकर मेरा हृदय खुशी से फूल उठता है कि मातृभूमि के चरणो पर अपना सर्वस्व निछावर करने के लिए स्वेच्छा से त्यागी स्त्री-पुरुष कार्यकर्ता आज हमारे पास तैयार है। ऐसे लोगो को पैदा करने वाला राष्ट्र कभी दुखी नही रह सकता। मै जानता हू, स्वराज आरहा है—और वह भी जल्दी। लेकिन सवाल यह है कि इसमे चरखा-सघ का कितना हिस्सा रहेगा?

यह सच है कि मैने अभीतक 'चरखा अहिसा का प्रतीक है' इस बात पर इतना जोर नही दिया था। लेकिन अब तक की गलती दुरुस्त करना जितना जल्दी होसके उतना ही अच्छा। यह मै स्पष्ट कर देना चाहता हू कि यात्रिक औद्योगीकरण से स्वतत्र हिन्दुस्तान मे समता और शान्ति प्रस्थापित करना नामुमकिन है। इस तरह की स्वतत्रता से हिन्दुस्तान के ४० करोड लोगो के लिए सुख और शान्ति प्राप्त नही हो सकती। ऐसे समाज मे बहुतो के शोषण से ही थोडे लोगो की सम्पन्नता खडी होगी। निम्नतम लोगो को शक्ति और आनद देनेवाला स्वराज केवल अहिसा से, चरखे से ही प्राप्त हो सकता है। इस उद्देश्य को अमल मे लाने मे सघ को मेरा पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा। लेकिन इसके लिए तैयारी न हो तो सघ अपना लोकोपकारी कार्य पूर्ववत् चलाये और मुझे अकेला अपना काम करने दे।"

इस दृष्टि से महात्माजी ने निम्नलिखित सुझाव सघ के सामने विचारार्थ रखे।

"१ चरखे का कल्पना की जड देहात है और चरखा-सघ की कामनापूर्ति उसके देहात मे विभक्त होने मे है। इस ध्येय को खयाल मे रखते हुए चरखा-सघ की यह सभा इस निर्णय पर आती है कि कार्य की प्रणाली में निम्न लिखित परिवर्तन किये जाय—

(अ) जितने कार्यकर्ता तैयार हो और जिनको सघ पसद करे, वे देहातो मे जाय ।

(आ) बिक्री भडार और उत्पत्ति केन्द्र मर्यादित किये जाय ।

(इ) जो शिक्षालय है उन्हे विस्तृतरूप दिया जाय, और अभ्यास-क्रम बढाया जाय ।

(ई) जो सूबा या जिला स्वतत्र और स्वावलबी होना चाहे, उसे यदि सघ स्वीकार करे तो, स्वतत्रता दी जाय ।

२ चरखा-सघ, ग्राम-उद्योग-सघ और हिन्दुस्तानी तालीमी-सघ की एक स्थायी समिति नियत हो, जो नई पद्धति के अनुकूल आवश्यक सूचना निकाला करे । तीनो सस्थाए समझे कि उनपर पूर्ण अहिंसा को प्रकट करना निर्भर है । इसके सपूर्ण विकास मे पूर्ण स्वराज छिपा है ।

तीनो सस्थाओ का ज्ञान एसा होना चाहिए कि सारा राजकारण उन पर अवलबित रहे न कि वे प्रचलित राजकारण पर अवलबित रहे । यह स्वय-सिद्ध लगना चाहिए ।

इसका निचोड यह माना जाय कि इन तीनो सस्थाओ के कार्यकर्ता स्थितप्रज्ञ-से होने चाहिए । अगर यह सभव न हो तो हमारी कार्यरेखा बदलनी चाहिए । हमारा आदर्श नीचे जाना चाहिए । आज हमारी हालत विचित्र-सी मालूम होती है ।"

परतु समयाभाव के कारण उसपर थोडी चर्चा हुई और अधिक चर्चा होने की जरूरत समझकर, उस विषय मे कोई निर्णय नही किया जा सका । बाद मे चरखा-सघ के मत्री श्री जाजूजी ने पू० गाधीजी से इन सिद्धान्तो को व्यावहारिक रूप देने के विषय मे चर्चा की ।

नव-संस्करण की दृष्टि

खादी के सबध मे रखी गई आशाओ मे कहा तक सफलता मिली है, इसका सिंहावलोकन करके भविष्य की नीति निश्चित करना अब आवश्यक जान पडता है । आरभ से ही खादी का उद्देश्य गरीब बेकारो को सहायता देने के साथ-साथ स्वराज्य-प्राप्ति के योग्य गुणो का विकास करना भी था ।

चरखा-सघ के प्रयत्न से गरीबो को कुछ सहायता मिली, परन्तु बहुत मर्यादित । यह नही जान पडता कि वर्तमान परिस्थिति मे हम उस दिशा मे एकदम आगे बढ सकेगे । एकबारगी खादी की उत्पत्ति बढाने मे कई दिक्कते है । उत्पत्ति बढ जाय तो भी मिल के कपडे के मुकाबले मे बिक्री की अडचन रहती है पूजी की भी दिक्कत है । एकाएक काम को बहुत अधिक बढाने के लिए जैसे-तैसे कार्यकर्ताओ से ही काम चलाना पडता है । वे ज्यो-त्यो हमारे व्यापारिक कामो मे तो मदद देते है , किन्तु खादी की नीति को सुशोभित नही कर पाते । चरखा अहिसा का प्रतीक है इसका प्रचार अधिकतर खादी-कार्यकर्ताओ के निज के आचरण पर निर्भर है । केवल व्यापारिक बुद्धि से काम करने वाले कार्यकर्ता खादी-सिद्धात को हानि पहुचाकर अन्त मे हमारे उद्देश्य की पूर्ति मे बाधक बनते है । अत हम खादी की उत्पत्ति और बिक्री का काम आज की दशा मे बहुत अधिक नही बढा सकते । अत हमको इसका परिणाम बढाने का मोह छोड देना चाहिए । जान पडता है कि हमारे पूर्ण प्रयत्न करने पर भी खादी की उत्पत्ति और बिक्री मे वार्षिक पच्चीस प्रतिशत से अधिक वृद्धि नही हो सकती । पूजी अधिक मिल जाने पर इतने की ही सभावना जान पडती है ।

वस्त्र-स्वावलम्बन की दृष्टि से भी बहुत थोडा काम हो पाया है । खास चरखा-सघ के कार्यकर्ताओ मे, जिनसे सघ ने अपेक्षा की है कि वे नियम-पूर्वक हर मास ७॥ गुण्डी काते, थोडे ही लोग ऐसे कातने वाले पाये गये । मजदूरी के लिए न कातकर केवल अपने कपडो के लिए ही कातने वालो की भी सख्या थोडी ही है । मजदूर वर्ग को, जो केवल मजदूरी के लाभ से कातता है और जिन्हे उनकी मजदूरी का कुछ अश कपडे के रूप मे दिया जाता है, वस्त्रस्वावलबियो मे गिनना गलत होगा । कारण,उनका वह खादी पहनना स्वय अपनी खुशी से नही है,कताई के स्वावलबन गुण को समझकर तो बिलकुल नही है । स्वावलबी कताई अधिक न बढने का बडा कारण तो यह दीखता है कि उसमे आर्थिक बचत इतनी कम होती है कि उतने

अर्थलाभ की दृष्टि से दीर्घकाल तक परिश्रम करने के लिए गरीब और बेकार लोग भी तैयार नही है ।

उपर्युक्त बाते सही हो तो हम इस निर्णय पर पहुचते है कि वर्तमान परिस्थिति मे गरीब बेकारो को सहायता देने की दृष्टि से,भी तथा वस्त्र-स्वावलबन की दृष्टि से भी, हम बहुत अधिक वृद्धि नही कर सकते है। खादी-कार्य के आरम्भ काल मे हमने बडे पैमाने पर गरीबो को आर्थिक सहायता पहुचाने तथा व्यापक वस्त्र स्वावलम्बन की आशा रखी थी। खादी ने किसानो को सहायता तथा गरीबो को अवकाश के लिए काम के रूपमे अपना जो दावा सिद्ध किया है, वह आगे स्थिर रहने पर वर्तमान परिस्थिति मे हम उसका विशेष विस्तार नही कर सकते है । हमको अपनी यह मर्यादा समझ रखनी चाहिये ।

आर्थिक दृष्टि से उपर्युक्त परिस्थिति होते हुए भी यह साफ है कि यदि वस्त्र-स्वावलम्बन का या सद्गुणो के विकास का अर्थात् चरखे के अहिसा का प्रतीक होने का खादी का दावा सिद्ध न हो सका तो हमे इस अहिसक मार्ग से स्वराज्य-प्राप्ति की आशा छोडनी पडेगी और अहिसक समाज-रचना भी दुर्लभ होगी ।

अब तक हम शहरो मे बेचने के लिए खादी की उत्पत्ति करते रहे। यदि अब खादी का विकास सही रास्ते पर करना हो तो इसे अनिष्ट मानना होगा । मतलब,भविष्य मे खादी-उत्पत्ति या कताई वस्त्र-स्वालम्बन की दृष्टि से ही होनी चाहिए । वस्त्र-स्वालम्बन का काम भी भविष्य में आर्थिक लाभ के लोभ से न चलाकर, स्वावलम्बन उद्यमशीलता, सारे देहात तथा राष्ट्र के कल्याण, पारस्परिक सहयोग-वृद्धि और सत्य आदि गुणो के विकास आदि दृष्टियो से चलाना होगा ।

अब तक खादी के उद्योग पर जितना जोर दिया गया है उतना अन्य ग्रामोद्योगो पर नही दिया गया । हमने शायद खादी की ठीक मर्यादा नही समझी और मान लिया कि केवल खादी से सब काम सफल हो जायगे । किन्तु अब अन्य ग्रामोद्योगो को भी पूरा महत्त्व देना होगा । हमने गाय-बैलो

के प्रश्न की ओर ध्यान ही नही दिया। खेती के काम को तो जान-बूझकर अलग रखा। सफाई, स्वास्थ्य, खान-पान आदि मे भी काफी जोर देकर आगे बढने को कोशिश नही की। मालूम होता है यहा हम गलती पर थे। इसको अब सुधारना चाहिए। देहात का सारा जीवन एक ही है, और उस समूचे जीवन को ऊचा उठाना है। खादी तथा वस्त्र-स्वावलम्बन का काम सम्पूर्ण देहात के उत्थान का अगभूत समझा जाकर चलना चाहिए। हमारी इस देहात की सम्पूर्ण सेवा मे देहात का अर्थलाभ भी आ ही जायगा। इस प्रकार यद्यपि कताई की मजदूरी का लाभ उनको कम मिलेगा, वस्त्र-स्वालम्बन मे भी अधिक बचत न होगी, पर उनका खान-पान तथा स्वास्थ्य सुधरता है, आपस का सहयोग बढता है, गाय, बैल, खेती सुधरती है, तेलघानी आदि अनेक उद्योग चलते है, वे उद्यमशील बनते है, तो अन्त मे अनेक प्रकार से उनका लाभ ही होगा। अब हमारे सामने देहात की सम्पूर्ण सेवा का काम तीव्र रूप से रहना चाहिए।

उक्त विचारो को व्यवहार मे लाने के लिए हमे देहात मे योग्य कार्यकर्त्ताओ को रखना होगा। उनको हमारे विद्यालयो मे उपयुक्त शिक्षा लेनी होगी। कार्यकर्ताओ को निम्नलिखित विषयो की जानकारी होनी आवश्यक है और यथासम्भव एक ही कार्यकर्ता को यह सब जानकारी हो तो अच्छा है।

१—उसको मातृभाषा के सिवा प्रातीय तथा राष्ट्र-भाषा का ज्ञान होना चाहिए। २—देश की आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक दशा का ज्ञान होना चाहिए। कुछ-कुछ दुनिया की हालत का भी। तभी उसे यह पता चलेगा कि भारतवर्ष कहा है और उसे कहा जाना है। ३—फिर वह जहा जाकर बैठे वहा की परिस्थिति का तो उसे ब्योरेवार ज्ञान चाहिए ही। ४—सघ की खादी की प्रथम परीक्षा का पूरा ज्ञान, चरखा दुरुस्ती जितना बढई का काम, अन्य देहाती काम—जैसे कि तेलघानी और हाथ-कागज, आटे की हाथचक्की तथा धानचक्की, खेती तथा गाय-बैल, गाव की सफाई, स्वास्थ्य तथा आहार-सम्बन्धी ज्ञान। कुछ कपडा सीने का भी।

इन व्यावहारिक गुणो के साथ कार्यकर्ता को पूरा नीतिमान तो होना

ही चाहिए । वह कितना ही कुशल हो पर नीतिमान न हो तो हमारे काम नहीं आ सकता ।

सोचा यह जाता है कि ऐसे सुयोग्य कार्यकर्ता को देहात मे जाकर बैठना चाहिए । जितने क्षेत्र मे उसकी काम कर सकने की शक्ति हो उतने आस-पास के क्षेत्र मे काम करे । उस पर परिवार का बोझ अधिक न हो। उसके निर्वाह के लिए आर्थिक सहायता चरखा-सघ से मिले। पर यह नही कि काम वह केवल खादी का करे, बल्कि देहात की पूर्ण सेवा करे। निर्वाह व्यय उसे अवलम्बित परिवार की सख्याके अनुसार मिले । आजकल की महगाई के हिसाब मे परिवार-सख्या के अनुसार ३०) मासिक से लगाकर १००) मासिक तक निर्वाह व्यय मिले । पर १००) से अधिक नही । कार्यकर्ता पाच वर्ष मे पूर्ण स्वावलम्बी बन जाय । अर्थात् प्रथम वर्ष के बाद हर वर्ष उसके निर्वाह की सहायता बीस प्रतिशत कम कर दी जाय । उसे अपनी सब जरूरतो के लिए, सफर खर्च के लिए भी, स्वतन्त्र रूप से प्रबध कर लेना होगा । उसे अपने उद्योग आदि चलाने के लिए भी सघ से पूजी नही दी जायगी । उसे स्वय ही अपनी सब साधन-सामग्री जुटा लेनी होगी। जितने सुयोग्य कार्यकर्ता मिले उतने ही केद्र चलाय जाय । विस्तार का मोह न रखा जाय । अयोग्य कार्यकर्ताओ से काम लेने मे हानि होगी ।

उपर्युक्त विचारो की दृष्टि से भविष्य मे खादी के काम का स्वरूप यह रहेगा कि व्यापारियो को उत्पत्ति-बिक्री के प्रमाणपत्र देने का काम बद किया जाय। खादी के व्यापारिक काम मे तीन बातो की ओर ध्यान देना बहुत आवश्यक है ।

(१) खादी की शुद्धता अर्थात् उसमे मिल के सूत का मिश्रण न हो ।

(२) जो मजदूरी के लिए कातते है उनको जीवन-निर्वाह की मजदूरी मिले ।

(३) मुनाफा न हो ।

यह सब काम व्यापक रूप से प्रमाणित व्यापार के द्वारा सिद्ध होना असभव-सा लगता है । चरखा-सघ के आज के उत्पत्ति-केद्रो व बिक्री-

भडारो के रूप भी बदल जायगे। उत्पत्ति बिक्री के लिए न कराई जाय और बिक्री नकद से न हो। उत्पत्ति-केद्रो मे, उनके आस-पास अथवा शहरो के भडारो मे भी, जो खादी बेची जाय उसके एवज मे कुछ नकदी और कुछ हाथ कता सूत लिया जाय। खादी अथवा ग्राम-उद्योग का माल (ग्राम-सेवा केद्रों मे या आस-पास बननेवाला) केद्र मे या केद्र के आस-पास अधिक-से-अधिक जिले भर मे ही बिक जाना चाहिए। ग्राम सेवा-कद्र मे खादी का बहुतेरा काम वस्त्र-स्वावलम्बन के लिए ही होना चाहिए। थोडा-सा, सूत के बदले मे बिक्री के लिए भी हो सकता है। यह नही कि ऊपर की सारी व्यवस्था हमे तुरन्त ही करा लेनी है। पर अब हमारी कार्य-पद्धति ऐसी होनी चाहिए कि हम निश्चित रूप से उधर बढे और शीघ्र-से-शीघ्र इस व्यवस्था को व्यवहार मे लाया जा सके।

देहात मे सूत के बदले खादी देना वस्त्र-स्वावलम्बन के लिए विशेष सहायक होगा। जिसके घर मे कपास है वह तुनाई करके सूत तैयार कर ले तो उसे खादी प्राप्त करने मे नकद पैसा खर्च नही करना पडेगा, खादी के मूल्य में बुनाई की मजदूरी भर के लिए उसे अधिक सूत अवश्य देना पडेगा, पर नकद पैसे देने की जरूरत न रह जायगी, इसलिए वह उसे नही अखरेगा।

काम का यह जो विकेन्द्रीकरण होगा वह देहात मे ट्रस्टी के नाते स्वय कार्यकर्ता द्वारा, अथवा देहात के सेवाभावी व उत्साही व्यक्तियो की समिति द्वारा, अथवा कीर्त्तन आदि की सहयोग-समिति बनाकर। परतु इस प्रकार बनी हुई चीजे बाहर अथवा दूर भेजकर बेचने के लिए न होकर वहा ही तथा आस-पास के इस्तेमाल के लिए होनी चाहिए। विकेन्द्रीकरण देहात से शुरू हो, आवश्यकतानुसार अधिक क्षेत्र मे बढाया जाय। उसकी आखिरी इकाई जिले से अधिक नही होनी चाहिए।

खादी के बदले मे मिले हुए सूत के बुनवाने के प्रबन्ध का काम चरखा-सघ को कुछ समय तक करते रहने की जरूरत होगी। देहात मे जगह-जगह मौजूदा बुनकरो से काम लेना होगा और नये बुनकर भी तैयार करने पडेगे।

इसलिए कि अब देहात की समग्र सेवा की ओर ध्यान देना है, चरखा-

सघ ग्रामोद्योगसघ तालिमीसघ, हरिजनसेवकसघ और गोसेवासघ, इन पाच सघो के अधिकारियो अथवा प्रतिनिधियो की एक सम्मिलित समिति बननी चाहिए। वह समिति देहात मे, प्रत्यक्ष कोई कारोबार अर्थात् कार्य न करे। परन्तु समय-समयपर बैठकर देहात के काम की सब दिशाओ मे कैसे सहायता पहुचाई जा सकती है तथा भिन्न-भिन्न सघो के कार्यो द्वारा एक-दूसरेके लिए कैसे पूरक बन सकते है, इसका विचार करते हुए मार्गदर्शन करे।

चरखा-संघ के निर्णय

चरखा-सघका उपर्युक्त साराश परिपत्र रूप मे चरखा-सघ की सब प्रातीय शाखाओ तथा प्रमुख खादी कार्यकर्ताओ को विचारार्थ भेजा गया था। जिनमे से बहुतेरे भाई-बहिनो ने उसका गभीर तथा सूक्ष्म अध्ययन करके अपने विचार और उपर्युक्त सूचनाए हमारे पास भेजी। बाद मे इस विषय का निश्चय करने के लिए ता० १, २ व ३ दिसम्बर १९४४ को सेवाग्राम मे चरखा-सघ के ट्रस्टी मण्डल तथा उपर्युक्त सज्जनो की सभा पूज्य गाधीजी की अध्यक्षता मे हुई। उसमे नीचे लिखे प्रस्ताव मजूर किये गये—

चरखे की जड देहात है और चरखा-सघ की पूर्ण कामना-पूर्ति देहातो तक विभक्त होकर देहात की समग्र सेवा करने मे है। इस ध्येय को खयाल मे रखते हुए चरखा-सघकी यह सभा इस निर्णय पर आती है कि सघ की कार्य-प्रणाली मे निम्नलिखित परिवर्त्तन किये जाय।

(१) जितने सुयोग्य कार्यकर्ता तैयार हो और जिनको सघ पसन्द करे वे देहातो मे जाय।

(२) बिक्री-भडार व उत्पत्ति-केद्र मर्यादित किये जाय।

(३) शिक्षालयो मे आवश्यक परिवर्तन तथा परिवर्धन किये जाय तथा नये शिक्षालय खोले जाय।

(४) इतने क्षेत्र वाले जो कि एक जिले से अधिक न हो, यदि नई योजना के अनुसार काम करने के लिए स्वावलम्बी होना चाहे और उन्हे यदि सघ स्वीकार करे तो उतने क्षेत्र मे चरखा-सघ अपनी ओर से काम न

करे और जबतक वहा काम चरखा-सघ की नीति के अनुसार चले, उसको मान्यता और नैतिक बल दे।

(५) चरखा-सघ, ग्रामोद्योग सघ, हिन्दुस्तानी तालिमी सघ, गोसेवा सघ और हरिजनसेवकसघ, इन सघो की एक सम्मिलित समिति बनाई जाय, जो समय-समय पर इकट्ठी होकर नई कार्य-प्रणाली के अनुसार आवश्यक सूचनाए निकाला करे।

चरखा-सघ की इस नई कार्य-प्रणाली को सफल बनाने के लिए आवश्यक था कि बेचने के लिए सूत व खादी कम-से-कम बने, कताई का काम व्यापक हो, सूत व खादी दूर-दूर तक कम-से-कम भेजी जाय, तथा खादी पहनना चाहनेवाले स्वय भी अवश्य काते। इसलिए यह जरूरी था कि खादी की बिक्री केवल नगदी से न होकर उसके मूल्य का कुछ अश सूत मे देना अनिवार्य किया जाय। इसलिए चरखा-सघ ने निश्चय किया जिससे तारीख १ जुलाई १९४५ से सूती खादी केवल उन्ही को बेची जारही है जो खादी के मूल्य के नकद दाम मे रुपये पीछे समय-समय पर निश्चित की गई मात्रा मे अच्छा सूत, खुद का या परिवार मे या मित्रो द्वारा या आस-पास मे कता हुआ देता है।

इससे चरखा-सघ के नव-सस्करण की भूमिका स्पष्ट रूप से समझ मे आ सकेगी। पूज्य गाधीजी कहते है कि चरखा अहिंसा का प्रतीक है, वह यह भी कहते आये है कि सूत मे स्वराज्य छिपा है। यहा अहिंसा शब्द केवल अहिंसा के लिए ही नही, किंतु वह उन सब गुणो का सूचक है कि जिनसे हम मे शुद्धि आवे और हम स्वराज्य प्राप्त करने योग्य हो। गिनने पर इन गुणो की नामावली बहुत लम्बी हो सकती है, उन सब का उल्लेख हम केवल अहिंसा के नाम से भी कर सकते है। साथ ही यह भी सही है कि केवल अहिंसा का सही विकास हो जाय तो अन्य गुणो का भी उसमे विकास हो ही जाता है। इनमे से प्रधान गुणो के बारे मे श्री विनोबाजी ने मराठी भाषा मे नीचे लिखा श्लोक बनाया है, जो आश्रमवासियो की प्रार्थना मे हर रोज गाया जाता है—

अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य असग्रह
शरीरश्रम अस्वाद सर्वत्र भयवर्जन ।
सर्वधर्मी समानत्व स्वदेशी स्पर्शभावना
ही एकादश सेवावीं नम्रत्वे व्रतनिश्चये ।।

इन गुणो के विकास से व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन शुद्ध, सपूर्ण होता है । इनके अभाव मे विपरीत स्थिति रहती है । अहिसा शब्द हमारी जबान पर आने लगा है, परन्तु वह हृदय तक कदाचित ही पहुचता है । अन्य गुण जबान पर भी कदाचित् आते है । पू० गाधी जी ने सत्य और अहिंसा के बारे मे बतलाया है कि ये एक ही सिक्के की दो पीठे हैं । अहिसा शब्द चल पडा है, सत्य का क्वचित् ही स्मरण होता है । उसी प्रकार अन्य गुणो का भी । ऐसा लगता है कि चरखा अहिंसा का प्रतीक है, कहने के बदले, वह सत्य और अहिंसा का प्रतीक है, कहने से हमारी दृष्टि शायद अधिक साफ हो । यह भी नही भूलना चाहिए कि इन दोनो गुणो मे अन्य गुण भी शामिल है ।

कातने का काम करने वाले कई प्रकार के व्यक्ति है । मजदूरी के लिए कातनेवाले, अकाल आदि सकट के समय कातनेवाले, वस्त्र-स्वावलम्बन के लिए कातनेवाले, बुनियादी तालीम मे कातनेवाले और यज्ञरूप मे कातने वाले । यदि चरखा-सघ की दृष्टि से चरखे को सत्य और अहिसा का प्रतीक बनना हो तो इन कातने वालो को तथा खादी पहिननेवालो को ध्यान रखना है कि अपने मे और अपने द्वारा अन्य लोगो मे उपर्युक्त गुणो का विकास करना है । और इसलिए कि यह सब गुण अहिसात्सक स्वराज्य और अहिसात्मक समाज की रचना के लिए आवश्यक है, उसका विकास होने पर ऐसी कोई शक्ति नही है जो हमारा स्वराज्य रोक सके । यह काम तब ही बन सकता है कि जब हम घर, बाहर सभी जगह जहा-जहा उसे काम करना पडे, अपने आचरण मे इन गुणो को प्रकट करें और नीचे लिखे अठारह रचनात्मक कामो के करने मे तन-मन से जुट जाय—

१ कौमी एकता, २. अस्पृश्यता निवारण, ३ शराबबन्दी. ४. खादी,

५, अन्य ग्रामोद्योग, ६ बुनियादी तालीम, ७ ग्रामोत्थान, ८ प्रौढ शिक्षा, ९ स्त्रियो की उन्नति, १० आरोग्य और सफाई, ११ राष्ट्रभाषा-प्रचार, १२ स्वभाषा-प्रेम, १३ आर्थिक समानता, १४ किसान, १५ मजदूर, १६ विद्यार्थी मे, १७ आदिवासी की सेवा, १८ कोढ पीडितो की सेवा।

गुणो का विकास केवल बौद्धिक प्रयोग से नही किंतु प्रत्यक्ष काम के आधार से ही हो सकता है। ऊपर लिखा रचनात्मक कार्यक्रम उसका आधार है। उसी मे देहात की समग्र सेवा भरी पडी है। देहात कहिये या हिंदुस्तान। अब चरखा-सघ का मुख्य लक्ष्य यह बनता है। यदि हम इसमे सफल हो तो देश का राजकारण रचनात्मक काम के आधीन हो जाता है।

: १६ :

खादी के उपकरणों की उत्क्रान्ति

कांग्रेस के आरम्भ किये हुए असहयोग आन्दोलन के साथ-ही-साथ खादी-आन्दोलन का किस तरह जन्म हुआ और खादी का आन्दोलन शुरु होने से आज तक खादी ने किस-किस प्रकार प्रगति की, ये सब बाते पाठक पिछले अध्यायो मे देख ही चुके है।

खादी का आन्दोलन शुरू होने से अबतक गत १८ वर्षों मे खादी के सम्बन्ध मे जो अनुभव प्राप्त हुए है, उनपर से खादी का अलग एक शास्त्र ही बन गया है। इन अनुभवो को ध्यान मे रखकर ही समय-समय पर खादी के उपकरणो मे काफी प्रगति होती रहती है। उपकरणो की उत्क्रान्ति के साथ-साथ कार्यकर्ताओ की आविष्कारक बुद्धि का भी विकास हुआ है। इन दोनो विषयो का एक-दूसरे के साथ सम्पर्क होने के कारण इस अध्याय मे इन दोनो पर विचार किया जायगा।

समस्त हिन्दुस्तान मे जुदा-जुदा प्रान्तो मे जुदा-जुदा आकार के उपकरण काम मे लाये जाते है। उनका आकार छोटा-बडा होने पर भी उनकी बनावट बहुतकर एक निश्चित तरह की होती है। खादी का आदोलन आरम्भ करते समय जो पुराने औजार उपलब्ध हुए, उन्ही को हाथ मे लेकर उनमे किस-किस तरह सुधार किये गये, इस अध्याय मे यही बताना है।

कपास चुनकर साफ करने के बाद उसमे से बिनौला अलग करने की प्रक्रिया को ओटना कहते है। उसके लिए जो साधन काम मे आता है उसे चरखी कहते है। अत पहले हम उसी को लेते है।

ओटनी या चरखी

गावो मे अक्सर लोढने की जो चरखी दिखाई देती है, वह आकार मे बडी और अपेक्षाकृत भारी होती है, इसलिए उन्हे चलाने के लिए दो आदमियो

का जरूरत होती है। एक आदमी सलाई के पास कपास सरकाता है और दूसरा उसका हत्था घुमाता है। इस चरखी के जरिये एक घण्टे मे ५ पौण्ड अथवा ढाई सेर कपास लोढी जाती है। भारी और माटी होने और चलाने के लिए दो आदमियो की जरूरत होने के कारण यह चरखी पिछड़ गई।

गावो मे ऐसी चरखी भी दिखाई देती है, जिसे एक आदमी चला सके। लेकिन उसमे बैठक नही होती। बैठक की जगह लकडी के मध्यवर्ती डण्डे पर भारी पत्थर रखा जाता है, जिससे वह चरखी हिल न सके। इस पर काम करना बडा कष्टकर प्रतीत होता है। इसके सिवा उसपर एक घण्टे मे तीन ही पौण्ड कपास लोढी जा सकती है। ऐसी दशा मे यह चरखी भी लोकप्रिय नही हुई।

बारडोली के 'सरजाम-कार्यालय' ने भी खादी-कार्य के लिए एक चरखी तैयार की। इस चरखी की लाट मोटी है। यह लाट ऊपर से लकडी की है, लेकिन उसके बीच म आरपार लोहे की चौकोनी सलाई बिठाई गई है। इस सलाई के ही एक सिरे पर हत्था लगा दिया गया है, जिससे एक आदमी आसानी से उसे फिरा सके। चरखी मे जो पेच होते है,वे लकडी के है। इसकी बनावट ऐसी रखीगई है जिससे यह पेचोवाला भाग अलग निकाला जा सके। इसकी ऊपर की सली लोहे की और गोल है उस पर आडी रेखाये है। इस चरखी मे ढिबरी लगाई गई है। सली के घूमने से घर्षण न हो, इसलिए एक पीतल का वर्तुल स्तम्भो के दोनो तरफ फ़िट किया गया है। इस चरखी के छुटे हिस्से 'लेथ' पर तैयार किये गये है, इसलिए वे समान नाम के है और फुटकर बिकाऊ मिल सकते है। इसकी बैठक अच्छी है और इसकी धैंडी की जा सकती है। इसपर एक घण्टे मे पाच से सात पौण्ड तक सूरती कपास लोढी जा सकती है।[१]

१ कपास के परिमाण के बारे मे यह खुलासा कर देना जरूरी है कि जिस कपास मे बिनौले से रूई जल्दी छूट जाती है उसका लोढ़ने का औसत ज्यादा होता है, और जिसमें से रुई देर से छूटती है उसका कम। उदाहरणार्थ, उपरोक्त चरखी पर एक घटे में ७ पौंड सूरती कपास लोढ़ी

बारडोली चरखी के दोष--(१) इसकी कीमत अधिक होती है, जो किसान को नही पुसा सकती, (२) आरम्भ मे उसपर बिनौले ज्यादा टूटते है, और (३) यह गाँवो मे न तो तैयार हो सकती है, न टूट-फूट होने पर वहाँ उसकी दुरुस्ती ही हो सकती है।

इस चरखी म उक्त दोष होने के कारण वर्धा के ग्राम-सेवा मण्डल ने दूसरी तरह की चरखी तैयार करवाई। सुधरी हुई अथवा उन्नत चरखी तैयार करने पर पच्चीस रुपये के इनाम की घोषणा की। उसके लिए नीचे लिखी शर्ते थी—

(१) वह ऐसी होनी चाहिए कि उससे आठ घण्टे मे कम-से-कम पन्द्रह सेर रोजिया कपास लोढी जा सके, (२) किसी भी तरह की कपास के बिनौले न फूटे, (३) सर्वसाधारण स्त्रिया बिना किसी दिक्कत के आठ घण्टा चला सके, (४) आरम्भ से ही अच्छा काम दे और (५) बीच-बीच मे टूट-फूट की दुरुस्ती का मौका न आकर कम-से-कम एक महीना काम देनेवाली हो।

नोट—बैठक के दोनो खूटो मे १० इञ्च का 'अन्तर हो और प्रत्येक खूटा डेढ इञ्च मोटा हो।

इन शर्तों अनुसार वर्धा के एक बढई ने एक चरखी तैयार की। इस चरखी की विशेषता यह है कि उसकी लाट मोटी है और उसमे छ: आटे है। कना अष्टकोनी और टाचेदार है। कना दोनो ओर टेढा है और लाट की एक बाजू पर लगाया गया है, इससे बिनौला जल्दी टूटता है।

जाती है। इस कपास मे से बिनौले से रुई जल्दी छूट जाती है इसलिए उसका औसत ७ पौंड है। रोज़िया रुई को बिनौले से अलग करने मे देर लगती है, इसलिए उस कपास के लोढने का फी घंटा औसत कम पडेगा। इस अध्याय में जहां-जहा यह कहा गया है कि एक घंटे में अमुक पौण्ड लोढ़ी जाती है, वह औसत रोजिया कपास का समझना चाहिए। कपास की जुदा-जुदा किस्मो को ध्यान में रखकर, उस-उस कपास के गुण-धर्म के अनुसार उसके औसत में अन्तर पड़ता जायगा।

इसमें ढिबरी के बजाय पेच लगाये गये है। लाट के रगड न लगने देने के लिए पाये पर लाट के दोनो ओर बास के वर्त्तुलाकार 'बेअरिंग' लगाये गये है। कने के जितने अधिक फेरे होगे, उतना ही काम अधिक होगा। इस नई चरखी के लोढने मे लाट के एक फेरे या चक्कर के साथ कने के तीन फेरे होते है। पहले की चरखी मे दो फेरे होते थे। उपरोक्त सुधार के कारण काम अधिक होने लगा है। इस चरखी की घडी नही की जा सकती, लेकिन उसके बैठक है।

दोष—इस चरखी पर जितनी चाहिए उतनी कपास नही लोढी जा सकती। अभी फी घण्टा साढे चार पौण्ड लोढी जाती है, जब फी घण्टा छ पौण्ड लोढी जाने लगे, तब यह चरखी वर्त्तमान चरखियो मे सर्वोत्तम हो सकती है।

इसके सिवा अ० भा० चरखा-सघ के आजीवन सदस्य और साबरमती के सरजाम-कार्यालय के सञ्चालक श्री लक्ष्मीदास पुरुषोत्तमजी ने भी एक 'लोढन-यन्त्र' तैयार किया है। इस यन्त्र पर फी घण्टा १५ पौण्ड कपास लोढी जाती है। इसकी विशेषता यह है कि इस पर एक ही आदमी पैर मे पैडल चलाता है और हाथ से कपास सरकाता जाता है। इसमे साइकिल की जजीर, फ्री व्हील और बॉल-बेअरिंग का उपयोग किया गया है।

दोष—(१) यह यन्त्र महगा है, (२) इससे बिनौला फूटता है, (३) यह गावो मे तैयार और दुरुस्त नही हो सकता और (४) यह सब तरह की कपास के लोढने मे उपयोगी नही होता।

इस सारे विवरण से यह स्पष्ट है कि वर्त्तमान चरखियो मे अनेक दोष है। इसलिए अभी ऐसे एक उपकरण की अत्यन्त आवश्यकता है जिसमे से उक्त सब दोष निकाल लुढाई का काम सन्तोषजनक रीति से हो सके। अ० भा० चरखा-सघ ने हाथ से लोढने पर बहुत जोर देकर इस तरह की चरखी का आविष्कार करने की आवश्यकता बतलाई है। अगस्त सन् १९३६ मे हुई सघ के कार्यवाहक मण्डल की बैठक मे इस सम्बन्ध

मे नीचे लिखा महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकार किया गया था—

"कार्यवाहक-मण्डल का मत है कि वह समय आ गया है जबकि हाथ की लुढाई पर यथासम्भव जोर दिया जाय। मण्डल खादी की उत्पत्ति मे दिलचस्पी रखने वाली चरखा-सघ की सब शाखाओ का और खादी-प्रेमी लोगो का इस बात की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता है कि खादी की व्याख्या मे आने वाले सब कपडे हाथ से धुने, हाथ से कते और हाथ से बुने होने चाहिएँ और उसके लिए आवश्यक रुई हाथ-चरखी पर लुढी होनी चाहिए। खादी चरखी मे सुधार अथवा उन्नति करने और हाथ की लुढी रुई को लोकप्रिय बनाने के लिए सघ की शाखाये और लोग जो प्रयत्न करेगे उसके लिए मण्डल उनका अभिनन्दन करेगा।"

धुनकी या पीजन

पुराने जमाने मे बास की खपच्ची पर डोर बाँधकर धुनकी तैयार की जाती थी और उस पर हाथ से ही रुई पीजने की प्रथा थी। यज्ञोपवीत—जनेऊ—तैयार करने अथवा पूजा की बत्तियो के लिए आवश्यक रुई इस तरह की धुनकली पर धुनी जाती थी। धुनिये की धुनकी मे बकरी की आत की तात लगती थी, इसलिए उक्त पवित्र कामो के लिए इसे उपयुक्त न मानकर यह धुनकली काम मे आ जाती थी। धुनकली के लिए काम मे लाई जाने वाली डोर सन अथवा अम्बाडी के बजाय केले के तन्तु अथवा मूज की घास से बनाई जाती थी। ऐसी बारीक डोर होने के कारण इस धुनकली से पिंजाई का काम हो सकता था।

खादी का आन्दोलन शुरू होने से पहले सामान्यत पिजारो के पास की मोटी धुनकियाँ ही सब जगह काम मे आती थी। अभी-भी लिहाफ-गद्दो के लिए आवश्यक रुई इन्ही धुनकियो पर धुनवाई जाती है। इन धुनकियो की ताँत दस-बारह तार की होने के कारण खूब मोटी होती है। तात जितनी मोटी होती है, पिजाई उतनी ही मामूली और जितनी बारीक होनी है, पिजाई उतनी ही अच्छी होती है। इसके सिवाय इस धुनकी के लिए जगह की भी अधिक आवश्यकता होती थी और धुनने मे भी यह भारी पडती थी, इसलिए

इन दोषो से युक्त धुनकी की आवश्यकता अनुभव होने लगी। इसलिए बार-डोली के 'सरजाम कार्यालय' ने धुनकने मे सामान्यत हलकी, कम जगह घेरनेवाली और बारीक तात की 'मध्यम-धुनकी' तैयार की। इस धुनकी पर फी घण्टा १०-१२ तोले रुई धुनकी जाती है। यह बास की भी बनाई जाती है, लेकिन बासके बीच मे गाठ होती है, इसलिए उस पर काकर (धुनकी के पखे पर लगने वाली चमडे की पट्टी) अच्छी तरह कमकर नही जम पाती। सघ के कामो मे 'मध्यम धुनकी' का ही व्यवहार अच्छा है।

धुनियो की मोटी धुनकी मे और आजकल काम मे लाई जाने वाली मध्यम धुनकी मे भी टागने के लिए जगह की जरूरत होती है। बास की दो खपच्चियो को एक के ऊपर एक बाधकर उस पर डोरी से यह धुनकी लटका दी जाती है। इस कमान के कारण धुनकी पर काम करना सरल हो जाता है और प्रत्येक बार इस कमान का स्प्रिग (Spring) की तरह उपयोग हो जाता है।

सत्याग्रह-आन्दोलन मे जब्तियो और पकडा-धकडी का दौर-दौरा था। ऐसे समय मे एक सुविधाजनक धुनकी की आवश्यकता अधिक प्रतीत हुई; क्योकि 'मध्यम-धुनकी'के होनेपर भी उसे लेकर सफर करना जरा असुविधा-जनक होता था। अत 'यौद्धिक' अथवा 'सफरी' धुनकी की कल्पना हुई और तदनन्तर वह बनाई गई। यह धुनकी इतनी हलकी है कि बालक-बूढे सभी स्त्री-पुरुष इसे जहा चाहे अपने साथ ले जा सकते है, उसके लिए जगह भी ही चाहिए। उसमे तात बारीक लगानी पडती है, इसलिए उस पर पिंजाई भी अच्छी होती है। इससे फी घण्टा ७-८ तोले रुई धुनी जा सकती है। व्यक्तियो के अपने आप पीजने के लिए यह धुनकी अच्छी है। इसे लटकाना नही पडता।

बगाल के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री सतीशचन्द्रदास गुप्त ने कलकत्ते के उपनगर सोदपुर मे 'खादी प्रतिष्ठान' नामक एक सस्था स्थापित की है। इस सस्था ने सन् १९३०-३१ मे पिंजाई की एक मशीन बनाई थी। वह हाथ से चलाई जाती है। इससे प्रतिदिन १० पौण्ड रुई धुनी जा सकती

है। यह मशीन अभी सर्वमान्य नही हुई है।

इसके बाद स्वर्गीय मगनलाल गाधी के पुत्र श्री केशवलाल गाधी ने भी पिंजाई की एक मशीन का आविष्कार किया और उसका लाभ उठाकर साबरमती के 'सरजाम-कार्यालय' ने पीजने की एक नई मशीन बनाई है। दूसरे भी कई प्रयत्न इस दिशा मे हुए।

इस मशीन के गुण—इस मशीन मे रुई के विथूरने की क्रिया होने के कारण उसके—रुई के तन्तु साफ और अलग हो जाते है। तात से तन्तुओ का इतना साफ हो सकना सम्भव नही होता। इसके सिवा इसमे पखा लगाया गया है, जिससे तन्तु से भारी वजन की धूल अथवा कचरा उसकी हवा से अलग होकर, मशीन के साथ ही लगी हुई कचरा-पेटी मे फेक दिया जाता है। इस मशीन मे पोल तैयार होता है। इस मशीन से एक घण्ट मे अधिक से अधिक २० तोले सूरती और १२ तोले रोजिया रुई धुनी जाती है। रुई की धुनाई अच्छी होने के कारण पूनिया भी अच्छी होती है। ३० नम्बर से ऊपर का सूत कातने के लिए इस मशीन पर धुनी हुई रुई की पूनिया अच्छी रहती है।

इसके दोष (१) इस मशीन का चलाना एक आदमी की शक्ति के बाहर की बात है, (२) यह गावो मे न तो तैयार हो सकती है न दुरुस्त ही, (३) यह इतनी पेचीदा है कि घरेलू धन्धो मे इसका समावेश नही हो सकता; (४) यह सब तरह की रुइयो के लिए उपयुक्त नही है, (५) इसकी कीमत अधिक होने के कारण गाव के लोगो के लिए उसका खरीद सकना सम्भव नही होता, और (६) इसके बनाने मे विदेशी चीजो की आवश्यकता होती है।

इस मशीन के कारण धुनाई के सम्बन्ध मे लोगो को परावलम्बी होना पडेगा। अभी लोगो को जो थोडी बहुत धुनाई की कला विदित है, वह नष्ट हो जायगी। इन दोषो के कारण अखिल भारतीय चरखा-सघ ने तय किया कि यत्र धुनकी को उत्तेजन देना ठीक नही है।

नई तुनाई

तुनाई शब्द सस्कृत की तन् धातु से बना हुआ दीखता है। तन् धातु का अर्थ है, खीचना या तानना। तन्तुओ को खीच कर अलग-अलग करके उनको समानातर बनाने की क्रिया को तुनाई कहते है। मराठी मे तुनाई के लिए "खाण्डन-विचरण" यह एक सयुक्त शब्द है। इसे हिन्दी मे खण्डन-कघन कह सकते है। तुनाई मे होने वाली क्रियाओ की साफ-साफ कल्पना खण्डन और कघन इन दो शब्दो मे आ जाती है। खण्डन का मतलब है तन्तुओ को एक दूसरे से अलग करना, खीचकर दो भाग करना। और कघन का मतलब है, अलग किये हुए इन तन्तुओ की एक सीधी दिशा मे समानातर पट्टी खीचना। कघी से बाल सवारने से बाल एक सीधी दिशा में समानातर हो जाते है। करीब-करीब यही क्रिया कघन से होती है। खण्डन-कघन यह जोड शब्द हिन्दीमे अभीतक रूढ नही है, तुनाई शब्द ही तुनने मे जितनी क्रियाए होती है, उनके लिए इस्तेमाल किया जाता है।

तुनाई मे तुनने की क्रिया कर लेने के बाद तन्तुओ की समानातर पट्टी को छोटी-सी धुनकी से धुनकर पूनिया बनाई जाती है; लेकिन जिसमे धुनकी का कही भी उपयोग नही किया जाता और सिर्फ समानातर पट्टियो से सीधी पूनिया बनाई जाती है,उस क्रिया को नई तुनाई यानी बिना धुनाई की केवल तुनाई कहते है।

तुनाई की कला नई नही है। आध्र बिहार आदि प्रातो मे वह कई सालो से चली आ रही है। लेकिन अबतक केवल महीन सूत के लिए ही वह पद्धति काम मे लाई जाती थी। तुनाई मे जो सिद्धात है उसका उपयोग हमारे मध्यम अक के सूत के लिए भी यदि किया जाय तो खादी मे सुधार हो सकता है और धुनकी, तात वगैरा के झझट से हम मुक्त हो सकते है।

चरखे

भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तो मे चरखे के अलग-अलग आकार और प्रकार है। पुराने चरखो मे कुछ अधिक भारी,तो कुछ आसानी से उठाये जा सकने-जैसे है, कुछ के बीच की पुडी बेडौल पथरीली है, तो कुछ के बीच मे नकशीदार डमरू है। कुछ का व्यास बहुत मोटा है, तो कुछ का बहुत

छोटा, कुछ चरखो की पखुडिया लम्बी और मोटी, तो कुछ की आडी और पतली है। इन सब तरह के चरखो को वर्धा के 'मगन सग्रहालय' मे एकत्र किया गया है, जिसकी नुमाइश देखने योग्य है।

इन चरखो के पहियो और तकुओ मे जुदा-जुदा अन्तर होने के कारण उनमे कुछ भी वैज्ञानिकता नही थी। इस दोष के कारण ही तकुए पर की माल की पकड ठीक नही रहती थी।

बारडोली के 'सरजाम-कार्यालय' ने इन पुराने चरखो का सूक्ष्म निरीक्षण करने के बाद उनमे के दोषो को दूर करने का प्रयत्न करके बिना चमरख का चरखा तैयार किया। इसे अभी बारडोली चरखा' कहते है। इसका पहिया २४ इञ्ची होता है। उसकी धुरी लोहे की है, और पीतल की बेअरिग होने के कारण माल की पकड अच्छी रहती है।

इस चरखे के तकुए मे भी बहुत से सुधार किये गये है। यह अनुभव होने पर कि जिस तरह धुनकी की तात जितनी बारीक होती है, उतनी ही पिजाई अच्छी होती है, उसी तरह जिस चरखे का तकुआ जितना अधिक पतला होता है, उतना ही वह अच्छा बारीक सूत कातने के लिए अच्छा होता है, 'बारडोली' चरखे मे बारीक तकुए का प्रयोग किया गया है। तकुए मे ही लोहे की गिर्री लगा दी गई है, इसलिए 'साडी' लगाने की आवश्यकता नही रहती। तकुवा रखने के लिए मोढिये (मोहरे) के बीच मे खाने कर दिये गए है। खानो की इस योजना के कारण चमरखो को बिलकुल उडा दिया गया है। इन सब सुधारो के कारण वर्तमान चरखो मे 'बारडोली चरखा' सर्वोत्तम माना गया।

गाडीव-चरखा

अब हम पहियो के चरखो पर नजर डालेगे। परम्परा से चले आनेवाले चरखे सामान्यत आकार मे बडे होते थे, उनका आकार छोटा करने के लिए दो पहियो के चरखे की कल्पना पहले-पहल किसके दिमाग मे पैदा हुई, यह कह सकना कठिन है, क्योकि लगभग सन् १९२१ से हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न भागो मे भिन्न-भिन्न आकार के दो पहियो के चरखे निर्माण हुए दिखाई देने

लगे थे। ऐसे ही चरखो मे के एक विशेष चरखे का यहा उल्लेख करना आवश्यक है। सूरत के श्री ईश्वरलाल बीमावाले ने अपनी कल्पना के अनुसार दो पहियो का चरखा बनाया। एक डडे पर दो पहियो को आडा रखकर चरखा चलाने की कल्पना पहले-पहल श्री बीमावाला को ही हुई है। उन्होने इस चरखे का नाम 'गाण्डीव-चरखा' रखा है।

जीवन-चक्र

'सुन्दरदास सॉ मिल्स' वाले श्री पुरुषोत्तमदास रणछोडदास ने श्री बीमावाले के गाण्डीव चरखे की तरह दो पहियो का उपयोग कर एक दूसरा चरखा तैयार किया और उसका नाम जीवन-चक्र' रखा। 'जीवन-चक्र' के पहिये खडे रखे गये है और इसकी रचना 'अनुपम और आकर्षक' है।

चरखे पर भिन्न-भिन्न प्रयोग कर उसमे कई तरह का सुधार करने के लिए अबतक बहुत से प्रयत्न किये जा चुके है। इनमे श्री पुरुषोत्तमदास का प्रयत्न अधिक सफल हुआ है। छोटे-बडे दो पहियो मे लगी हुई माल कातते समय निकल न जाय अथवा ढीली न हो जाय, इसके लिए उसमे स्प्रिग की योजना श्री पुरुषोत्तमदास की आविष्कारक बुद्धि का 'भव्य' परिणाम है। देखने मे स्प्रिग की यह योजना मामूली-सी है, लेकिन वास्तव मे है अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, क्योकि इसके कारण छोटे आकार के चरखे लोकप्रिय होकर उनका स्थान स्थायी हो गया है।

श्री पुरुषोत्तमदासजी ने बारडोली के मोढिये (मोहरे) मे भी एक उन्नति की है। पहले मोढिये के दोनो तरफ के स्तम्भो मे ऊपर से बीच मे छेद करने पडते थे और उनके बीच मे गोल आकार की मुलायम बोरू की छोटी डडिया डाली जाती थी। इन लकडियो से सटाकर कपडे की पट्टी के गर्भ मे से तकुआ फिरता था। इन लकडियो के बजाय एक बारीक डोर के आधार पर हलके फूल की तरह तकुआ घूमते रहने का श्रेय श्री पुरुषोत्तमदास को दिया जाना चाहिए।

जिस तरह श्री पुरुषोत्तमदास ने दो पहियो मे फिरनेवाली माल के निकल जाने अथवा ढीली होजाने की रोक के लिए स्प्रिग की योजना की थी,

उसी तरह मोढिये मे बिठाये गये तकुए पर की माल के लिए रबड की योजना की गई थी। उस रबड के बजाय स्प्रिग की योजना करने का श्रेय बारडोली के 'सरजाम-कार्यालय' को है।

महात्मा गाधी ने अपने सन् १९३० और उसके बाद के कारावास के समय मे चरखे के सम्बन्ध मे तरह-तरह के प्रयोग किये। जेल मे उन्होने अपने पास एक कारीगर रख लिया था और प्रयोग के अन्त मे उन्हे जो बाते सूझती, उसके अनुसार वे चरखे मे परिवर्तन करवाते थे। 'जीवन-चक्र' की रचना आकर्षक होते हुए भी महात्माजी को गाण्डीव चरखा अधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ, क्योकि 'जीवन-चक्र' की तुलना मे उसकी सादी रचना और स्वल्प मूल्य अधिक पसन्द आया, इसलिए उन्हे और उनके पास के कारीगर को जो परिवर्तन सूझे, उन्हे उन्होने गाण्डीव चरखे मे ही समाविष्ट किया। मोढिये मे बोरू की लकडी के डोरी डालने का सुधार श्री पुरुषोत्तमदास ने सुझाया, किन्तु वह डोर घिसकर निरुपयोगी होजाती थी और उसके कारण तकुआ भी घिसता था, इसलिए महात्माजी की सूचना के अनुसार आगे-पीछे सरकने वाली, किन्तु तकुए के तीनो ओर ठोस बैठने वाली डोर लगाने की योजना की गई। महात्माजी गोलमेज-परिषद् के लिए लन्दन गये, उस समय की यात्रा और उसके बाद के कारावास के समय उन्होने जो प्रयोग किये उन्ही के परिणाम-स्वरूप उन्हे यह सुधार या परिवर्तन सूझा।

गाण्डीव चरखे की मूलभूत कल्पना के आधार पर महात्माजी के द्वारा यरवदा जेल मे से जो सूक्ष्म परिवर्त्तन सुझाये जाते, उन्हे अमल मे लाकर श्री केशव गाधी ने उस चरखे को पेटी या बक्स मे बिठाने की युक्ति खोज निकाली। सब सुधारो से युक्त इस नवीन चरखे का नाम 'यरवदा-चक्र' रखा गया।

जिस चरखे मे यरवदा-चक्र की ही सब योजना का कायम रखकर पेटी या बक्स के बजाय घडी करने की सुविधा है उसका नाम 'घडी-चक्र' और जिसमे घडी करने के बजाय खडा ही टागने की सुविधा है उसका नाम 'किसान-चक्र' रखा गया है।

यरवदा-चक्र मे पेटी की सुविधा होने के कारण उसकी कीमत अपेक्षाकृत अधिक पडती है। जो लोग यरवदा-चक्र के सब लाभ उठाना चाहते है, किन्तु पेटी के कारण अधिक पडनेवाली कीमत देने मे समर्थ नही है, उनके लिए 'घडी-चक्र' और जो इतनी भी कीमत नही दे सकते उनके लिए 'किसान-चक्र' तैयार किया गया है। किसान-चक्र मे यह विशेषता है कि मजबूती मे अधिक होने के अलावा कातते समय वह हिलता नही है। एक-के-बाद-एक किस तरह कल्पना सूझती गई वह, इस वर्णन पर से स्पष्ट होगा।

'यरवदा-चक्र' 'घडी-चक्र' और 'किसान-चक्र' की रचना मे कातने के सम्बन्ध मे भी जैसे-जैसे अनुभव होते गये, उनके अनुसार सुधार किये गये है।

सावली के चरखे पर तिरछा तकुआ रखने से सूत सफाईदार और अपेक्षाकृत बारीक निकलता है और लपेटने मे भी सुविधा होती है, (सावली चरखे का पूरा वर्णन आगे आया है) इसलिए उपरोक्त तीनो चरखो मे मोढिये तिरछी खाच के और हिलते हुए रखने की योजना की गई है, इसके सिवा उसी मुहरे पर दाहिने अथवा बाये हाथ से कातने की भी सुविधा रखी गई है।

इन तीनो तरहके चरखो मे एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने की योजना की गई है। नौसिखिये कातने वालो के लिए अर्थात् जिनका सूत कुछ मोटा निकलता है, उनके लिए तीन इच व्यास का, मध्यम प्रकार का सूत कातनेवालों के लिए चार इच और प्रवीण कतवैयो के लिए ५ इच व्यास का छोटा पहिया डालने की सुविधा की गई है।

इन तीनो तरह के चरखो की विशेषता यह है कि इनके लिए थोडी ही जगह की जरूरत होती है, कीमत कम पडती है और इसके सिवा इन पर कातने मे ऊचे पलग की जरूरत नही रहती।

एक और महत्त्वपूर्ण आविष्कार का उल्लेख करना आवश्यक है। परम्परा से चले आने वाले सावली के चरखे पहले के सब चरखो से अच्छे है। लेकिन सावली चरखे का पहिया १६ से १८ इच तक का होने के कारण कातते समय उसे घुमाना बहुत पडता है। परिणाम मे वेग कम होता था।

अत मुख्य पहिये और तकुए के बीच मे एक छोटा-सा पहिया लगाकर इस दोष को दूर किया गया। इस छोटे पहिये का उपयोग वेग अथवा गति बढाने के काम मे हुआ, इसलिए उसे गति-चक्र' कहते है। सावली के चरखे पर यह गति-चक्र लगा देने से वह भी यरवदा-चक्रकी तरह ही कार्यक्षम सिद्ध हुआ है।

धनुष तकुवा

कातने के लिए एक नये साधन का आविष्कार इन दिनो हुआ है। उस साधन का नाम "धनुष तकुवा" रखा गया है। पोलेड निवासी श्री मॉरिस फ्रिडमन् कई वर्षो से हिन्दुस्तान में आकर बसे है। उनका हिन्दुस्तानी नाम भारतानन्दजी है। वह अच्छे इजीनियर है। खादी और ग्रामोद्योग मे बडी श्रद्धा रखते है। सेवाग्राम मे आकर वहा की प्रवृत्तियो का अधिक अध्ययन करके उनके सशोधन मे वह लग गये। इसी प्रयत्न का फल उपर्युक्त नया आविष्कार है।

धनुष तकुआ की विशेषता यह है कि किसी भी देहात मे बडी आसानी से वह बनाया जा सकता है। उसके दाम चरखे के मुकाबले मे कम पडते है। बिना परते के वह चार से लेकर छ आने तक बन जाता है। और कातने मे करीब-करीब मामूली चरखे की बराबरी कर लेता है।

इसमे तकुवे के आधार के लिये एक छोटा-सा मोढिया रहता है। उस मोढिये को बास के एक छोटे-से टुकडे पर फसाने की सुविधा होती है। बास का टुकडा पैरो के नीचे दबाने से तकुवा एक जगह जमा कर रखा जा सकता है। तकुवे पर न घिर्री रहती है न साडी और न वह बीच मे मोटा रहता है। उसको वेग देने के लिए बास का एक धनुष बनाया जाता है जिसमे रस्सी के स्थान पर चमडे की सवा इच चौडी पट्टी लगाई जाती है। और उस पट्टी को एक तरफ तेल मे पकाया हुआ राल का चिपकने वाला मरहम लगाया जाता है। उस चमडे की पट्टी को तकवे के घुमाने के स्थान पर लगाकर धनुष को खीचने से राल के सहारे तकुआ पकडा जाकर चमड़े की पट्टी के झटके से तेजी से घूमने लगता है। इस प्रकार धनुष से तकुवे को वेग देना

ही इसमे मख्य आविष्कार होने से इसका नाम धनुष तकुवा रखा गया है।

मगन-चरखा

अब हम एक खास किस्म के चरखे पर नजर डाले । खादी के अनन्य सेवक, 'वणाट शास्त्र' और 'तकली शिक्षक' इन दोनो पुस्तको के लेखक स्व० श्री मगनलाल गाधी के भतीजे श्री प्रभुदास गाधी ने दोनो हाथो से एक साथ दो धागे काते जा सके इस तरह का एक चरखा बनवाया और उसे 'मगन-चरखा' नाम दिया ।

जिस तरह सिगर की सिलाई की मशीन चलाने के लिए पैडल का उपयोग करना पडता है, उसी तरह इस चरखे के चलाने मे भी पैडल से काम लेना पडता है। इस चरखे के दोनो मोहरो पर दो तकुए चलाने की व्यवस्था होने के कारण इसपर दोनो हाथो से कातने की सुविधा है। यरवदा-चक्र पर सामान्यत जितने समय मे जितना सूत निकलता है, उतने ही समय मे इस चरखे पर उससे ड्योढा सूत निकल सकता है। सादे चरखे से इसकी कीमत ड्योढी से दूनी पडती है। इसकी बनावट ऐसी है कि टूट-फूट होने पर गावो मे उसकी दुरुस्ती हो सकती है। इस चरखे मे एक यह दोष अवश्य है कि सूत लपेटते समय एकदम रुकना पडता है, इससे पाव पर दबाव पडता है। इस दोष को दूर करने के लिए इसमे सशोधन होने की जरूरत है। ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि सूत अपने आप लिपट सके।[1]

१. मूल अन्वेषक का कहना है कि हमारा असली देहाती चरखा अपने रूप मे स्वयपूर्ण यत्र है और उसके यात्रिक सिद्धांतो को कायम रखकर ही हमे चरखे की गति बढ़ानी हो तो सादे एक तकुवे के स्थान पर दो तकुवे कर देने से अधिक हमे कुछ करना आवश्यक नही है, फिर भी इसमें एक दोष यह देखा गया है कि इस चरखे को चलाने में कातनेवाले को अधिक झुकना पडता है और उसकी रीढ़ तथा पैर पर अधिक दबाव पडता है इसलिए उसमे सुधार होता गया। इस सुधार में अपने आप लिपटने की व्यवस्था करनेकी भी कल्पना सुधारको के सामने है; परतु ऐसा करने में असली चरखे की सादगी नष्ट होने का पूरा खतरा है। जो मगन चरखे की कल्पना के

श्री प्रभुदास गाधी के बनाये इस चरखे मे सुधार होता गया और फलस्वरूप आज उनके तीन प्रकार विशेष महत्त्व रखते है —

१. एक तो अहमदाबाद मे अखिल-भारत चरखा-सघ के प्रयोग-विभाग की तरफ से बनवाया गया है। यह चरखा साइकिल की तरह घुमाया जाता है। इसमे गतिचक्र भी बैठाया गया है। इसके मुख्य चक्र की गति का,तकुए की गति से अनुपात १ २५० है। उसमे मृतविन्दु (Dead Point) नही है, यही उसका विशेष गुण है। काता हुआ पूरा धागा तकुए भरने के लिए उसे हम चाहे तब तुरन्त रोक सकते है।

२. दूसरा मूल मे मध्यप्रात महाराष्ट्र चरखा-सघ ने तैयार करवाया है। इसके चक्र का व्यास ३० इच है। यह चक्र कातनेवाले के सामने उसी की ओर घूमता है। इस चक्र के ऊपर दोनो तकुए खडे घूमते है। इसका पैडल सीने के सिगर मशीन के पैडल की तरह है। चक्र के एक फेरे मे तकुए के फेरे करीब-करीब १२५ होते है। काता गया सूत भरने के लिए चक्र की ही धुरी पर दो परीते बैठाये गये है। कातनेवाला अपने स्थान पर बैठा हुआ पैडल के जरिए दोनो परीतो पर एक साथ परेत सके ऐसी व्यवस्था भी इसमे की गई है। यह इसमे एक विशेष गुण है।

३ तीसरे चरखे का प्रादुर्भाव नालवाडी मे हुआ। इस चरखे की योजना पेटी-चरखा (यरवदा-चक्र) मे ही की गई है। इसमे मृतविन्दु (Dead Point) तो नही है, लेकिन वह पैर से गोल घुमाना पडता है इसमे यही कुछ कठिनाई है। दोनो तकुओ से सूत एक साथ परेतने की भी व्यवस्था इसमे नही है।

इन तीनो चरखो पर फीघटा १ गुण्डी से अधिक गति आई है।

रामगढ काग्रेस के अवसर पर मगन चरखे की सूत-स्पर्धा मे निम्न-प्रकार की गति रही थी—

अनुरूप नहीं है। मगन चरखे की योजना ही तब की गई जब स्वयं लपेटने वाले तकुवे की असफलता अन्वेषक की दृष्टि में आई।"

१ अहमदाबाद साइकिल पैडल चरखा घटे ४, तार ७०१, कस ६५% न० १६½

२ मूल सिंगर पैडल चरखा घटे ४, तार ३५९२, कस ४५%, न० २३½। इसका मतलब यह है कि इसकी गति फी घटा ९००गजो के आसपास पहुच गई है। स्पर्धा मे नालवाडी का चरखा नही था।

ग्राम-चक्र

यह भी श्री प्रभुदास गाधी ने ही बनाया था। यरवदा-चक्र मे स्प्रिग आदि की योजना होने के कारण उसे शहरी ही बना सकते है, ग्रामीण सुतारो के औजारो मे उसका बन सकना सभव नही। ऐसी स्थिति में श्री प्रभुदास गाधी ने यरवदा-चक्र के तत्त्व कायम रखते हुए एक ऐसा ही चरखा बनाया है। इस चरखे मे एक बडा पहिया और दूसरा गतिचक्र इस तरह दो पहियो का उपयोग किया गया है। सावली के चरखे और यरवदा-चक्र दोनो मे ही गतिचक्र लगाया जाता है, लेकिन वहा वह एक ही आडी लाइन मे रखे जाते है। इन दोनो चरखो मे गतिचक्र और तकुए के बीच का अन्तर बहुत कम होने के कारण माल की पकड अच्छी नही रहती।

उपरोक्त दोष दूर करने के लिए ग्राम-चक्र का गतिचक्र मूल बडे पहिये के पास आडा न रखकर उसके सिरे पर रखा गया है। इस व्यवस्था के कारण मूल पहिये से गतिचक्र की धुरी या लाट का अन्तर भी बढ गया है इस अन्तर के बढने से धुरी या व्यास एक इच के बजाय दो इच का कर दिया गया है और यह व्यास लोहे के बजाय लकडी का बनाया गया है। इसके सिवा गतिचक्र मे बास की पखुडिया काम मे ली गई है, इसलिए वह मोटा हो गया है।

इस चरखे का उठाव तीन पायो पर किया गया है, अत इसके लिए यरवदा-चक्र की तरह सपाट जमीन की आवश्यकता नही होती। नीचे की जमीन कितनी ही ऊबड-खाबड होने पर भी वह चरखा हिलता अथवा डगमगाता नही है। इसके स्तम्भो के हिलने और ढीले होने का कोई प्रश्न पैदा ही नही होता। इस चरखे पर कातने बैठने के लिए चारपाई की जरूरत

होती है। चारपाई पर बैठकर पैर सिकोडने की जरूरत नही होती, पैर फैलाये हुए भी आसानी से काता जा सकता है। तीन पाये लगने पर भी पहले के दूसरे चरखो की अपेक्षा इसमे लकडी अधिक नही लगती। और यह इतना सरल है कि ग्रामीण सुतार भी इसे आसानी से बना सकते है।

एक लाख रुपये के इनाम के लिए बने हुए चरखे

सन् १९२९ मे अखिल भारतीय चरखा-सघ ने यह घोषणा की थी कि जो व्यक्ति ऐसा चरखा तैयार करेगा, जिससे (१) एक घण्टे मे २,००० गज अच्छा मजबूत, बलदार और एक-सा सूत कत सके, (२) जो गावो मे दुरुस्त हो सके और (३) जिसकी कीमत १५० रु० से अधिक न हो, उसे एक लाख रुपया इनाम दिया जायगा। इस इनाम के लिए (१) नासिक के श्री क्षारसागर, (२) किर्लोसकरवाडी के श्री काले और (३) बगलौर के श्री राजगोपालन् इत्यादि ने प्रयत्न किये, लेकिन चरखा-सघ की सूचनानुसार अभी तक एक भी चरखा पूरी कसौटी पर नही उतरा है।

(१) श्री क्षीरसागर के चरखे मे एक दम चार तकुओ से सूत निकलने की व्यवस्था थो; लेकिन उनसे निकला हुआ सूत मोटा होता था। इसके सिवा उसकी बनावट बडी पेचीदा थी। वह गावो मे दुरुस्त नही हो सकता था।

(२) श्री काले के चरखे पर आठ तकुओ की व्यवस्था है, इससे दूसरे चरखो की अपेक्षा सूत अधिक निकलता था, लेकिन इसकी भी बनावट पेचीदा होने से गाववालो के लिए तो उस पर कात सकना बड़ा मुश्किल था। गावो मे दुरुस्त होने जैसा तो वह था ही नही। इस चरखे की एक विशेषता यह है कि इसमे धुनाई का यन्त्र साथ ही लगा हुआ है, जिससे रुई अच्छी धुनी जाती है और सूत एक समान निकलता है। सिर्फ पूनी हाथ से बनानी पडती है।

(३) श्री राजगोपालन् के चरखे मे एक ही तकुआ है, यह सादा है और सुविधाजनक है और घण्टे मे सिर्फ १,००० गज ही सूत दे सकता है। उस पर ग्रामीण लोगो से १००० गज भी कत सकेगा या नही, इसमे सन्देह है।

इन तीनो चरखो मे कातने के साथ ही सूत के अटेरने की व्यवस्था है।

तकली

जिस तरह हरेक प्रात के चरखे का आकार-प्रकार जुदा-जुदा है, उसी तरह हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न प्रातो मे भिन्न-भिन्न तरह की तकलियो का प्रचार है। ठीकरी, ढब्बू पैसा, लकडी और पीतल आदि की वर्तुलाकार—गोल—चकई पर बास, लकडी, लोहा, फौलाद और पीतल आदि की सलाई लगी हुई तकलिया बहुतो के देखने मे आई होगी। जिस तरह भिन्न-भिन्न प्रान्तो की तकलियो की चकई और सलाइयो मे अन्तर है, उसी तरह उनके सिरो मे भी काफी भिन्नता दिखाई देती है।

लेकिन बारडोली मे जब सरजाम कार्यालय चलता था तब उसकी ओरसे एक समान माप की तकली तैयार की गई थी जिसकी चकई पीतल की और सलाई लोहे की थी। आज देश भर मे यही तकली सर्वोत्तम मानी गई है। इन सबका श्रेय श्री लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम को ही है।

सूत कातने के लिए चरखे की तरह तकली का भी असहयोग आदोलन के बाद से ही नये सिरे से उपक्रम हुआ। सन् १९३० तक कुछ खास-खास आदमी ही तकली पर कातते थे। उस वर्ष सत्याग्रह-आदोलन आरम्भ होने पर जगह-जगह पर यह जोरदार प्रचार हुआ कि 'अगर तुम्हारे लिए जेल जा सकना सम्भव न हो तो, कम-से-कम, सूत ही कातो, खादी पहनो और विदेशी कपडे का बहिष्कार करो।' इससे प्रत्येक समझदार व्यक्ति ही नही, बल्कि १०-१२ वर्ष के बालक तकली पर सूत कातने लगे। जिन्होने उस समय देश भर मे घर-घर तकली फिरते हुए देखी है, उन्होने उस दृश्य को अत्यन्त कौतूहलवर्द्धक और नयनमनोहर बतलाया है।

इस प्रकार उस समय लाखो तकलियो की खपत हुई। उसके इतना लोकप्रिय होने के कारण उसकी कार्यक्षमता की जाच के लिए उस पर तरह-तरह के प्रयोग शुरू हुए। इसमे विशेषत. वर्धा के सत्याग्रह-आश्रम ने विशेष परिश्रम करके तकली की गति मे क्रान्ति उत्पन्न करदी है और कातने

की पद्धति मे विलक्षण सुधार किये है । इस पद्धति मे नीचे लिखी तीन विशेषताये है—

(१) जाघ या पिडली पर झटका देने से एक हाथ से खूब वेग दिया जा सकता है और इससे एक ही बार मे लम्बा धागा निकल सकता है।

(२) तकली को जमीन पर टिका कर एक झटके मे चक्कर दिया जा सकता है।

(३) उपरोक्त पद्धति से सिर्फ दाहिने ही नही, बल्कि बाये हाथ से भी काता जा सकता है।

इस प्रकार तकली पर आधे घण्टे मे ७ नम्बर के २३३ तार अथवा ३० नम्बर के १६० तार बिना सूत अटेरते हुए निकाले गये है । यह गति 'असाधारण' समझनी चाहिए । आधे घण्टे मे १२ नम्बर के १४० तार सूत कातना 'मध्यम' दर्जे की और १४ से १६ नम्बर तक के १६० तार कातना 'उत्तम' दर्जे की कताई मानी जाती है।

'असाधारण' अथवा 'उत्तम' गति छोडकर साधारण मनुष्य की मध्यम गति का विचार करने पर भी आधे घण्टे में १२ नम्बर के १०० तार अर्थात् एक घण्टे मे २०० तार हुए । यह गति इतनी है कि चरखे के बजाय तकली को सार्वत्रिक बनाना सम्भव होगया है । वर्धा के सत्याग्रह-आश्रम ने अपने प्रयोगो द्वारा तकली की गति मे जो इतनी वृद्धि और दाहिने-बाये हाथ से कातने की जो सुविधा की है, वह अत्यन्त उपकारक सिद्ध हुई है, क्योकि तकली की इस प्रगति के कारण ही वर्धा-शिक्षा-योजना मे उसे महत्त्व का स्थान प्राप्त हुआ है।

वर्धा-शिक्षा-योजना मे 'तकली' को सात वर्ष के छोटे बालक के चला सकने योग्य औजार माना गया है । यह औजार ऐसा है कि (१) उसके लिए कोई पूजी खर्च नही करनी पडती, (२) वह जगह नही घेरता और (३) उत्पादक काम दे सकता है । इन तीनो गुणो से युक्त और कोई उपयुक्त औजार उपलब्ध न होने के कारण तकली का बडा महत्त्व है । यह

बात खास तौर पर ध्यान मे रखने योग्य है कि सारे हिन्दुस्तान-भर मे वर्धा-शिक्षा-योजना को अमल मे लाने के लिए अगर अधिक अनुकूलता है, तो वह तकली के इन विशेष गुणो के ही कारण है।

तकली पर इन प्रयोगो के होने के पहले आम तौर पर लोगो की यह धारणा थी कि उसपर सूत कातना एक तरह बच्चो का खेल है। ऐसा प्रतीत नही होता था कि उसपर कातने से कोई विशेष सूत निकल सकेगा। लेकिन ऊपर तकली के जिन प्रयोगो का उल्लेख किया गया है, उनके कारण लोगो की वह धारणा गलत सिद्ध हुई है। तकली पर सूत कातने की गति कितनी बढ गई है, यह हम ऊपर देख ही चुके है। इस गति के बढाने मे प्रयत्न करने पर किसी भी व्यक्ति के लिए उतनी कला साध्य कर सकना सर्वथा सम्भव है। कई लोगो का अनुभव है कि इस गति से उस तकली पर प्रतिदिन नियमित रूप से आध घण्टा सूत कातने पर उससे कातने वाले की अपनी वस्त्रो की आवश्यकता पूरी हो सकती है। इस अनुभव पर से श्री विनोबाजी ने उसका नाम 'वस्त्र-पूर्णा' रखा है।

चरखे और तकली मे यह अन्तर है कि तकली पर निरन्तर आठ घटे रोज कातना कदाचित कष्टदायक होगा, इसलिए आठ घण्टा रोज कातने की दृष्टि से चरखा ही उत्तम साधन है। लेकिन जिन्हे घण्टा डेढ घण्टा ही कातना हो उनके लिए तकली भी उतनी ही उपयुक्त सिद्ध हुई है। यह ठीक है कि यात्रा की दृष्टि से यरवदा-चक्र, घडी-चक्र उपयुक्त है, लेकिन तकली इनसे भी अधिक हलकी होने के कारण सफर ही क्या हमेशा जेब तक मे रखकर ले जाने का उससे बढकर और साधन नही है। इसके सिवा चरखे के लिए आठ-नौ रुपये कीमत देनी पडती है, लेकिन तकली घर पर ही बिना किसी खास खर्च के तैयार की जा सकती है और अगर कुछ खर्च पडा भी तो तीन आने से अधिक नही पडता।

अखिल-भारतीय चरखा-संघ के ध्यान मे यह बात जम गई है कि खादी की प्रगति करना हो तो उसके उपकरणो मे उन्नति करनी ही चाहिए,

इसलिए उसने सेवाग्राम के अपने केन्द्रीय दफ्तर के साथ एक प्रयोग विभाग खोलकर उसमे कुछ अनुभवी कार्यकर्त्ता नियुक्त किये है। इन्हे मौजूदा व्यवहार मे आनेवाले उपकरणो की कार्यक्षमता की परीक्षा कर उनमे क्या-क्या सुधार करने आवश्यक है, यह सूचित करने का काम सौंपा गया है। प्रान्तीय शाखाये तक इस दृष्टि से प्रयोग करती है।

: २० :

कार्यकर्त्ताओं को अनुभवजन्य सूचनायें

आज सारे हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न प्रान्तो में सैकड़ों नवयुवक गावो मे आसन जमाकर लोकसेवा की दृष्टि से खादी का काम कर रहे है। इस बात मे तिलभर भी सन्देह नही है कि इन नवयुवको का उत्साह और सेवा की लगन अभिनन्दनीय है। किन्तु केवल उत्साह और लगन से ही काम पूरा नही हो जाता, उसके लिए और भी कई बातो के सहयोग की आवश्यकता होती है। इसलिए इस अध्याय मे उनके लिए कुछ अनुभवजन्य सूचनाये दी जा रही है।

कई बार ऐसा होता है कि कार्यकर्त्ता उत्साह के आवेग मे चाहे किसी एक गाव मे जा बैठता है और उसके मन मे कार्य की जो भव्य कल्पना होती है, उसके अनुसार एकदम काम शुरू कर देता है, और उसके लिए पाच-सात सौ रुपये खर्च भी कर डालता है। लेकिन एक-दो वर्ष बाद जब उसे प्रत्यक्ष फल कुछ भी दिखाई नही देता, तब उसे पश्चात्ताप होता है और मन मे ऐसा होने लगता है कि 'मैने ऐसा न किया होता तो अच्छा था।' ऐसे पश्चात्ताप का अवसर न आवे इसी दृष्टि से नीचे लिखी सूचनायें दी जाती है।

खादी-कार्यकर्त्ता को खादी-उत्पत्ति के लिए अपना कार्यक्षेत्र चुनते समय निम्नलिखित बाते ध्यान मे रखनी चाहिए—

(१) वहा किसानो को सहायक धन्धे की आवश्यकता प्रतीत होनी चाहिए।

(२) कातनेवालो के हाथो मे कला-कुशलता होनी चाहिए, अथवा कम-से-कम कला की शिक्षा दी जाने पर उसके ग्रहण करने की जिज्ञासा, आतुरता और तत्परता होनी चाहिए।

(३) आस-पास हाथ-कता सूत बुननेवाले जुलाहे होने चाहिए।

(४) आस-पास यातायात—आमद-रफ्त—के साधन, सडको आदि की सुविधा होनी चाहिए।

(५) आस-पास मिले वगैरा न हो, और

(६) वह क्षेत्र स्वावलम्बी हो सकने-जितना बडा होना चाहिए। अर्थात् कार्यकर्त्ता पर होने वाला खर्च उस खादी मे से निकलना चाहिए। क्षेत्र के आसपास के २-३ गावो मे ही कम-से-कम २५० चरखे चालू होने चाहिए। ये चरखे हमेशा जारी रहने चाहिए अर्थात् प्रत्येक चरखे पर महीने मे कम-से-कम एक से लेकर १२ अक तक का सूत कातना चाहिए।

प्रत्येक क्षेत्र मे इतनी प्राथमिक बाते अवश्य ही होनी चाहिए, इनके सिवा नीचे लिखे अनुसार परिस्थिति अनुकूल हो तो कार्य और भी सुगम होगा—

(१) उस भाग मे कपास पैदा होती हो,

(२) चरखा चलाने की प्रथा हो,

(३) चरखे, धुनकी आदि बनाने के लिए आवश्यक लकडी और उनके बनाने वाले सुनार, लुहार आदि कारीगर वहा मिलते हो, और

(४) खादी की धुलाई आदि की सुविधा हो।

जिस क्षेत्र मे ये सब बाते होगी, वहा कार्य के उत्तम होने के विषय मे किसी तरह की आशका नही है। इनमे से जिन-जिन बातो की कमी होगी, उसी हिसाब से फल भी कम होगा। कार्यकर्त्ता को ये सब बाते मार्ग-दर्शक के रूप मे समझनी चाहिए। उसे बारीकी के साथ अपना क्षेत्र तलाश करना चाहिए और सारी परिस्थिति का विचार कर आगा-पीछा देखकर क्षेत्र चुनना चाहिए।

पहले क्षेत्र का चुनाव करने के बाद कार्यकर्त्ता को नीचे लिखी सूचनाओ पर अमल करने की कोशिश करनी चाहिए।

उसे खादी की विभिन्न क्रियाओ मे पटु होना चाहिए। भिन्न-भिन्न क्रियाओ का कामचलाऊ अथवा टटपूजिया ज्ञान उपयोगी न होगा। अगर वह

इन विषयो मे कुशल न हुआ तो पग-पग पर उसका काम रुक जायगा। गाव मे किसी के लोढन, किसी की धुनकी और किसी के चरखे मे कोई टूट-फूट अथवा कुछ गडबड हुई तो लोग उन उपकरणो को लेकर दुरुस्ती के लिए कार्यकर्त्ता के पास पहुचते है। उस समय कार्यकर्ता को उन्हे बारीकी से देख कर स्वय ही दुरुस्त कर देना चाहिए। इसके लिए सुतारी मे प्राथमिक औजारो के उपयोग की प्रत्यक्ष जानकारी होनी चाहिए। अगर टूट-फूट अधिक हो गई तो सुतार को बुलाकर उसे सब बाते समझा कर उससे दुरुस्त करवा लेनी चाहिए। अवश्य ही सुधराई की जो कुछ भी मजदूरी हो, वह मालिक से ही दिलवा देनी चाहिए।

उपकरणो के उपयोग और उनकी जानकारी के सम्बन्ध मे कार्यकर्त्ता का बहुत सतर्क रहना चाहिए। जिस प्रकार होशियार वकील को हाईकोर्ट के ताजे-से-ताजे फैसलो की, अथवा कुशल डाक्टर के लिए भिन्न-भिन्न रोगो पर होने वाले आपरेशन अथवा औषधोपचार की नई-से-नई जानकारी होना आवश्यक है, उसी तरह इस कार्यकर्त्ता को खादी के भिन्न-भिन्न उपकरणो मे होते रहने वाले भिन्न-भिन्न परिवर्त्तनो और सुधारो की जानकारी हासिल करने के लिए तैयार रहना चाहिए। इतना ही नही स्वयं भी उस दिशा मे प्रयोग करक तत्सम्बन्धी अपने ज्ञान मे वृद्धि करनी चाहिए। राष्ट्र के सच्चे अर्थशास्त्र की दृष्टि से खादी चिरकाल तक टिकने वाली है, यह तत्त्व उसके हृदय मे पैठा होना चाहिए।

कार्यकर्त्ता को अपने काम की शुरुआत 'पहले बुर्ज पीछे खम्भे' की तरह नही करनी चाहिए। बहुत बार ऐसा होता है कि गावो मे खादी के कार्य का श्रीगणेश चरखे से होता है, फिर धुनकी आती है और बाद को लोढन। यह क्रम सही नही है। खादी-कार्य का आरम्भ मूल पाये पर से होनी चाहिए। खेत मे कपास के पककर तैयार होते ही उसमे से अच्छे-से-अच्छे पौधे चुन लेने चाहिए और किसान को यह सावधानी रखना चाहिए कि इन पौधो पर से कपास उतारते समय उसमे किसी तरह का कूडा-करकट, पत्ती अथवा दीमक न लगने पावे। वर्ष-भर मे अपने

परिवार के छोटे-बडे सब स्त्री-पुरुषो के कपडो के लिए कितनी रुई की आवश्यकता होगी, आरम्भ मे ही इसका हिसाब लगा कर, उसके अनुसार उसमे से अपने उपयोग के लिए सुरक्षित रख ली जाय। यह ठीक है कि इसके लिए कुछ समय अधिक लगेगा और परिश्रम भी कुछ अधिक करना पडेगा, किन्तु दूर-दृष्टि से सोचनेपर किसान को इस समझ और परिश्रम का फल मिले बिना रहेगा नही। क्योकि इस कपास को लोढने पर लोढने के बाद जो बिनौले निकलेगे, उनके नाके साबित रहने के कारण बीज के लिए उनका उपयोग होने पर अगले साल कपास की फसल भरपूर और अच्छी होगी। इस तरह कपास से बिनौले अलग करने के बाद रुई को शास्त्रीय-पद्धति से किस तरह पीजा जाय, इसकी पूनिया किस तरह बनाई जाय, उन्हे काता किस तरह जाय उस सूत को अटेरन पर किस तरह उतारा जाय और उसकी लच्छी किस तरह बनाई जाय आदि सब बातें क्रमानुसार करने के लिए कहा जाय। किसान को यह सब बाते प्रयोग करके समझा देनी चाहिए कि अगर कपास चुनने के समय से ही उपरोक्त प्रकार से सावधानी रखी जाय, तो उमसे लोढने, पीजने, कातने और बुनने की सब क्रियाये किस तरह सुलभ हो जाती है। इसी तरह उसे यह बता देना चाहिए कि अगर हमने कपास चुनने के सम्बध मे सावधानी नही रखी तो आगे की सब क्रियाओ मे किस तरह कष्ट होता है। इस प्रकार दोनो की तुलना से उसके ध्यान मे इस बात का महत्त्व अच्छी तरह आ जायगा। सक्षेप मे यो कहना चाहिए कि खादी का कार्य शुरू करना हो तो वह कातने से शुरू न करके आरभ मे कपास चुनने से शुरू करना चाहिए, बाद मे लोढने का उपयोग सिखाया जाय। देखने मे यह बात बहुत छोटी अथवा तुच्छ-सी मालूम होती है, लेकिन है यह अत्यन्त महत्वपूर्ण। वास्तव मे यही नीव है। इसके मजबूत होन पर ही इस पर खादी-कार्य की टिकाऊ इमारत खडी रहेगी, यह बात कार्यकर्त्ता को और इस कार्य के प्रत्यक्ष करने वाले किसान को भी ध्यान मे रखनी चाहिए।

कार्यकर्त्ता को यह समझ कर कि खादी जीव-दया का कार्य है, पैसे

और अन्य व्यवहार के सबध मे गाफिल नही रहना चाहिए। उसे हिसाब और जमा-खर्च की तो अच्छी जानकारी होनी ही चाहिए, उसके साथ ही उसे उसके अनुसार अपने आर्थिक लेन-देन का प्रतिदिन मेल मिला लेना चाहिए। अगर वह इस बारे मे बेपरवाह रहा तो लोग उसकी बेपरवाही का लाभ उठा कर उसे छलने का प्रयत्न किये बिना न रहेगे, पैसे और बुद्धि मे और शहरी लोगो की तरह नीति मे भी दरिद्री होने के कारण, यह जानते हुए भी कि इस कार्यकर्त्ता के द्वारा अपने गाव के लोगो को चरखा और खादी का उद्योग मिल कर उसके जरिये दो पैसे मिले है वे उसे छले बिना नही रहते। ऐसी स्थिति मे कार्यकर्त्ता को हिसाब-वृत्ति और व्यापारिक तन्त्र समझकर ही अपना सब कार-बार चलाना चाहिए। उसे यह सावधानी रखनी चाहिए कि न तो स्वय दूसरो को छले और न खुद दूसरो से छला जाय।

कार्यकर्त्ता को जीव-दया से प्रेरित होकर किसी को भी खादी कार्य के लिए आवश्यक वस्तु मुफ्त मे नही देना चाहिए। उदाहरणार्थ, कोई जान-पहचानवाला व्यक्ति आपके पास आकर खुशामद अथवा गिडगिडाहट कर आपके पास का चरखा, धुनकी अथवा लोढन मुफ्त मे व्यवहार करने को कहे तो उसकी खुशामद का शिकार होकर उसे कोई भी चीज मुफ्त मे दे नही देना चाहिए। यह समझ रखना चाहिए कि कोई भी वस्तु मुफ्त में लेजानेवाला यह समझ कर कि उसमे अपने पैसे तो लगे नही, उसका मन-चाहा उपयोग करेगा, 'अगर टूट गई तो खादी-कार्यालय की टूटेगी' यह मान-कर बेपरवाही से उसे काम मे लावेगा अथवा घर लेजाकर उसे यो ही पटक देगा। ऐसे कई उदाहरण सामने आये है कि ऐसे लोग इस तरह ले जाई गई वस्तु का कुछ भी उपयोग न कर उसे बेकार पटक रखते है। इसके विपरीत अगर वह वस्तु दाम लेकर अथवा किराये से दी जाय तो ले जाने वाला यह समझ कर कि 'मुझे इसके इतने पैसे देने पडे है अथवा इतना किराया देना पडेगा, अत्यन्त सावधानीपूर्वक उसे काम मे लावेगा।

इस प्रकार कार्यकर्त्ता को अपने सब व्यवहार म हिसाबी दक्ष और

व्यवहार-कुशल रहना चाहिए। शारीरिक, मानसिक अथवा आर्थिक किसी भी विषय मे लापरवाही नही रखनी चाहिए।

जिस तरह कार्यकर्त्ता को इतना व्यवहार-कुशल होना चाहिए, उसी तरह उसका चरित्र भी अत्यन्त शुद्ध रहना चाहिए। चरित्र की शुद्धता पर ही उसके सारे कार्य का दारोमदार है। उसका चरित्र शुद्ध होने पर ही लोग उसे आदर की दृष्टि से देखेगे और उसके कथन की कद्र करेगे। उसे बाहर और भीतर एक समान शुद्ध रहना चाहिए। अगर उसके हाथो कोई नैतिक दोष हो जाय तो उसका सार्वजनिक जीवन चौपट हुआ ही समझना चाहिए।

कार्यकर्त्ता का खादी का काम करते हुए लोगो को 'खादी व्यवहार मे लाओ, चरखा चलाओ' का केवल जबानी उपदेश देना कुछ उपयोगी नही है। बल्कि उसे स्वय नियमित रूप से चरखे पर कात कर लोगो के सामने सक्रिय उदाहरण पेश करना चाहिए और खादी के पीछे छिपा रहस्य समझाना चाहिए।

जैसा कि 'खादी और ग्रामोद्योग' शीर्षक अध्याय मे बताया जा चुका है, खादी का अर्थ शुद्ध स्वदेशी, शुद्ध स्वावलम्बन, खादी का मतलब है उद्योग, अपने फुरसत के समय का सदुपयोग, उसका अर्थ है भूखे लोगो को काम देकर उन्हे खाने के लिए दो रोटी देना,—बेकारी नष्ट करना, उसका मतलब है सादा रहन-सहन और उच्च विचार। ये सब बाते किसानो के मन पर अच्छी तरह बिठा देनी चाहिए। लोगो की वृत्ति और आचरण मे इसके अनुसार परिवर्त्तन होने पर ही खादी-कार्य की सफलता और यशस्विता समझी जानी चाहिए। इस उद्देश्य को पूरा न कर केवल बाहरी दृष्टि से चरखे की सख्या खूब बढा देने और प्रचुर परिमाण मे खादी तैयार करने से जनता के आन्तरिक सुधार का जो महत्त्व है, वह नही सधेगा।

कार्यकर्त्ता को गाव मे रहते हुए केवल खादी के कार्य पर ही ध्यान देकर सतोष नही मान लेना चाहिए। उसे अपनी दृष्टि को जरा व्यापक

बनाना चाहिए और खादी-कार्य के साथ-साथ नीचे लिखे अनुसार सेवा करने का प्रयत्न करना चाहिए ।

(१) ग्रामविषयक—गाव मे जनता द्वारा निर्वाचित ग्राम पचायत स्थापित की जाय । गाव मे होने वाले दावानी और फौजदारी के सब मामले इस पचायत द्वारा गाव-के-गाव मे ही निपटा लिये जाय। गाव मे दो दल हो तो कार्यकर्ता को अपना व्यवहार दलगत भेद-भाव से अलग रखना चाहिए, वह किसी भी एक दल में शामिल न होकर, अपना व्यवहार निष्पक्ष रखे ।

(२) आर्थिक—गाव की आर्थिक स्थिति की देख-रेख रखे । लोगो को जमा-खर्च रखना सिखावे । ग्रामोद्योग शुरू करे । लोगो को गोरक्षा का महत्त्व समझावे ।

(३) आरोग्य-विषयक—लोगो को अपने खान-पान मे ऐसी नियमितता रखना सिखावे कि जिससे उन्हे बीमारी होने का कोई कारण ही न रहे । स्त्रियो के लिए बन्द जगह मे और पुरुषो के लिए उनसे अलग चलने-फिरते किसानी सण्डास—पाखाने—बनाने को कहे । खाद के लिए खड्डे खोदने और सोन-खाद का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहन दे। लोगो मे शराब न पीने का प्रचार करे, शरीर-सवर्धन के लिए अखाडे खोले। कुछ चुनी हुई दवाओ का औषधालय खोलने की व्यवस्था करे ।

(४) सामाजिक—मन्दिर, कुए आदि स्थानो पर हरिजनो का प्रवेश करावे । अन्यायमूलक सामाजिक रूढियो को मिटावे । हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए 'शान्ति दल' स्थापित करे ।

(५) राजनैतिक—काग्रेस की राजनीति का समर्थन करते हुए तत्त्व का प्रचार किया जाय । किसी भी व्यक्ति के बारे मे वाद-विवाद अथवा निन्दा-स्तुति मे न पडा जाय । खास-खास अखबार पढकर सुनाये जाय । राष्ट्रीय महत्त्व की चुनी-चुनी बाते बोर्ड पर लिखकर सार्वजनिक स्थानो पर रखी जावे । वाचनालय-पुस्तकालय खोले जाय ।

(६) धार्मिक—सन्त महात्माओ के उत्सव मनाये जाय । धर्म के सच्चे रहस्य समझाकर कहे जाय । बाहरी या ऊपरी आचार-विचार की

अपेक्षा आन्तरिक शुद्धि पर अधिक ध्यान देने को कहा जाय। तत्त्व-विहीन भजन-मण्डलिया तोड दी जाय।

(७) सार्वजनिक—गावो के लोगो मे स्वार्थ-वृत्ति बहुत फैली रहती है। उनके विचार से सार्वजनिक कार्य का मतलब किसीका भी काम नही है। उनकी यह वृत्ति घातक है। उनके हृदय मे दीर्घं पश्य मा ह्रस्वम्—क्षुद्र अथवा सकुचित नही वरन् सुदूर अथवा उदार-दृष्टि से देखने का तत्व बैठाने का प्रयत्न करना चाहिए। नई-नई सार्वजनिक सडके, कुए, तालाब और खेल-कूद के स्थान बनाने अथवा इस प्रकार के पुराने स्थानो की मरम्मत करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाय।

सारांश—कार्यकर्त्ता को सावधानी पूर्वक क्षेत्र चुन लेने के बाद—

(१) अपने खादी-कार्य के सम्बन्ध मे विशेषज्ञ और अन्वेषक होना चाहिए।

(२) खादी-कार्य की जड से—स्वच्छ कपास चुनने से आरभ करके क्रम-क्रम से अपनी इमारत खडी करनी चाहिए।

(३) अपने आर्थिक व्यवहार मे हिसाबी और चुस्त होना चाहिए,

(४) अपना चरित्र शुद्ध रखना चाहिए।

(५) लोगो को खादी का रहस्य समझा कर उसका प्रचार करना चाहिए, और—

(६) गाव के लोगो की तरह-तरह से, जितनी भी सम्भव हो सके, सेवा करनी चाहिए।

खादी की उत्पत्ति और बिक्री के सगठन मे सैकडो उच्च-आकाक्षी युवको के लिए अपनी बुद्धि, व्यवस्था-शक्ति, व्यापारिक चतुरता और शास्त्रीय ज्ञान का प्रदर्शित करने का व्यापक क्षेत्र खुला हुआ है। इस एक ही काम को सुचारु रीति से सम्पन्न कर दिखाने से राष्ट्र अपनी स्वराज्य-सचालन शक्ति सिद्ध करता है।

: २१ :

खादी का भविष्य

"यूरोप पर उन्माद छाया है। उत्साह-जैसी चीज कही भी दिखाई नही देती। · सामाजिक अस्थिरता, धार्मिक असहिष्णुता, बेकारी और नवयुवकों मे फैले हुए अस्वास्थ्य के कारण यूरोप की आपत्तिया बढती जा रही है। 'जिसकी लाठी उसकी भैस' और 'चोरी और सिरजोरी' अन्तर्राष्ट्रीय नियम बन गये है। ऐसे सघन अधकार में यूरोप को एशिया से ही प्रकाश मिलेगा और पूर्वीय सस्कृति ही ससार के दुखो का निवारण करनेवाली औषधि दे सकेगी।"[1]

सर टी० विजयराघवाचार्य

"जो तत्त्वज्ञान 'सेवा' और 'श्रम' के आधार पर अधिष्ठित है, वही अत तक टिक सकेगा। जिस तत्त्वज्ञान के पीछे दूसरो का भक्षण (अपहरण) करने की भावना लगी हुई है, वह नष्ट हो जायगा। मेरा तो यह निश्चय है कि 'हिसा की भित्ती पर खडी की गई सब इमारतें कच्ची है,और इस हिंसा का एक दिन चकनाचूर हुए बिना नही रहेगा।"

"दूसरे देशो में बाजार ढूढने और उन बाजारो पर अपना अधिकार कायम रखने के लिए हमे इग्लैण्ड, अमेरिका और रूस–जैसे देशो की सामुद्रिक और सैनिक शक्ति से टक्कर ले सकने जितनी सेना खड़ी करनी होगी, और उसी के बल पर हमें अपनी सब योजनायें कायम करनी होगी। नहीं, हमें यह नहीं पुसायगा। यह युग मनुष्यो को यन्त्र-मशीन बनाने के लिए हाथ धोकर पीछे पड़ा है। मै यन्त्रशीनम— बने हुए व्यक्तियो को मनुष्य बनाना चाहता हू।"[2]

—महात्मा गाधी

१. १६ अगस्त १६३८ को शिमला में दिये हुए भाषण से।

२. छ. न. जोशीकृत 'आपणा आर्थिक प्रश्नो' पृ० २१६-२१७

यहांतक खादी के सम्बन्ध मे पैदा होनेवाले जुदा-जुदा विषयो का विवेचन किया गया। अब इस अध्याय मे हमेशा पूछे जानेवाले इस प्रश्न का कि 'खादी का भविष्य क्या होने वाला है ?' उत्तर देना है।

प्रश्न अत्यन्त महत्त्व का है और उसपर अन्यन्त गम्भीरतापूर्वक विचार करना आवश्यक है। इस प्रश्न के करनेवालो के मानसिक चक्षुओ के सामने पश्चिमीय देश और उनकी चमक-दमक हमेशा चमकती रहती है, अत उनका ऐसा प्रश्न करना अत्यन्त स्वाभाविक है। हम भी हिन्दुस्तान और उक्त देशो की स्थिति को ध्यान मे रखकर ही इस प्रश्न का उत्तर देगे अर्थात् इसका उतर देते समय हमे अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का विचार करना होगा।

आमतौर पर कहा जाता है कि आधिभौतिक दृष्टि से पश्चिमीय राष्ट्र बहुत उन्नत है। यह ठीक है कि भौतिक विज्ञान ने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर टेलीफोन, रेडियो, हवाई जहाज आदि अदभुत और चमत्कारिक वस्तुओ का निर्माण किया है और इसलिए इन वैज्ञानिको की शोधक-बुद्धि के लिए उनके प्रति हमारा सिर नम्रता से नीचे झुके और उन्हे धन्यवाद दिये बिना नही रहा जाता। लेकिन प्रश्न यह है कि क्या इन आविष्कारो से कुल मिलाकर मानव-जीवन सुखी हुआ है ? क्या लोगो मे सात्त्विक गुणो की अभिवृद्धि होकर जिधर देखो उधर ही वे सुख, आनन्द और शान्ति का उपभोग करते है, ऐसे दृश्य दिखाई देते है ?

पहले महायुद्ध मे भीषण मनुष्य-सहार हुआ। कितने ही मुल्क और भौतिक मिल्कियत धूल मे मिल गई। उसे बीते २४वर्ष भी नही हुए कि उससे भी भयानक दूसरे विश्वयुद्ध का आघात ससार के सिर पर आ गिरा। इस दूसरे विश्वयुद्ध की ज्वाला मे कही कुछ शाति होने को है। उसी वक्त तीसरे विश्वयुद्ध की बाते खुले आम लोगो मे बोली जा रही है। इस परिस्थिति पर गौर करने के बाद क्या यह कहना वाजिब होगा कि लडनेवाले ये देश सभ्य है ? एक इन्सान ने दूसरे इन्सान का माल उसकी इजाजत के बिना, जबरदस्ती से अगर लूटा तो उसे हम डकैत या चोर कहते है, उसी

तरह भौतिक हथियारो और शस्त्रो से अपने को तैयार रखने वाले ताकतवर देश कमजोर-छोटे पडोसी मुल्को पर बलात् धावा बाल कर उनको हडप करे, यह बात हमारी समझ मे निरी जगलीपन ही हो सकती है । इन शब्दो मे इस बीसवी सदी मे ऐसा नगा नाच चल रहा हो, उन्हे कौनसा विचारशील व्यक्ति सभ्य राष्ट्र कह सकेगा ?

यूरोप की इस स्थिति का बारीकी-से अध्ययन कर सर टी विजयराघवाचार्य ने जो उद्गार प्रकट किये थे, वे इस अध्ययन के आरम्भ मे दिये गये है । इन उद्गारो मे उन्होने यूरोपीय राष्ट्रो को जिस रोग ने जकड रक्खा है, उसका अचूक निदान किया है और औषधि कहा से मिलेगी, इस सम्बन्ध मे जो भविष्यवाणी की है, वह सर्वथा ठीक है । वह कहते है— "यूरोप के सघन अन्धकार मे उसे एशिया से प्रकाश मिलेगा और ससार के दु खो का निवारण करनेवाली औषधि पूर्वीय सस्कृति ही दे सकेगी ।" किसी भी दूरदर्शी मनुष्य के यह बात सहज ही ध्यान मे आ जायगी कि यह प्रकाश पूर्व अर्थात् हिन्दुस्तान के महात्मा गाधी की ओर से मिलेगा और वह औषधि होगी 'अहिंसा ।'

६ अपने नीच स्वार्थ साधने के लिए इन लोगो को करोडो रुपये की सम्पत्ति अथवा दूसरे देश के करोडो बेकारो के मुह मे न डालकर आग के मुह मे डालने मे जरा भी सकोच नही होता । इससे पाठक सहज ही अनुमान कर सकते है कि ये लोग कितने हृदयशून्य एव उलटी खोपडी के है । अमेरिका मे यह व्यवहार किस तरह चल रहा है, एक लेखक ने उसका चित्र खीचते हुए लिखा था

"अपने जीवन-कलह के नीच स्वार्थ की कोई सीमा बाकी नही रही । अमेरिका मे अनेको ऐसे करोडपति पडे हुए है जो यह नही जानते कि अपनी अपार सम्पत्ति का उपभोग किस तरह किया जाय, तिस पर भी वे लाखो बेकारो को अपनी नजरो के सामने भूख से तडपते देखते रहते है । एक तेरहसौ फुट ऊची इमारत मे ऊपर जाने के लिए ७५ लिफ्ट्स (बिजली के जोर से ऊपर चढनेवाले पालने) का उपयोग होता है और लोगो को

११५ वी मजिल पर पहुचाया जाता है, जबकि दूसरी तरफ बहुतसो को रहने के लिए झोपडी तक नही मिलती !

"कनसारा परगने मे मेरी आखो के सामने लाखो टन गेहू नष्ट हो गये और 'टेक्सस' परगने मे लाखो टन वजन की कपास की गाठे 'अग्नये स्वाहा' की गई। ऐसा करने का उद्देश्य यही था कि गेहू और कपास के भाव मे गडबड न हो और धनवान् लोग कम धनवान न हो । एक तरफ यह हो रहा था और दूसरी तरफ अनेक लोग फटे कपडे पहने फिरते दिखाई देते थे। केवल अमेरिका मे ही नही, बल्कि हिन्दुस्तान और चीन मे अनेक लोग बुभुक्षित और नग्नस्थिति मे फिरते थे । ऐसी दशा मे उसे सस्कृति कहा जाय अथवा कि जगलीपन ?"[१]

यह हृदय-विदारक वर्णन पढ कर किसी भी विवेकशील व्यक्ति के हृदय मे पाश्चात्य सस्कृति के प्रति चिढ और सात्त्विक सताप हुए बिना न रहेगा। पाश्चात्य राष्ट्र इतने उन्मत्त—आक्रमणशील—बन गये है, इसका कारण यह है कि इनके सामने कोई उच्च ध्येय ही नही है । कम-से-कम पूर्वीय सस्कृति इतनी नीच नही है कि करोडो लोगो को अपनी नजरो के सामने भूख से विह्वल और अर्द्धनग्न स्थिति मे देखते हुए भी उन्हे अन्न और वस्त्र न देकर इन वस्तुओ को अग्नि के समर्पित कर दिया जाता।

१० जिस समय ये राष्ट्र 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' की आध्यात्मिक अहिंसक दृष्टि रखकर शासनकार्य चलावेगे तभी उन्हे सच्ची शान्ति और सुख प्राप्त होगा। जबतक यह दृष्टि इन सब प्रमुख राष्ट्रो को हृदयगम नही होती और जबतक उनकी ओर से उसके अनुसार आचरण नही होता, तबतक यह निश्चित बात है कि वे कितने ही अद्भुत आविष्कार क्यो न करे, उनसे अखिल मानव-समुदाय का कल्याण हो ही नही सकता।

११ इन राष्ट्रो को अगर आगे जीवित रहना है तो उन्हे अहिंसा की उपासना करनी ही होगी। आधुनिक आधिभौतिक आविष्कारो ने यातायात के साधन खूब बढा दिये है और इससे राष्ट्र-राष्ट्र के बीच का अन्तर बहुत

१. कालेर हुयेर कृत "हमारा आर्थिक प्रश्न" पृष्ठ २२०

कम हो गया है । इससे स्थिति इतनी नाजुक होगई है कि एक राष्ट्र के दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण करने पर ससार के सब राष्ट्रो पर उसका असर हुए बिना नही रहता ।

अगर ये महायुद्ध टालने हो तो आज जो प्रबल राष्ट्र अपने लिए आवश्यक कच्चे माल के लिए दुर्बल राष्ट्रो पर अपने आक्रमण—हिंसा—करते है, वे आक्रमण—वह हिंसा—रुकने चाहिए। प्रबल राष्ट्रो को अपने मे ऐसी उदार अहिंसक-वृत्ति जाग्रत करनी चाहिए कि वे यह अनुभव करे कि दुर्बल राष्ट्रो को भी जीवित रहने का, अपने सद्गुणो का विकास कर सुख, सुविधा और शान्ति का उपभोग करने का स्वाभाविक अधिकार है। ऐसी वृत्ति उत्पन्न होने पर आज प्रबल राष्ट्रो को कच्चे माल के लिए जो दुर्बल राष्ट्रो पर अवलम्बित रहना पडता है, वह बन्द हो जायगा । यह निश्चय करना चाहिए कि कम-से-कम अपनी प्राथमिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए प्रत्येक राष्ट्र को स्वावलम्बी बनना चाहिए। क्योकि अगर हम स्वावलम्बी नही बने तो हमे दूसरे पर अवलम्बित रहना पडेगा, अर्थात् उन बातो मे दूसरे पर आक्रमण और हिंसा होगी ही। प्राथमिक आवश्यक-ताओ के सिवा बाकी दूसरी आवश्यकताओ मे जो राष्ट्र जो वस्तु उत्पन्न नही कर सका, वह उसे दूसरे राष्ट्र से अवश्य लेनी चाहिए। मतलब यह है कि अहिंसा को अपनाये बिना सुख और शाति का लाभ हमे प्राप्त नही हो सकेगा ।

इतने विस्तारपूर्वक विवेचन का कारण यह है कि आगे हम यह प्रतिपादन करना चाहते है कि खादी का भविष्य अहिंसा पर अवलम्बित है। क्योकि पीछे इस सम्बन्ध मे काफी विवेचन हो चुका है कि नीतिमूलक अर्थ-शास्त्र की दृष्टि से खादी स्थायी रहने वाली है । अब अगर हिन्दुस्तान मे अहिंसा टिकी—यदि हम अहिंसा के द्वारा स्वराज्य प्राप्त कर सके—तब खादी का भविष्य उज्ज्वल है, यह नि सशय है। और हिन्दुस्तान की राज-नीति मे अभीतक अहिंसा ने जो काम किया है उसे देखते हुए हमे इस बात मे जरा भी सन्देह नही कि हम अहिंसा के जरिये स्वराज्य अवश्य प्राप्त

करेगे। और अहिसा से स्वराज्य मिलने के बाद अहिंसा के मार्ग से ही हम अपनी अन्य समस्या भी हल करेगे। अहिंसा के इस मार्ग का ही अर्थ सच्चा खादी का मार्ग है। सक्षेप मे कहा जाय तो अहिसा की जो शक्ति है, वही खादी की शक्ति है, अहिंसा का भविष्य ही खादी का भविष्य है।

ससार मे सुख, शान्ति और समृद्धि प्रस्थापित करनी हो तो उसके लिए 'हिसा' नही, 'अहिसा' ही उपयोगी सिद्ध होगी। कुछ लोग यह कह सकते है कि ससार मे 'अहिसा' का प्रसार हो सकना असम्भव बात है, लेकिन महायुद्ध मे हुए भयकर मानव-सहार को देखकर जिन लोगो ने उसकी भीषणता को अनुभव किया है, वे यह मानने लगे है कि अहिसा का प्रचार किये बिना ससार के उद्धार का और कोई उपाय नही है। इसके सिवा हमारा भी विश्वास है कि इस विचार-सरणी का अब तेजी से प्रचार होगा।

हिन्दुस्तान-मजदूर-सेवा-सघ के मत्री तथा अहमदाबाद के मिल मजदूरो के नेता श्री गुलजारीलाल नन्दा ने मजदूर-सम्मेलन मे भाषण करते हुए निम्नलिखित मननीय उद्गार प्रकट किये थे—

"ससार के अनेक देशो मे हिसक साधनो द्वारा शान्ति और सुख प्राप्त करने के निष्फल प्रयास में जा मानव-सहार और सम्पत्ति का विनाश हुआ, उसके बजाय अगर उन देशो ने गाधीजी के सिद्धान्त और कार्य-पद्धति का अनुसरण कर कार्य किया होता तो आज यूरोप और दूसरी जगह जो गम्भीर स्थिति उत्पन्न होगई है, और भयकर परिमाण मे जो हानि हुई है, वह रोकी जा सकती थी। इतना ही नही, प्रत्युत ससार की अधिक प्रगति हुई होती और मानव-समाज का—सर्वसाधारण जनता का—कल्याण करना सम्भव होता। ससार मे जो उथल-पुथल होती है, उस पर आज अपना नियन्त्रण नही है। किन्तु यदि गाधीजी के सिद्धान्त और कार्य-पद्धति को अमल मे लाकर उसकी यथार्थता सिद्ध करने का अवसर हमे मिला तो हम केवल हिन्दुस्तान के ही प्रश्न को सफलतापूर्वक हल नही कर सकेगे, बल्कि

दूसरे राष्ट्रो और वहा की जनता का भी इस दिशा मे मार्ग-प्रदर्शन कर सकेगे।"

जिस समय ससार के प्रमुख राष्ट्रो को अहिसा की कार्यक्षमता का अनुभव होगा तब ही वे उसकी दीक्षा लेगे और फिर सचमुच 'विश्व-राष्ट्र-संघ' का निर्माण होगा। इस सघ मे प्रत्येक राष्ट्र उसकी एक इकाई के रूप मे सम्मिलित होगा। सारी सत्ता पहले विश्व-सघ मे केन्द्रीभूत होगी और फिर वह प्रत्येक राष्ट्र मे विभाजित की जायगी। प्रत्येक राष्ट्र की आन्तरिक, राजनैतिक, सामाजिक, औद्योगिक, आर्थिक और शैक्षणिक व्यवस्था उस राष्ट्र के केन्द्रीय सघ के पास ही रहेगी। यदि किन्ही दो राष्ट्रो मे कोई विवाद अथवा झगडा खडा हुआ तो उस अन्तर्राष्ट्रीय विवाद को फैसले के लिए विश्व सघ के पास भेजा जायगा, और उसका फैसला इन युयुक्त राष्ट्र को मानना पडेगा। जो राष्ट्र विश्व-सघ के अनुशासन मे नही रहेगा, विश्व-सघ उसका बहिष्कार करेगा और कोई भी राष्ट्र उसके साथ किसी तरह का सम्पर्क न रखे, यह आदेश जारी करेगा। ऐसा होने पर बहिष्कृत राष्ट्र विश्व-राष्ट्र-सघ से छिटक पडेगा।

ऊपर कहा जा चुका है कि प्रत्येक राष्ट्र की आन्तरिक व्यवस्था राष्ट्र के केन्द्रीय सघ के पास रहेगी। इस सघ मे शामिल होने वाले भिन्न-भिन्न प्रान्त इसकी इकाइया होगी। यदि इन प्रान्तो मे किसी एक-दूसरे प्रान्त मे आपस मे कोई झगडा हुआ तो वह राष्ट्र के इस केन्द्रीय सघ के पास भेजा जायगा और उसका फैसला इन दोनो झगडने वाले प्रान्तो को मानना होगा। राष्ट्र-सघ के आधार पर प्रान्तीय सघ, जिलासघ, ताल्लुकासघ, ग्रामसघ आदि भिन्न-भिन्न सघ स्थापित होगे और अन्तिम इकाई गाव होगे। विश्व-राष्ट्र-सघ की केन्द्रीभूत सत्ता के विभाजन की क्रिया को यदि निर्दोष रखना हो तो अपना एक समुदाय बना कर रहने वाले छोटे समाज तक अर्थात् गाव तक वह पहुचनी चाहिए।

नीचे दिये गये क्रम के अनुसार भिन्न-भिन्न इकाइयो की कल्पना स्पष्ट होगी—

विश्व-राष्ट्रसंघ
राष्ट्रसघ
प्रान्तसघ
जिलासघ
ताल्लुकासघ
ग्रामसघ
ग्राम

प्रत्येक गाव अपने आन्तरिक व्यवहारो मे पूर्णरूप से स्वतन्त्र होगा, अर्थात् ऊपर बताये गये राष्ट्र की तरह राजनैतिक, सामाजिक, औद्योगिक, आरोग्य और शैक्षणिक विषयो मे अपनी स्थानीय परिस्थिति के अनुसार सब समस्याओ का हल करेगा। इस प्रकार प्रत्यक गाव स्वय पूर्ण स्वायत्त और स्वावलम्बी होगा। केवल वस्त्र के ही सम्बन्ध मे कहना हो तो प्रत्येक गाव ही क्या प्रत्येक घर वस्त्र स्वावलम्बी होगा। उस समय हरेक घर मे चरखे चलते दिखाई देगे। किसी भी गाव मे एक इच-भर भी कपडा नही आयेगा। यह सब व्यवस्था अहिसक आर्थिक-विधान (Planned Economy) के द्वारा पूरी की जा सकेगी।

प्रत्येक गाव दूसरे गांव के साथ हिल मिल कर रहेगा। उनके आपस मे पूरा सहयोग रहेगा। इसी कल्पना को अगर सूत्ररूप मे व्यक्त करना हो तो यो कहा जा सकेगा कि "मानव्यनिष्ठ अन्योन्य सहकारी, स्वावलम्बी और स्वायत्त गावो का निर्माण ही अहिसा का राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक नीतिसूत्र है।"

प्रत्येक गाव अगर इस तरह अहिंसामय, स्वायत्त और स्वावलम्बी हो जाय तो खादी का भविष्य उज्ज्वल होने मे कोई सन्देह नही है। इस तरह अगर घर-घर और गाव-गाव चरखे चलने लगे तो सात लाख गावो का सगठन होने मे बहुत अधिक समय नही लगेगा। उस दिशा मे स्वराज्य तो दूर रहेगा ही नही, साथ ही घर-घर 'समृद्धि, सुख और शान्ति' का साम्राज्य फैला हुआ दिखाई देगा।

गाधीजी की उत्कट इच्छा है कि सत्य और अहिंसा के मार्ग से स्वराज्य प्राप्त करने के विषय मे हिंदुस्तान आगे बढे और ससार के सामने एक मिसाल पेश कर दे और इसीलिए इस दृष्टि से वे जी-तोड कोशिश कर रहे है। यदि हिन्दुस्तान ने इस विषय मे दाग बेल डाल दी तो फिर दूसरे देश भी उसका अनुकरण करेगे। आजकल जिस प्रकार 'सोशलिज्म' और 'कम्यूनिज्म' का प्रचार ससार के सब देशो मे होरहा है। उसी प्रकार अहिसक समाज की रचना करके ससार मे शान्ति किस प्रकार स्थापित की जाय इसका प्रचार भी सब देशो मे अपने-आप होने लगेगा।

८ अगस्त १९४२ को बम्बई काग्रेस महासमिति की सभा मे जो प्रस्ताव पास हुआ वह ससार के अहिसात्मक सगठन की दृष्टि से अत्यन्त महत्व का है और स्वर्ण अक्षरो मे लिखे जाने योग्य है। उसमे यह कहा गया है कि हिन्दुस्तान अहिंसात्मक साधनो से स्वतन्त्रता प्राप्त करेगा। स्वतन्त्रता मिलने पर हिन्दुस्तान शस्त्र छोड देगा। इसके बाद हिन्दुस्तान की तरह जो देश नि शस्त्रीकरण कर देगे, उनका एक सघ बनेगा। इस राष्ट्रसघ के निर्माण हो जाने पर कोई प्रबल राष्ट्र दूसरे निर्बल राष्ट्र पर आक्रमण करेगा तो यह राष्ट्रसघ अहिंसात्मक सत्याग्रह करके प्रबल राष्ट्र के आक्रमण से दुर्बल राष्ट्र को मुक्त करेगा, इस प्रकार ससार मे शान्ति स्थापित होगी।

इस प्रस्ताव की भाषा इस प्रकार है —

"भारत की आजादी विदेशी गुलामी मे पडे हुए तमाम एशियाई राष्ट्रो की आजादी का चिन्ह और पूर्व की भूमिका होगी। बर्मा, मलाया हिन्दचीन, डच इण्डीज, ईरान और इराक आदि देशो को भी उनकी मुकम्मिल आजादी मिलनी चाहिए। यह साफ समझ लिया जाना चाहिए कि इनमे से जो देश इस समय जापान के अधीन है, उन्हे बाद म किसी दूसरी औपनिवेशिक ताकत के शासन या नियत्रण मे नही रखा जायगा।

" अ० भा० काग्रेस कमेटी की राय है कि भावी शाति, सुरक्षा और ससार की व्यवस्थित तरक्की के लिए आजाद राष्ट्रो का विश्व सघ

कायम होना चाहिए । अन्य और किसी आधार पर आधुनिक दुनिया की समस्याओ को हल नही किया जा सकता । इस प्रकार का विश्वसघ उसके अगभूत राष्ट्रो की आजादी को सुरक्षित कर दगा, एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र के शोषण और आक्रमण को रोकेगा, राष्ट्रीय अल्प-सख्यको को सरक्षण देगा, पिछडे हुए इलाको और लोगो की तरक्की करेगा और सबके समान हित के लिए दुनिया के साधनो का सग्रह सभव बना देगा । इस प्रकार के विश्व सघ की स्थापना के बाद सब देशो मे नि शस्त्रीकरण सभव हो जायगा और विश्व-सघ की रक्षा-सेना विश्व-शाति की रक्षा करेगी और आक्रमण को राकेगी ।"

परिशिष्ट

: १ :

अमेरिका के स्वतन्त्रता-युद्ध में खादी का महत्त्व

पश्चिमी उन्नति की चकाचौध से चौधियाये हुए लोगो को खादी का आन्दोलन राष्ट्र को पीछे ढकेलनेवाला, बीसवी सदी के लोगो को सत्रहवी सदी मे ले जानेवाला, और मोटर मे बैठनेवाले लोगो को बैलगाडी मे बैठानेवाला आन्दोलन प्रतीत होता है,[१] लेकिन दूर-दृष्टि से विचार करने पर प्रतीत होगा कि वास्तव मे यह आन्दोलन सर्वथा बे सिरपैर का नही है, बल्कि उसके पीछे ऐतिहासिक आधार है।

इतिहास की पुनरावृत्ति होती है। यह स्पष्ट दिखाई देता है कि आज जो राष्ट्र आधिभौतिक उन्नति के उत्तुग शिखर पर चढे दिखाई देते है, उनमे के कुछ पश्चिमी राष्ट्रो को जब हिन्दुस्तान की-सी वर्त्तमान विशिष्ट परिस्थिति मे गुजरना पड़ा था, तब उन्होने भी हाथ के कते सूत और हाथ-करघे का अवलम्बन किया था। उनके इस आन्दोलन का इतिहास मनोरजक होने के साथ ही बोधप्रद है। महात्माजी के खादी के आदोलन पर उससे प्रकाश पडता है, अत यहा उसपर एक सरसरी नजर डाली जाती है।

इग्लैण्ड एक अत्यत स्वार्थी और साहसी व्यापारी राष्ट्र है। कई सदियो से उसकी यह व्यापारिक नीति चली आ रही है कि ससार के दूसरे राष्ट्र "यावच्चन्द्र दिवाकरौ" हमारी अन्न-वस्त्र की आवश्यकता-पूर्ति के लिए आवश्यक कच्चा माल पहुचाते रहे और केवल हम ही उस कच्चे माल का पक्का माल बनाकर देनेवाले कारखानेदार राष्ट्र रहे।

अपने कपडे के कारखाने जीवित रखने के लिए इग्लैण्ड ने हिन्दुस्तान के साथ जो व्यवहार रखा, ठीक उसी तरह का व्यवहार उसने अपने अमेरिकन उपनिवेश तक के साथ रक्खा।

१. 'यंग इण्डिया' भाग १, पृष्ठ ५०३

मि० जे० आर० मेक्कुवाक नामक एक अंग्रेज लेखक ने उन्नीसवी सदी के आरम्भ मे 'व्यापारिक कोष' नामक एक ग्रथ लिखा है। उसके पृष्ठ ३१९ पर उन्होने लिखा है—

"सन् १७७६ मे अमेरिका मे जो भयकर विद्रोह हुआ, उसका मुख्य कारण ब्रिटिश सरकार का उस उपनिवेश की व्यापारिक स्वतन्त्रता का अपहरण कर लेना था।"

"ब्रिटिश सरकार ने उन लोगो पर यह पाबदी लगाई कि उपनिवेश वासी अपना कच्चा माल सिर्फ ब्रिटिश बाजार मे ही बेचे और अपनी आवश्यकता का माल इग्लैण्ड के व्यापारियो और कारखानेदारो से ही खरीदे।[1] इसके लिए सन् १६६३ ई० मे इस आशय का कानून बनाया कि ब्रिटिश उपनिवेश मे इग्लैण्ड के सिवा यूरोप के किसी भी दूसरे राष्ट्र के खेतो मे पैदा हुआ और कारखाने मे तैयार हुआ माल न आने पावे। सिर्फ इग्लैण्ड, वेल्स, अथवा बरविक-अपॉन-ट्वाइन पर चढा हुआ माल ही उन उपनिवेशो मे जाने पावे और वह भी ऐसे जहाज पर लदा हुआ जो इग्लैण्ड मे ही तैयार हुआ हो और जिसका मालिक और कुल खलासियो का तीन-चौथाई खलासी अंग्रेज हो।"[2]

अपने उद्योग धन्धो को उत्तेजन देने का इग्लैण्ड का यह कैसा अट्टहास और अपने माल को दूसरो के सिर पर थोपने की कितनी जबरदस्ती है यह! उपनिवेश मे प्रवेश करने वाला सारा का सारा माल इग्लैण्ड का ही हो, और वह भी इग्लैण्ड मे तैयार हुए जहाज पर लदकर आना चाहिए और उस जहाज के मालिक और खलासी भी अंग्रेज ही होने चाहिएँ! अवश्य ही इग्लैण्ड का स्वदेशाभिमान कौतूहलपूर्ण और अनुकरणीय है, लेकिन साथ ही अपना माल दूसरे राष्ट्रो पर लादने की उसकी जबरदस्ती अत्यन्त निन्द्य और तिरस्करणीय है।

१. श्री जी० ए० नटेसन एण्ड कम्पनी, मद्रास द्वारा प्रकाशित 'Swadeshi Movement' नामक पुस्तक के पृष्ठ १४८ पर मि० फेल्स द्वारा उद्धृत।

२. पिछली बार का 'ओटावा पेक्ट' देखिए।

मेक्कुलाक साहब आगे कहते है—"उपनिवेशो के साथ व्यवहार करने की हमारी (अंग्रेजो की) इस नीति के उदाहरणो से इतिहास के पन्ने भरे हुए है । उपनिवेशो के साथ बर्ताव करने मे इस तत्त्व को इतने महत्त्व का माना जाता था कि लार्ड चोथेम-जैसे राजनीतिज्ञ भरी पार्लमेण्ट मे यह कहने से नही हिचकिचाये कि उत्तरी अमरिका के ब्रिटिश उपनिवेशवालो को एक कील अथवा घोडे की नाल तक तैयार करने का अधिकार नही है । जब कि कानून बनानेवाली पार्लमेण्ट के कानून इस तरह के हो और उपनिवेशो के मित्र कहलानेवाले पार्लमेण्ट के बडे-बडे अगुआओ के ऐसे निश्चयात्मक उद्गार हो, तब पहले लार्ड शेफील्ड ने अपने सार्वजनिक भाषण में जो उद्गार प्रकट किये, उन्हे सुनकर किसी प्रकार का आश्चर्य होने का कोई कारण नही है । उनके इन उद्गारो को उनके समकालीन व्यापारियो के ही उद्गार समझना चाहिए । उन्होने कहा था —"अमेरिकन उपनिवेश और वेस्ट इण्डिया बन्दर का मुख्य उपयोग यही है कि वे अपना कच्चा माल हमारे हाथो बेचे और खुद अपने लिए हमारे यहा का पक्का माल खरीदे ।"[१]

कितने स्पष्ट उद्गार है ये ?

इससे भी अधिक स्पष्ट और कठोर व्यवस्था लार्ड कार्नबरी की दी हुई है । उन्होने कहा था—

"इन उपनिवेशो को अपने को मुख्य वृक्ष (इग्लैण्ड) की शाखाये मानकर पूर्णतया इग्लैण्ड पर अवलम्बित रहकर उसी का पल्ला पकडकर रहना चाहिए" और "उपनिवेशवासियो की जो यह धारणा है कि हम रक्त-मास से अग्रेज है, इसलिए हमे भी इग्लैण्डवासियो की तरह अपने यहा कारखाने स्थापित करने चाहिए, उसे जरा भी उत्तेजन नही मिलने देना चाहिए ।"

उपनिवेश इग्लैण्ड की तरह ही अपने यहा कारखाने स्थापित क्यो न करे, इसके लिए जो कारण दिये गये है वे अत्यन्त मार्मिक है । लार्ड कॉर्नबरी आगे कहते है—

१. जी. ए. नटेसन कम्पनी, मद्रास द्वारा प्रकाशित "Swadeshi movement' नामक पुस्तक के पृष्ठ १४९ से उद्धृत ।

"अगर उनका उक्त धारणा को उत्तेजन मिला तो उसका परिणाम यह होगा कि जिन लोगो को इग्लैण्ड का पल्ला पकडकर रहना पसन्द नही है, अगर उन्होने एक बार इग्लैण्ड की मदद के बिना ही सुखकर और सुन्दर वस्त्र अपने आप तैयार करने की शुरूआत कर दी, तो उनके अन्त करण मे स्वतन्त्रता प्राप्त करने की जो इच्छा घर किये हुए है उसे जल्दी ही मूर्त्त रूप मिले बिना रह न सकेगा।"

इन उद्गारो से यह स्पष्ट है कि दूसरे राष्ट्रो को अपने ताबे मे रखने की सत्ता-लोलुपता इग्लैण्ड के रोम-रोम मे भरी हुई है '

इग्लैण्ड के जिन अमीर-उमरावो के हाथ मे इग्लैण्ड के व्यापार के सूत्र थे, उन्होने लार्ड कॉर्नबरी की इस इच्छा का अनुसरण कर उपनिवेशो के सन और ऊन के कारखानो को नष्ट कर देने का प्रयत्न किया।

सन् १६४१ मे ब्रिटिश पार्लमेण्ट ने यह निश्चय किया कि उपनिवेशो के माल से भरे हुए वर्जीनिया के बन्दरगाह से रवाना होने वाले कोई भी जहाज इग्लैण्ड के सिवा और किसी भी दूसरे राष्ट्र के बन्दरगाह पर न जाने पावे।

इसके बाद एक ऐसा कानून बनाया गया कि १ दिसम्बर सन् १६९९ के बाद से अमेरिका के किसी भी ब्रिटिश उपनिवेश का ऊनी अथवा ऊन-मिश्रित माल किसी भी कारण से तथा जहाज, घोडे अथवा गाडी आदि किसी भी सवारी के जरिये इन उपनिवेशो के बाहर न जाने पावे।

साथ ही यह भी कि इग्लैण्ड मे तैयार होनेवाले माल का सा माल तैयार करना ब्रिटिश सिक्के की नकल करने के सामान अपराध समझा जाता था और वैसा माल तैयार करने वाले को तदनुसार सजा दी जाती थी।

इग्लैण्ड के ये और इस तरह के दूसरे कानून अमेरिका पर लादने पर अमेरिका ने भी उतने ही जोरो से उनका प्रतिकार शुरू किया। अमेरिका और हिन्दुस्तान इन दो राष्ट्रो पर इग्लैण्ड द्वारा किये गये अत्याचारो मे जैसा ऐतिहासिक साम्य दिखाई देता है, वही साम्य इन दोनो राष्ट्रो द्वारा किये गये प्रतिकारो मे भी व्यक्त होता है। इन दोनो ही राष्ट्रो ने

इग्लैण्ड का जो प्रतिकार किया, उसका इतिहास अत्यन्त बोधप्रद और मनोरञ्जक है। अमेरिका द्वारा किये गये प्रतिकारो का हाल पढते समय यही प्रतीत होता है, मानो हम हिन्दुस्तान की वर्तमान स्थिति का हाल पढ रहे हो। इतिहास की पुनरावृति किस तरह होती है, उसका यह एक मजेदार उदाहरण है।

अमेरिका ने वैधानिक ढग से किस तरह इग्लैण्ड का प्रतिकार किया, इस पर सक्षेप मे एक नजर डालिए।

आयात-प्रतिबन्धक प्रस्ताव

भिन्न-भिन्न उपनिवेशो ने पहले नीचे लिखे अनुसार एक प्रस्ताव किया— "सामान्यत सब विदेशी माल और विशेषकर अमेरिका से उत्पन्न अथवा तैयार हुई चाय और शराब-जैसे अनावश्यक पदार्थ अमेरिका के तट पर न आने दिये जाय, न खरीद किये जाय, न उनका उपयोग किया जाय।"[१]

ऐसे प्रस्ताव पर प्रमुख नागरिको के हस्ताक्षर कराने का काम जोरो से शुरू हुआ।

पत्र व्यवहार-समितियां—विदेशी माल की आमद रोकनेवाले इस प्रस्ताव का महत्त्व जनता के हृदय मे बिठाने के लिए 'पत्रव्यवहार-समितिया' स्थापित की गई और उक्त प्रस्ताव को जगह-जगह भेजने का काम इनके सुपुर्द किया गया।

निरीक्षण-समितिया—सारे देश-भर मे दक्ष और विवेकशील पुरुषो की 'निरीक्षक समितिया' चुनी गई। इनके जिम्मे "माल का लेन-देन करनेवाले दूकानदारो और ग्राहको के व्यवहार पर सूक्ष्म देख-रेख रखने और उपरोक्त प्रस्ताव को अमल मे न लानेवालो के नाम प्रकाशित कर उन्हे 'जनता का उपहासपात्र और कोप-भाजन बनाने' की व्यवस्था" का काम दिया गया।

उपनिवेशवाले केवल प्रस्ताव पास करके और समितिया स्थापित करके ही चुप नही बैठ गये, बल्कि देशा उद्योग-धधो को उत्तेजन देने और

१. 'Swadeshi Movement' पृष्ठ १५१

विदेशी माल के त्याग के साथ-साथ रचनात्मक कार्य भी करने लगे।

चरखे का संगीत —हाथ-कते सूत के कपड़ों का व्यवहार करने वाले मण्डल—विवाह समारभों पर खादी का उपयोग

"जगह-जगह पर लोग कहने लगे चरखे का सगीत वीणा अथवा सितार से भी अधिक मधुर और श्रवणीय है। हाथ-कते सूत के कपडे पहनने-वालो के मण्डल स्थापित किये गये। इन मण्डलो के सदस्य के स्वागत-समारम्भ अथवा उत्सव आदि के मौको पर इनके शरीर अथवा टेबल पर हाथ-कते सूत के कपडे के सिवा और कोई दूसरा वस्त्र काम मे नही लाया जाता था। विवाह-समारम्भ भी स्वदेशाभिमान के सिद्धान्त पर होने लगे। दिसम्बर सन् १७६७ मे 'फ्लिण्ट' नामक कुमारी के विवाह प्रसग पर आये हुए बहुत से मेहमान घर मे तैयार हुए कपडे ही पहनकर आये थे। स्त्रियो तक ने रेशमी वस्त्र, विभिन्न प्रकार के फीतो और पट्टो का व्यवहार छोड दिया था। मेहमानी के पदार्थ विपुल और नाना प्रकार के होने पर भी सब स्वदेशी ही थे। देशी वनस्पति-जन्य 'लेब्राडर चाय' लोकप्रिय पेय था।"[1]

"ब्रिटिश वस्त्रो का बहिष्कार सफल करने के लिए अमेरिका के प्रेसीडण्ट स्वय जार्ज वाशिगटन और उनका सारा कुटम्ब कातने-बुनने के काम मे निमग्न हो गया था। जहा राष्ट्र का प्रधान स्वय कातता हो वहा 'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजन' के न्याय से दूसरे सामान्य लोग भी कातने-बुनने मे लग जाय, तो इसमे आश्चर्य ही क्या है? बहिष्कार को सफल बनाने के लिए उन लोगो ने अपने माल की महगाई अथवा मोटे-झोटेपन पर कुछ ध्यान नही दिया।"[2]

"अमेरिकन उपनिवेशो की अपने घरेलू उद्योग-धधो को उत्तेजन देने की भावना इतना तीव्र थी कि वहा अपन यहा तैयार होनेवाले मोटे-झोटे कपडे का पहनना ही आदरणीय समझा जाता था। ऊन के बारीक और लम्बे अर्ज के कपडे करघो पर बुने नही जा सकते थे, इसलिए छोटे

१. श्री फेल्प्स 'Swadeshi Movement' पृष्ठ १५३ मे

२. 'बम्बई क्रॉनिकल' के ६ दिसम्बर १९२८ के अंक के अग्रलेख से

अर्जे के मोटे झोटे कोट समाज मे विशेषरूप से प्रचलित होगये 'और उन का पहनना अधिक सम्मान का लक्षण समझा जाने लगा । अपने वस्त्रो के लिए भेडो से अधिक-से-अधिक ऊन प्राप्त हो सके, इस खयाल से बॉस्टन के लोगो ने 'खाने के लिए' भेडो का उपयोग ही न करने का प्रस्ताव पास किया।"[1]

अपने राष्ट्र के स्वाभिमान की रक्षा के लिए अमेरिकन लोगो ने कातने-बुनने का काम जोरो से शुरू किया। स्वय राष्ट्रपति और उनके सब कुटुम्बी-जन कातने-बुनने लगे, खादी-मण्डल स्थापित किये गये विवाह सस्कार भी खादी के वस्त्रो म होने लगे, खादी का व्यवहार सम्माननीय लक्षण समझा जाने लगा । इतना ही नही प्रत्युत खादी के लिए ऊन की पूर्ति करने के उद्देश्य से लोग अपनी जिह्वा-लोलुपता पर भी अकुश रखने के लिए तैयार हो गये और सुस्वादु ब्रिटिश चाय छोड कर देशी वनस्पतिजन्य लेब्राडर चाय पीने लगे।[2]

क्या ये सब बाते भारतवर्ष के लिए—भारत के सुशिक्षित नवयुवको के लिए—शिक्षाप्रद नही है ? १५० वर्ष पूर्व अमेरिका पर जो सकट था वही,—प्रत्युत उससे भी कई गुना भयकर सकट—आज हिन्दुस्तान पर आया हुआ है और इसीलिए अगर उसने आत्यन्तिक स्वावलम्बन का तत्त्व सिखाने वाली खादी का अवलम्बन किया तो इसमे उपहास करने जैसी कौनसी बात है ? अमेरिका मे कातने-बुनने की पुरानी प्रथा न होने पर भी उसने इतना कमाल का प्रयत्न किया, सचमुच यह बात उसके लिए अत्यन्त प्रशसा की है।

१. श्री फेल्प्स की 'Swadeshi Movement' के पृष्ठ १६२ में तथा पृ. ३०७ में लेकी का वक्तव्य भी देखिये।

२. अमेरिका का ऐसा उज्ज्वल उदाहरण नजरो के सामने मौजूद होते हुए भी जो भारतीय नेता स्वय सूत कातकर अपने उदाहरण से लोगो के मनो पर स्वय सूत कातने और खादी पहनने की छाप डालना चाहते है, उनका मजाक उडाने अथवा टीका करने वाले देशभक्त हिन्दुस्तान में मौजद है ही।

इस प्रकार हमने देखा कि इंग्लैण्ड के अमेरिका की व्यापार-विषयक स्वतन्त्रता पर अंकुश लगाने का प्रयत्न करने पर किस प्रकार अमेरिका ने स्वावलम्बन के तत्त्व का अवलम्बन कर हाथ-कते सूत और हाथ-बुने कपडे को स्वीकार कर उसका प्रसार किया ।

: २ :

संसार में हाथ के व्यवसाय का स्थान

पाठको को याद होगा कि 'कपडे के धधे की हत्या' शीर्षक अध्याय मे हम देख आये है कि अठारहवी सदी के द्वितीयार्द्ध मे जब हिन्दुस्तान की रगबिरगी छीटो, बारीक मलमल और रेशमी माल ने इग्लैण्ड की महारानी अमीर-उमराव और दूसरे बडे-बडे लोगो के घरानो मे प्रवेश किया तो स्वय ब्रिटिश पार्लमेण्ट ने सन् १७७४ मे इस आशय का एक अत्यन्त महत्त्व का कानून बनाया कि "इग्लैण्ड मे बिक्री के लिए आने वाला माल इग्लैण्ड मे ही कता-बुना होना चाहिए ।" यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि मुक्त वाणिज्य या खुले व्यापार की डीग हाकने वाले इग्लैण्ड तक ने अपने उद्योग-धधो की रक्षा करने के लिए हाथ-कते सूत का और हाथ की बुनाई का अवलम्बन किया था ।

इस पर कुछ लोग यह आपत्ति करेगे कि यह ठीक है कि राजनैतिक अथवा औद्योगिक सकट आने पर अमेरिका और इग्लैण्ड ने हाथ के सूत और हाथ की बुनी ऊन की खादी का अवलम्बन किया, लेकिन यह तो सत्रहवी और अठारहवी सदी की बात हुई। उस समय 'मशीन युग' स्थापित नही हुआ था, अथवा वह पूरी तरह जम नही सका था, इसलिए उन्हें (इग्लैण्ड और अमेरिका को) ऐसा करना उचित प्रतीत हुआ और उन्होने ऐसा किया इसमे आश्चर्य होने जैसी कोई बात नही है । लेकिन आज जब कि पश्चिमी देशो मे जहा-तहा मशीनो की भरमार हो रही है, उस दशा मे रखे और हाथ के करघे—जैसे घरेलू धधों का चल सकना सम्भव नही है।

इस आपत्ति पर सुप्रसिद्ध क्रातिकारी लेखक प्रिस कोपाटकिन कहते है —छोटे-छोटे धधो का क्षेत्र सर्वथा स्वतन्त्र है । यह बात ध्यान मे रखने योग्य है कि बडे-बड़े औद्योगिक शहरो मे भी छोटे-छोटे धन्धे अभी तक जारी है ।"[१]

"ससार के प्रत्येक देश मे बडे-बडे कारखानो के साथ-साथ बहुत से छोट-छोटे धन्धे चलते रहते है । विचित्र-विचित्र तरह का माल तैयार करने और फैशन की चमक-दमक पैदा करने मे ही इन धन्धो की सफलता की कुञ्जी है । ऊना और ऊन तथा सूत-मिश्रित माल के सम्बन्ध मे तो हमारा यह कथन और भी विशेष रूप से लागू होता है ।"[२]

'ज्यो ज्यो अधिकाधिक खोज एव आविष्कार होते जाते है, त्यो-त्यो ऐसे छोटे-छोटे धन्धो की हमे विशेष आवश्यकना होगी ।"[३]

अस्तु, सक्षेप मे कहा जाय नो यो कहना चाहिए कि यूरोप के कितने ही राष्ट्रो मे आधुनिक मशीन-युग मे भी चरखे, तकली और खादी का स्थान और आवश्यकता अभी तक मौजूद है । यूरोपीय राष्ट्रो के गावो मे आज क्या दिखाई देता है, वह नीचे देखिए[४]—

इग्लैण्ड

कुमारी एलिसन मेकारा नाम की लेखिका इग्लैण्ड मे चरखे के प्रचार के सम्बन्ध मे लिखती है—"इस समय भी स्वय हमारे इग्लैण्ड मे भी चरखे चलते है और उनके सूत से कुछ तरह का माल तैयार होता है । उनके कभी नष्ट होने की कल्पना ही नही की जा सकती । अनेक मनोहर कथानको मे चरखे का वर्णन दिखाई देता है । अपने साहित्य मे भी समय-समय पर उसका उल्लेख आता है । काम करनेवालो को चरखा विश्राम देता है

१ प्रिस क्रोपाटकिन कृत 'Field, Factories and Workshops पृ० २४८.

२. प्रिस क्रोपाटकिन कृत ,, ,, ,, ,, पृ० २६१.

३. ,, ,, ,, ,, ,,

४. ग्रेग कृत 'Economics of Khaddar' पृष्ठ ५०,

और ऐसा प्रतीत होता है मानो उसके साथ ही साथ आदर्श गृह-व्यवस्था होती दिखाई देती है। बाद मे आविष्कृत हुई अनेक कल्पनाओ के बीज इस चरखे मे ही छिपे हुए थे।"[1]

श्री ग्रेग ने भी अपनी पुस्तक 'खद्दर का सम्पत्ति शास्त्र' (Economics of Khaddar) मे भी इग्लैण्ड और अमेरिका मे अभी तक चरखे चलने का उल्लेख किया है।[2]

स्काटलैण्ड

"हिंदुस्तान के तामिल प्रान्त मे तिरुपुर नामक स्थान पर अखिल-भारतीय चरखा-सघ का एक बडा भारी खादी वस्त्रालय है। यहा प्रति वर्ष लाखो रुपये की खादी तैयार होती है। गावो मे सूत कतवाने, वस्त्र बुनवाने, रगवाने आदि सब काम इस वस्त्रालय के जरिये ही होते हैं।

इस वस्त्रालय के आधार पर ही स्काटलैण्ड के एडिनबरा नामक स्थान पर 'हेरिस ट्वीड ट्रेडिंग कम्पनी' नामक सस्था है। इस कम्पनी का सब माल हाथ का कता, हाथ का बुना, और रगा होता है। यहा के माल की मुलायमियत और टिकाऊपन की ससार-भर मे प्रसिद्ध है। गाव के लोगो के लिए यह कम्पनी या कारखाना एक अत्यन्त हितकारक सस्था प्रतीत होती है। टारबर्ट के लोगो को काम देने के लिए वहा ऊन की धुनाई के दो कारखाने स्थापित किये गये है और एक भण्डार भी खोला गया है। इस भण्डार मे वहा के लोग अपने घर पर बुना और रगा हुआ माल बिक्री के लिए लाते है।

शेटलैण्ड टापू मे रहने वाली शान्त स्वभाव की महिला लता बेल से आच्छादित पर्णकुटीमे बैठकर मुलायम और बढिया ऊन धुनती और कातती है। इस ऊन के कारण ही यह टापू प्रसिद्ध है।[3]

इटली

इटली के खेतिहरो–किसानो की स्त्रिया हमेशा अपनी फुरसत के

१. श्री सी. बालाजीराव कृत Khaddar Titbits से

२. पृष्ठ १०६ पर

३. सी. बालाजीराव --'चर्खा और तकली' में

समय—और सर्दी के दिनो मे शाम को—अपनी पशुशालाओ के पास बैठकर अपने हस्त-कौशल के ऐसे काम किया करती है। वे यह काम किसी तरह का मुआवजा या पुरस्कार पाने अथवा द्रव्योपार्जन के लिए नही, बल्कि अपने खुद के और अपने कुटुम्बीजनो के वस्त्र तैयार करने के लिए करती है।

जिलो के गावो मे कातने बुनने का काम साधारणतया हम जितना समझते है उसकी अपेक्षा कही अधिक परिमाणमे जारी है। अर्वाचीन कारखानो की बेसुर और कर्कश आवाज की तुलना मे कही अधिक सौम्य और शान्त प्रतीत होनेवाला यह काम किसानो की झोपडियो मे प्रच्छन्न, किन्तु अस्खलित रूप मे अभीतक भी जारी है।

बुनाई का काम इटली के खेतिहरो का एक मुख्य और सामान्य काम हो गया है। अपने बोये-निराये और काटे हुए सन और अम्बाडी से सूत निकालकर और उसका कपडा बुनकर उस कपडे के लम्बे-के-लम्बे थान की घडी करने या लपेटने मे किसान-स्त्रियो को बडा स्वाभिमान अनुभव होता है।

जिस प्रकार दक्षिण इटली मे स्त्रिया रामबास या सन का काम करती है, उसी तरह एवजी भाग मे और उस प्रदेश की कक्षा के पशुओ की चराई के लिए सुरक्षित जिलो मे स्त्रिया ऊन का काम करती है। वहा पर ताजी कटी ऊन को साफ करने और जगली फूलो और वनस्पतियो से अथवा पेडो पर लगे हुए फूलो और छाल से रग तैयार कर उस रग से उक्त ऊन को रँगने का काम स्त्रियो को सौपा जाता है।

इन मोटी-झोटी और रुएदार ऊन से स्त्रियो के झगे, पुरुषो के चमचमाते झगे और अनेक प्रकार के सुन्दर वेल-बूटो की दरिया और कालीन अब भी तैयार होते है।

यान्त्रिक—मशीन की—प्रगति लगातार जारी होते हुए भी और विषयो की तरह तकलिया अपना पहले का सम्माननीय स्थान फिर प्राप्त करती जा रही है।

सरकार अथवा सरकारी अधिकारियो की सहायता के बिना ही राम-इटली मे स्त्रियो के अपने निजी और व्यक्तिगत प्रयत्नो से ही 'स्त्री-उद्योग-

मण्डल' नाम की एक सस्था स्थापित हुई है[1] ।

पोलैण्ड

वारसा जिले के खेतिहरो की झोपडियो मे चरखा और हाथ के करघे का सम्मानीय स्थानीय स्थान अभी भी कायम है । अपने ही घरो मे कते हुए सूत का माल पहनने का उनका दृढ निश्चय होने के कारण वे अपनी पोशाक मे कदाचित ही परिवर्त्तन करते है ।

हंगरी

—` हगरी के पहाड और घाटियो पर और हरियाले ठडे मैदानो मे नग पैर ही स्वच्छदता से घूमती हुई स्त्रिया तकली पर सूत कातने के काम मे इतनी निमग्न रहती है कि उनकी अगुलिया विश्राम लेना जानती ही नही । इस तरह क साधारण ढगो से हगरी ने अपने बहुत से प्राचीन धधे कायम कर रखे है।

रूमानिया

रूमानिया की डेरियो या पशुशालाओ मे काम करने वाली कुमारिया दोनो काम करती है । जगल मे अपने हाथो से तकली पर सूत कातने मे मग्न रहती है और शाम को पशुओ को अपने घर वापस ले आती है। तकली का उपयोग सब जगह होता है ,

रूमानिया की किसान-स्त्री परम्परा से चली आने वाली रूढियो का अत्यन्त आदर करती है। आज भी कातना उसका एक विशिष्ट धधा है ।

ऐसा शायद कभी होता हो जब कि अपने फुरसत के समय मे रूमा-नियन स्त्री के हाथ मे तकली न हो ।

सर्बिया

युगोस्लाविया मे खासकर सर्दी के दिनों मे स्त्रियो के पास काम नही रहता, तब बहा कातने, बुनने के और दूसरे घरेलू उद्योग चलते है। ऑच्छिड मे बहुत से पुराने धन्धे जोरो पर पहुच गये है, लेकिन

१ १ नवम्बर सन् १६२८ के 'यग इण्डिया' में Elisu Ricei की "Women's Crafts" नामक पुस्तक से श्री सी. बालाजीराव द्वारा संग्रहीत उद्धरण ।

स्त्रियो को कातने से बढकर और कोई दूसरा धन्धा पसन्द नही आता।

ग्रीस (यूनान)

डेल्फी के पास एक पहाडी पर यह दृश्य दिखाई दिया कि एक ग्रीक कुमारी घोडे पर सवार होकर पहाडी रास्ता पार करते समय हाथ से तकली पर सूत कातती जाती है। यह एक अजीब दृश्य है और दूसरी जगह शायद ही दिखाई दे। यह प्रसिद्ध है कि अपने घोड़े की चाल के सम्बन्ध मे उसका आत्म-विश्वास होने और घोडे के अपने हुक्म मे होने के कारण वह पहाडी रास्ता पार करते समय भी अपने कातने के काम मे निमग्न रहती थी और अपना दुपहरी का समय भी कातने के काम मे ही बिताती थी।

ग्रीक स्त्रियो मे कातने का काम बहुत पुराने समय से होता आया है और ग्रीक देश का प्रत्येक घर एक तरह का कारखाना ही मालूम होता है। वहा का खेतिहर—किसान—करघे पर काम करता है। जगह-जगह लकाशायर का माल उपलब्ध होते हुए भी किसी भी मनुष्य का ताना-बाना बुनने का काम सीखने और उसके करने मे अपना बहुत-सा समय बिताना कदाचित् आश्चर्यजनक प्रतीत होगा, लेकिन ग्रीस देश के कुछ भागो मे यह धन्धा काफी जीवित है और वहा तैयार हुआ माल हम जितना सम्भव समझते है इससे भी अधिक उपयुक्त ठहरता है।

पेरू

पेरू देश की चोला स्त्री अपने बच्चे का लालन-पालन अथवा अपनी भेड बकरियो की साल-सम्हाल करते समय भी हमेशा कातती हुई दिखाई देती है। उसके हाथ की तकली हमेशा फिरती ही रहती है। उस पर वह कच्ची ऊन के गेद से मोटा सूत कातती है। आवश्यक पदार्थ मिलने के ठिकानो से दूर पहाडियो एव घाटियो के निवासी होने के कारण वहा की स्त्रिया इस प्रकार ऊन कातकर अपने लिए आवश्यक अधिकाश वस्त्र तैयार करती है।[1]

१. श्री सी. बालाजीराव की अग्रेजी पुस्तिका 'Charkha and Takli'

इस प्रकार यन्त्रो—मशीनो—के पीहर बने हुए यूरोप, अमेरिका तक मे अभी तक चरखे, तकली और खादी का स्थान है, तब क्या हिन्दुस्तान जैसे कृषि-प्रधान राष्ट्र मे इनका जोरो से प्रसार करना लाभप्रद नही है ?

: ३ :

पारिभाषिक शब्दों की अर्थ-सहित सूची

अटेरन--तकुए अथवा तकले पर से जिस पर सूत लपेटा जाता है वह स्वस्तिक अर्थात् सतिये की आकृति का चौखटा ।

कणा (चरखी या लोढन का)—चरखी या लोढन पर कपास मे से बिनौला अलग करने के लिए जो दो शलाखे होती है, उनमे से लाट को घुमानेवाला रूल ।

काकर या कुच—धुनकी अथवा पीजन के कुन्दे पर जिस स्थान मे तात का आघात होता है, उस स्थान मे लकडी की रक्षा करने और तात से निकलनेवाली आवाज को मधुर बनाने के लिए लगाई जानेवाली बकरी के कच्चे चमडे की पट्टी ।

कुन्दा, पटड़ा या पखा--धुनकी का तोल समान रहने और तात का काम काफी समय तक टिकाने के लिए पखे के आकार का पटडा ।

गराडो या गिर्री—तकुवे पर माल फिराने के लिए लगी हुई लोहे की गिर्री ।

चकरी या दिमरका--तकुवे पर धागा लपेटते समय धागा कुकडी के पीछे न जाने पावे, इसलिए चरखे के तकुए में लगाई जानेवाली लोहे या टीन की गोल पैसे-नुमा चकरी ।

चमरखा—वह चमडे का टुकडा जिसके आधार पर तकूवा घूमता है ।

चर्खी—कपास मे से रुई और बिनौले अलग करने का साधन ।

जोत या अघवाइन--चक्रदार चरखे के पहिये की पखडियो के सिरे पर बाधी जानेवाली रस्सी या डोरी ।

तकुवा--लोहे की नुकीली सलाई जिस पर सूत काता जाता है ।

तांत--धुनकी या पीजन से रुई पीजते समय रुई गाठ तोडकर उसके ततु अलग करने के लिए बकरी की आत या पुट्ठे मे से बटकर तैयार की गई मजबूत डोरी।

मूठ या मुठिया—धुनने के लिए धुनकी की तात पर जिससे आघात किया जाता है वह मुगदर।

पीढ़ा--सूत कातने के समय बैठने के लिए काम मे लाई जानेवाली चौकी।

परेता या फालका—तकली या तकुवे पर की कुकडी का सूत उतार कर लटी बनाने का साधन।

बेअरिंग—चक्र फिराने के लिए सहारा देने वाला दो स्थानो का आधार।

भेलनी, पींद या मूडी—चरखे के पहिये के बीच का मोटा लट्टू।

माल--चरखे के चक्कर पर से घूमते हुए तकुवे को घुमाने वाली बारीक डोरी।

मोढ़िया या मोहरा--चमरख धरन के खूटे उसके आधार सहित।

लाट--चर्खी पर कपास मे से बिनौले अलग करने के लिए जो दो शलाखे लगी होती है, उनमे की घूमती हुई शलाख।

साडी या गाभा--कातते समय तकुवा घुमाने के लिए उस पर जिस स्थान मे माल की रगड बैठती है उसका मोटापन बढाने के लिए उस पर सूत, गोद आदि लगाकर बनाया गया जमाया लपेटा।